संस्कृत कवि आकलनमाला

महाकवि कल्हण

लेखक

डा० गिरिजाशंकर चतुर्वेदी

रामबाग, कानपुर-२०८०१२

पुस्तक का नाम महाकवि कल्हण
लेखक · डॉ० गिरिजा शकर चतुर्वेदी
© प्रकाशक : ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर–१२
मुद्रक ग्रन्थम प्रिंटिंग प्रेस,
साकेतनगर, कानपुर–१४
मूल्य : १००.००

संस्कृत-कवि आकलनमाला

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥

ललितसाहित्य संस्कृतवाङ्मयार्णव का वह कौस्तुभ रत्न है जिससे समलङ्कृत भारत-भारती सम्पूर्ण विश्व को अपनी ओर आकृष्ट करने में सक्षम है। यह साहित्य शरीर में आत्मा, प्रसून में सुरभि, चन्द्र में चन्द्रिका और रमणी में अनिर्वचनीय लावण्य के सदृश सहृदयों के हृदयों को आनन्दातिरेक से आप्यायित कर देने वाला है। सत्यं शिवं सुन्दरम् से समुपबृंहित यह साहित्य मकरन्दरससम्भृत रसाल प्रसून कोकिल-कलरव से सम्प्रहृष्ट वासन्तिक पवन एवं मदविभ्रमविलास से विभूषित प्रमदा के समान दिव्यरसनिष्यन्दी है। भाषा भावविभूषित काव्यकलाललित ललित साहित्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का सहज प्रतिपादक है। अतएव अधोविन्यस्त हृद्य पद्य इस साहित्य पर सर्वथा चरितार्थ होता है--

'विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता।
लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला ॥'

इस साहित्यवाटिका को सुशोभित करने का श्रेय वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास प्रभृति कविकोविदों की उन रचनानलिकाओं को है जो प्रसादमाधुर्य सलिल से अभिसिञ्चित, शब्दार्थकलिकाओं से समुपबृंहित, गम्भीरालवाल में संरक्षित, नूतनपराग-रससम्भृत आनन्दकुसुमराशि से सम्प्रफुल्लित भावसमीरण के झोकों में अठखेलियाँ करती हुयी लहरा रही हों। इस साहित्य ने अपने समय में उस दिव्य इन्द्रचापी निसर्ग वर्ण सौन्दर्य को सरसाया था जिससे तत्कालीन वाङ्मयप्रासाद आलोकित हो उठा था। ऐसे विश्वविश्रुत ललितसाहित्य का पुनरोपण, समाराधन एवं सरसम सेवन सम्प्रति अत्यावश्यक है। प्रस्तुत संस्कृत कवि आकलनमाला इसी आवश्यकता की सम्पूर्ति है। इस महत्त्वपूर्ण योजना के द्वारा जहाँ आज का साहित्य अपने पुरातन गौरवपूर्ण लालित्य से संयोजित होगा वहीं वह अतीत एवं वर्तमान के द्वारा मङ्गलमय भविष्य की संसृष्टि कर सकेगा। यह योजना उस पवित्र प्रयाग के सङ्गम के सदृश है जिसमें अतीत की जह्नुतनया वर्तमान की सूर्यतनया से सम्पृक्त भविष्य की सरस्वती से संयुक्त हो सकेगी।

इस महत्त्वपूर्ण कार्य से संस्कृत के शोधछात्र, प्राध्यापक एवं विद्वान् तो लाभान्वित होंगे ही, साथ ही जिन्हें संस्कृत के प्रति सहज निष्ठा है और संस्कृत नहीं

जानते हैं, उन्हें भी पूर्ण लाभ होगा। इन ग्रन्थों में सम्बन्धित महाकवि के कृतित्व व्यक्तित्व, रचना शिल्प एवं कला का सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनके अनुशीलन से मूलकृति जैसा भी रसास्वाद किया जा सकता है। यदि हम यह कहें कि यह रचनाविधान सम्कृतकवि-काव्य सम्मेलन है तो अतिशयोक्ति न होगी। कारण, कोई भी एक ही स्थान पर भिन्न-भिन्न कवियों एवं काव्यों का रसास्वाद कर सकता है और वह भी आलोचन एवं विवेचना के साथ।

इन ग्रन्थों के प्रारम्भ में कवि से सम्बन्धित विषयों की समीक्षा की गई है और तदनु उसकी कृतियों की विधिवत् मीमांसा हुयी है। लेखकों ने कवि एवं कृतियों से सम्बन्धित सभी विषयों को यथोचित उपन्यस्त किया है। अतः इन ग्रन्थों की उपादेयता और बढ़ गयी है। इस साहित्यिक महामख में जिन विद्वानों की जाने-अनजाने किसी रूप में कैसी भी आहुति सम्प्रस्तुत या विनिक्षिप्त हुयी है, उन्हें उनका पूर्ण पुण्य तो मिलेगा ही, हम लोग भी उनके सुकृत के पुण्यभागी होंगे। कवियों, लेखकों एवं समीक्षकों से निवेदन है कि वे साहित्यमहाध्वर की सम्पूर्ति हेतु विधिवत् आहुति प्रदान करें।

प्रथम प्रकाशन की व्यवस्थापकत्रयी को हार्दिक साधुवाद देने के पश्चात् भी हम कृतकृत्यता का अनुभव नहीं कर सकते। कारण, सारथीय सृष्टि की तरह यह उनकी ही प्रकृतिशक्ति के द्वारा समुद्भूत है, अन्यथा हम तो उदासीन ही रह जाते। अन्त में कवियों, लेखकों समीक्षकों एवं बुधजनों के समक्ष अधोविन्यस्त पद्य का प्रस्तुत करते हुए अपने कथ्य का पूर्ण करते हैं—

> दुर्मोपो दोपसङ्घः क्षणमपि न दृढा मानुषी शेमुषीयम्,
> प्रूफोऽसौ द्विस्त्रिवारं नयनविषयता यातवान् नैव शुद्धः ।
> विद्वांसो दोपदृष्टौ दधति च नितरां तुष्टिपुष्टिं तदाहम्,
> जोषं जोषं विदोषं कलयितुमखिलं जोषमेवावानतोऽस्मि ॥

नवरात्र, चैत्र शुक्ल
२०४३ वि० स०
संस्कृत विभाग,
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

डॉ० शिवबालक द्विवेदी
संयोजक
संस्कृत कवि आकलनमाला

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

महाकवि कल्हण

संस्कृत के ऐतिहासिक महाकवियों में सुप्रतिष्ठित महाकवि कल्हण भी काश्मीर के निवासी थे। वे ब्राह्मण थे और चम्पक या चम्पक महामात्य के पुत्र थे। चम्पक काश्मीर नरेश महाराज हर्षदेव (१०८९–११०१ ई०) के महामन्त्री थे। चम्पक के अनुज कनक राजा हर्षदेव के प्रियपात्रों में से थे। वह (कनक) संगीत विद्या के प्रेमी थे और महाराज हर्ष उनको पुरस्कार आदि से सन्तुष्ट रखते थे। राजा हर्ष की मृत्यु के उपरान्त कनक काशी में जाकर वैराग्यमय जीवन व्यतीत करने लगे।

कल्हण का जन्म परिहासपुर (परिहासपुर) में सन् ११०० ई० के लगभग हुआ था। ब्राह्मणवंश में उत्पन्न होने के कारण संस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। वह प्रारम्भ से ही अपने पिता के साथ रहते थे अतएव महाराज हर्षदेव और अन्य भविष्य में आने वाले राजाओं के राज्यकाल की समस्त घटनाओं से पूर्णतया अभिज्ञ थे।

काश्मीरी भाषा के अनुसार कवि का नाम कल्हण था परन्तु इसका संस्कृत रूप 'कल्याण' है। कवि मंखक ने कल्हण का उल्लेख 'कल्याण' नाम से ही किया है। मंखक ने अपने महाकाव्य 'श्रीकण्ठचरित' में कल्हण (कल्याण) के गुरु अलकदत्त का उल्लेख किया है। उसमें लिखा है कि अलकदत्त की प्रेरणा से ही कल्हण ने काश्मीर के राजाओं का इतिहास लिखने का विचार किया।[1]

कल्हण का अध्ययन गम्भीर था। उन्होंने इतिहास सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का अनुशीलन एवं मनन मन्थन किया था। इनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। अपने आस-पास घटित घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करना तथा उनका वर्णन करना वह अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने प्रत्यक्ष देखी हुई घटनाओं का सांगोपांग वर्णन अपने ग्रन्थ राजतरंगिणी में किया है। इस ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना कल्हण ने काश्मीर नरेश जयसिंह के राज्यकाल (११२७ से ११४९–५० ई०) में काश्मीर के लौकिक वर्ष ४२२४ (४२२४–३०७६ = ११४८ ई०) में प्रारम्भ की और उसे ४२२६ लौकिक वर्ष (४२२६–३०७६ = ११५० ई०) में समाप्त कर दिया।

महाकवि कल्हण 'विक्रमाङ्कदेवचरित' के रचयिता महाकवि बिल्हण के

१–श्रीकण्ठचरित २५/७८–८०

समसामयिक थे। महाकवि कल्हण ने राजतरंगिणी में लिखा है कि कवि बिल्हण कश्मीर नरेश कलश के राज्यकाल में कश्मीर छोड़कर दक्षिण में कर्णाटक नरेश पर्माण्डि (विक्रमादित्य षष्ठ) के पास जाकर निवास करने लगे थे। उनको उस नरेश ने 'विद्यापति' की गौरवमयी उपाधि से विभूषित किया था। कल्हण ने बिल्हण की कविता का पर्याप्त अनुशीलन किया था। इसीलिए इनके काव्य को उनकी कविता से 'सकाम' कहा गया है।[1] कल्हण शिव-भक्त थे तथापि वह बौद्धधर्म को सम्मान की दृष्टि से देखते थे और अहिंसा के पक्षपाती थे।[2]

कल्हण का समय

कल्हण के पिता महामात्य चम्पक राजा हर्ष के राज्यकाल (१०८९–११०१ ई०) में विद्यमान थे। हर्ष के मरणोपरान्त भी चम्पक जीवित थे। परन्तु सम्भवतः उन्होंने राजनीति में भाग लेना त्याग दिया था। कल्हण ने अपने पिता के साथ रहकर राजा हर्ष के जीवन का उत्थान-पतन देखा था। उन्होंने उसका सजीव चित्रण अपने महाकाव्य 'राजतरंगिणी' के सप्तम तरंग में किया है।

महाकवि कल्हण राजा जयसिंह के राज्यकाल (११२७–११४९ ई०) में विद्यमान थे। उन्होंने अपने महाकाव्य का प्रारम्भ ४२२४ लौकिक वर्ष अर्थात् सन् ११४८ ई० में किया था और सन् ११५० ई० में उसे लिखकर समाप्त भी कर दिया था। इस प्रकार कल्हण का जन्म सन् ११०० ई० के लगभग अवश्य हुआ होगा। इनका स्थितिकाल सन् ११०० ई० से ११५५ ई० तक मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

'श्रीकण्ठचरित' महाकाव्य के प्रणेता मंख ने कल्हण को 'कल्याण' नाम से अभिहित किया है। मंख का समय (११२९–५० ई०) के आसपास माना जाता है, क्योंकि यह और इनके गुरु प्रसिद्ध आलंकारिक 'रुय्यक' कश्मीरनरेश जयसिंह (११२७–४९ ई०) के सभा-पण्डित थे।

कल्हण ने अपने महाकाव्य में बिल्हण का उल्लेख किया है। वह लिखते हैं कि कवि बिल्हण राजा कलश के राज्यकाल में कश्मीर छोड़कर कर्णाटक देश के राजा पर्माडि के पास चला गया था। राजा ने उस कवि को 'विद्यापति' पद पर प्रतिष्ठित किया था। बिल्हण ने १०६५ ई० के आसपास कश्मीर छोड़ा था और १०८५ ई० के लगभग अपना महाकाव्य प्रणीत किया था। इस प्रकार बिल्हण का स्थितिकाल ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध आता है। कल्हण ने मुक्ताकण-शिवस्वामी, आनन्दवर्धन तथा रत्नाकर का उल्लेख किया है, अतः कल्हण का समय इनके

१–संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १८४ (बलदेव उपाध्याय)
२–ए हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर, (कीथ) पृष्ठ १५८–१५९

पश्चात् आता है। ये मुक्तापीड आदि कवि राजा अवन्तिवर्मा (८५५–८८३ ई०) के शासनकाल में विद्यमान थे।[1] तिथियों का स्पष्ट उल्लेख होने से महाकवि कल्हण का स्थितिकाल निश्चय रूप से बारहवीं शती का पूर्वार्द्ध आता है। इनका समय ११००–११५५ ई० मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

कल्हण के सम-सामयिक

कल्हण का स्थितिकाल सन् ११०० ई० से ११५५ ई० तक सिद्ध होता है। इस समय भारतवर्ष का संक्रान्तिकाल था। देश के भिन्न-भिन्न भागों में विभिन्न राजे स्वतन्त्र रूप से शासन करते थे।[2] ये राजे पारस्परिक द्वेष-भाव रखते थे और लड़ते रहते थे। मुसलमानों के आक्रमणों का आरम्भ हो चुका था। ७१२ ई० में ही वलीदाखिया के गवर्नर हज्जाज के भतीजे कासिम के पुत्र मुहम्मद ने[3] सिन्ध के ब्राह्मण राजा दाहिर का वध करके सिंध को अधिकृत कर लिया। तदनन्तर मुसलमानों ने सिंध तथा गुजरात पर आक्रमण किये। एक आक्रमण में वलभी का राज्य आक्रमणकारियों द्वारा सन् ७३० ई० में जीत लिया गया।

तदनन्तर सन ९८६-८७ ई० में गजनी के अमीर सुबुक्तगीन ने पंजाब नरेश जयपाल पर आक्रमण किया। हिन्दू राजा की पराजय हुई। सुबुक्तगीन के पुत्र सुल्तान महमूद ने १००१ ई० में जयपाल को फिर हराया और पेशावर को अपने राज्य में मिला लिया। तत्पश्चात् सुल्तान ने सन १००२ ई० में सीमान्त नगरों पर सन १००३ ई० में झेलमनदी के तट पर स्थित भीरा पर, १००५ ई० में मुल्तान पर, १००६–७ ई० में सुखपाल पर, १००८ ई० में राजा आनन्दपाल पर, १०१० ई० में नारायणपुर पर १०११ ई० में पुनः मुल्तान पर, १०१२–१४ ई० में थानेश्वर पर, १०१४ ई० में लाहोर पर, १०१५ ई० में कश्मीर पर, १०१८ में बुलन्दशहर महावन, मथुरा व कन्नौज पर १०१९ ई० में कालिंजर पर १०२० में पंजाब पर १०२२–२३ में ग्वालियर तथा कालिंजर पर १०२५ ई० में सोमनाथ पर तथा १०२७ ई० में जाटों पर आक्रमण किया।

1–मुक्ताकण शिवस्वामी कविरानन्दवर्धन ।
प्रथा रत्नाकर श्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥–५/३४

2–'इण्डिया डियरिंग दिस टाइम वास डिवाइडेड इन टु ए नम्बर ऑफ स्टेट्स हविंग नेवर ट्र आनड टाइम्स ऐण्ड परपजेज इण्डिपेण्डेण्ट –
डा० ईश्वरीप्रसाद मेडिएवल इण्डिया, पेज १ (डा० दयाप्रकाश द्वारा उद्धृत) मध्यकालीन भारत पृ० ६९ १९६२ का संस्करण।
–मुहम्मद कासिम नहीं अपितु कासिम के पुत्र मुहम्मद ने
विन्सेण्ट स्मिथ का 'हिस्ट्री आफ इण्डिया' पृ० ९०।

महमूद का अन्तिम आक्रमण सन् १०२७ ई० मे हुआ और मुहम्मद गोरी का प्रथम आक्रमण सन् ११७५–७६ ई० मे मुल्तान व सिन्ध के ऊच्च स्थान पर हुआ। महमूद और मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के मध्यकाल मे भारतवर्ष के उत्तरी भाग और दक्षिण मे विभिन्न राज्य थे और निम्नलिखित प्रमुख राजवंश शासन करते थे–

उत्तरी भारत मे

१ कन्नौज मे गहरवार, २ दिल्ली मे तोमर, ३ साभर व अजमेर मे चौहान, ४ बगाल व बिहार मे पाल, ५ पूर्वी बगाल मे सेन, ६ गुजरात मे बघेल ७ मालवा मे परमार अथवा पवार, ८ जेजाकभुक्ति या बुंदेलखण्ड मे चन्देले, ९ चेदि मे कालाचुरी या हैहय, १० कन्नौज तथा काशी के मध्य मे राठौर।

दक्षिणी भारत मे

१ वातापि के आन्ध्र एव चालुक्य (१०१५ ई० मे चोल मे सम्मिलित)

२ मान्यखेत (निजाम राज्य) के राष्ट्रकूट (९७३ ई० मे कल्याणी के चालुक्य वश के अधिकार मे)

३ कल्याण के चालुक्य (११७३ ई० तक)

४ मैसूर के होयशल (१२१७ ई० तक)

५ पश्चिमी दक्न (देवगिरि) के यादव (१३१८ ई० तक)

६ वारगल के काकतीय (११००–१३२१ ई० तक)[1]

सुदूर दक्षिण मे

७ मदुरा व तिनेवली जिलो के पाण्ड्य (१३११ ई० तक)

८ काची के पल्लव (१२११ ई० तक)

९ उरइयूर या प्राचीन त्रिचनापली के चोल (१३११ ई० तक)

ये उपर्युक्त राज्य कल्हण के समय मे विद्यमान थे।

इस समय बौद्धधर्म का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा था। पाल राजाओ को छोडकर शेष उत्तरी भारत के राजे जैन-धर्म अथवा हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। पाल राजाओ के बनवाये हुये बौद्ध धर्म सम्बन्धी स्तूप व भवन प्राय सभी नष्ट हो चुके हैं। हिन्दू व जैन मन्दिर जो उस समय राजाओ ने बनवाये थे, अब भी विद्यमान हैं। १२वी शती के अन्त तक बौद्ध धर्म के व्यवस्थित रूप का पूर्णतया पतन हो गया।[2]

माउण्ट आबू पर निर्मित जैन मन्दिरो (११-१२वी शती) का शिल्प-सौन्दर्य अब भी अपने अनुपम कला-प्रागल्भ्य से दर्शको को मन्त्र-मुग्ध बना देता है। चन्देल

१–ई० डब्ल्यू० थामसन की 'हिस्ट्री आफ इण्डिया' पृष्ठ ९७ का फुटनोट।
२–ई० डब्ल्यू० थामसन की हिस्ट्री आफ इण्डिया' पृष्ठ १०१

राजाओं के बनवाये हुये खजुराहो के हिन्दू मन्दिर भारतीय वास्तुकला के सर्वोत्कृष्ट निदर्शन हैं।[1]

बौद्धधर्म के ह्रास का एक कारण सम्भवतः जैनधर्म का उत्तरोत्तर उत्थान ही था। व्यापारी वर्ग तथा मध्यम वर्ग की जनता ने जैनधर्म को अपनाया। राजपूताना, चालुक्य एवं होयशल राज्य तथा पाण्ड्य राज्य में जैनधर्म का प्रभाव बढ़ रहा था। कल्हण के अन्तिम दिनों में अर्थात् सन् ११५७ के लगभग कल्याण के चालुक्यों का अध:पतन प्रारम्भ हुआ। तदनन्तर विज्जल या विज्जण के शासक बनने पर लिंगायत या वीर शैव सम्प्रदाय का उदय हुआ जिससे जैनधर्म को बड़ा आघात पहुँचा और जैनधर्म पतनोन्मुख होने लगा परन्तु जैनधर्म के पतन का प्रधान कारण ब्राह्मणों के नेतृत्व में पनपने वाले हिन्दू धर्म के प्रचार से हुआ। राष्ट्रकूटवंश के राजा अमोघवर्ष ने ९वीं शती में जैनधर्म की उन्नति एवं प्रचार में उत्कट तत्परता प्रदर्शित की थी, परन्तु कुछ ही समय में हिन्दू धर्म के व्यापक प्रचार ने वहाँ भी जैनधर्म को निष्प्रभ कर दिया। होयशल वंश के जैनधर्मावलम्बी नरेश बीरगग (विट्टिदेव) अथवा विष्णुवर्धन ने जैनधर्म का परित्याग कर दिया और वह हिन्दूधर्मावलम्बी बन गया। इससे पता चलता है कि दक्षिण भारत में भी हिन्दूधर्म का उत्थान हो रहा था और जैनधर्म का ह्रास। इस मत-परिवर्तन का श्रेय रामानुजस्वामी (१०१७–११३७ ई०) को ही था। बाद में होयशल राजाओं का शासनकाल (१२वीं व १३वीं शती) उत्कृष्ट हिन्दू मन्दिरों की रचना के लिये प्रख्यात है।

यह सक्रान्तिकाल हिन्दूधर्म के पुनरुत्थान के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें हिन्दूधर्म की परम्पराओं का निर्माण एवं रूपनिर्णय कर दिया गया। जातिप्रधानगत प्रत्येक जाति का स्थान निर्दिष्ट कर दिया गया। स्थानीय प्रथाओं एवं उत्सवों का परिमार्जन कर दिया गया। ई० डब्ल्यू० थामसन लिखते हैं—

"द लिजेन्ड्स ऐण्ड वरशिप्स कनक्टेड विथ फूल्स ऐण्ड रिवर्स, टरीज ऐण्ड हिल्स, ऐण्ड द लोकल कस्टम ऐण्ड फेस्टिवल्स वेयर एलाबोरेटेड एण्ड मैग्नीफाइड फार द यूज आफ पीपुल। नमरेस पुराणाज वेयर कम्पोज्ड बाइ द सक्टस, सटिंग फार्थ द सुप्रीम एक्सलेन्स आफ देयर गौड्स एण्ड द एफीकेसी आफ देयर पेकुलियर राइटस दस ए वास्ट सिस्टम आफ रेलीजन वाज मिन्ट अप रेजिंग फ्राम द ग्रासेस्ट सुपर-स्टीशन टु द सबटलेस्ट मेटाफिजिकल स्पेकुलेशन ऐट द सेम टाइम ए प्लेस वाज मार्कड आउट फार ईच कम्युनिटी इन द वास्ट सिस्टम देयर इज रीजन टु थिंक दैट मच आफ द ड्राविडियन लिटरेरी एण्ड प्रिस्टली कलासेज वेयर रिलाइना इग्ड

१–वी० स्मिथ, हिस्ट्री आफ इंडिया, पृष्ठ १०७

ऐज ब्रह्मन्स, ह्वाइन क्षत्रिय जेनियालोजीज वेयर फाउन्ड फार द चीफटेन्स ऐण्ड राजाज, ऐण्ड माइथोलोजिकल स्टोरीज वेयर इन्वेन्टेड टु एकाउन्ट फार द नेम्स ऐण्ड आकुपेशन्स आफ द लोअर क्लासेज"

प्राचीनकाल व तत्कालीन अनेक देवी-देवताओ को हिन्दू-धम के रुद्र अथवा विष्णु का रूप मानकर पूजा की पद्धति मे भी एक प्रकार का सामञ्जस्य स्थापित किया गया।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्तक रामानुजाचाय इस समय में विद्यमान थे १०१७–११३७ ई०)। द्वैतवाद के प्रवर्तक माधवाचार्य का इसी समय सन् १११९ ई० मे दक्षिण कनार मे उडुपी के पास जन्म हुआ था।[1]

सस्कृत साहित्य मे यह सक्रान्तिकाल अत्यन्त महत्वपूण है। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र मे अभूतपूर्व परिवर्तन इसी काल में हुये। कारण यह था कि दो भिन्न प्रकार की सभ्यताओ और सस्कृतियो (हिन्दू एव मुस्लिम) के सघट्ट से सस्कृत साहित्य के प्रवाह में एक अद्भुत नवीन स्रोत का प्रादुर्भाव हुआ।

महाकाव्य के क्षेत्र मे विक्रमाकदेवचरित' के रचयिता विल्हण[2] तथा निम्नाङ्कित महाकवि कल्हण के सम-सामयिक महाकाव्यकार हैं–

१ 'रामपालचरित' के लेखक सन्ध्याकरनदी[3] (१०८०–११३० ई०)
२, 'द्वयाश्रयकाव्य' के प्रणेता जैनकवि 'हेमचन्द्र'[4] (१०८८–११७२ ई०)
३ 'नेमिनिर्वाण' (११४० ई०) के रचनाकार वाग्भट[5] (१०९३-११४३ ई०)
४ 'श्रीकण्ठचरित' के रचयिता मखक[6] (११२९–११५०)

१–ई० डब्ल्यू यामसन इन विभिन्न वादो का अन्तर बतलाते हुये अपनी 'हिस्ट्री आफ इण्डिया' मे पृष्ठ १०५ (फुटनोट) मे लिखते हैं–
' इज, इन ए वड, द अद्वैत स्कूल टीचेज दैट द साउल विदिन अस इज गौड, द विशिष्टाद्वैत दैट द साउल इज के ए पार्ट आफ गौड, ऐण्ड द द्वैत, दैट द साउल इज अदर दैन गौड वर्क्स वे आफ सालवेशन इज द वे आफ नालेज-ज्ञान मार्ग दैट आफ रामानुज एण्ड मध्वाचाय इज द वे आफ डिवोशन–भक्ति-मार्ग।

२–राजतरंगिणी, ७/९३५–९३७, कीथ ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर, पृष्ठ १५३। (११वीं शती का उत्तरार्द्ध)

३–वही, पृष्ठ १३७ व १७४।

४–दासगुप्ता व डे 'ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ ५६०

५–दासगुप्ता व डे, वही, पृष्ठ ५५६

६–दासगुप्ता व डे, वही, पृष्ठ ५५८ (रचनाकाल ११३५–११४५ ई०)

५ 'सोमपाल विलास' (११५० ई० के आसपास) के कर्ता जल्हण।

६ 'पृथ्वीराज विजय' के रचयिता चण्ड कवि[१] (१२वीं शती)

७ 'श्रीचिह्नकाव्य' के प्रणेता कृष्णलीलाशुक अथवा बिल्वमंगल[३] (१२वीं शती)

८ 'राघवपाण्डवीय' (१३ सर्ग) तथा 'पारिजातहरण' के रचनाकार कविराज माधवभट्ट[४] (१२वीं शती)

'राघवपाण्डवीय' १०, (१८ सर्ग) के रचयिता धनंजय (दिगम्बर जैन) (११२३–११४० ई०) तथा श्रुतकीर्ति[५] (११६३ ई० के आसपास) भी कहे जाते हैं, परन्तु ये 'राघवपाण्डवीय' नाम की कृतियां भिन्न ही हैं।

गीतिकाव्यों की परम्परा में शृंगार काव्य, संदेश काव्य तथा स्तोत्रसाहित्य अर्थात् भक्तिकाव्य का समावेश होता है।

बंगाल के विद्वत्प्रेमी नरेश के सभाकवि धोयी[६] (१२वीं शती) का लिखा हुआ 'पवनदूत' सन्देश काव्यों में मुख्य है। धोयी के सहचर कवि जयदेव[७] ने एक मनोरम गीतिकाव्य 'गीतगोविन्द' (१२वीं शती) की रचना की।

महाकवि बिल्हण[८] ने (   ) अपनी प्रणयकथा को 'चौरपंचाशिका' के रूप में अभिव्यक्त किया। रामानुजाचार्य[९] ने (११वीं शती १०१७–११२५ ई०) गद्यत्रय नाम से तीन गीतिकाव्य लिखे–

१ शरणागति गद्य, वैकुण्ठ गद्य एवं श्रीरंगगद्य। रामानुज के प्रमुख शिष्य श्रीवत्सांक[१०] (११वीं–१२वीं शती) ने पंचस्तवी–श्रीस्तव अमितानुपस्तव वरदराजस्तव, सुन्दरबाहुस्तव तथा वैकुण्ठस्तव की रचना की।

१–राजतरंगिणी, ८/६२१, वी० वरदाचार्य 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ ८२) (अध्याय १३)

२–वी० वरदाचार्य, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' पृष्ठ ११६

३–वही, पृष्ठ ११३

४–दासगुप्ता व डे 'ए हिस्टरी आफ संस्कृत लिटरेचर' पृष्ठ ६१९

५–वही, पृष्ठ ६१९

६–कीथ 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर' पृष्ठ ५३ १९०

७–कीथ, वही पृष्ठ ५३, १९०–१९१,   ८–कीथ, वही पृष्ठ ५३ १८८–१९०

९–गैरोला 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ९०८ वी० वरदाचार्य 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' पृष्ठ १३६

१०–गैरोला, वही पृष्ठ ९०८, वी० वरदाचार्य, वही पृष्ठ १३६

श्रीवत्सपुत्र पराशर भट्ट[1] (११वीं १२वीं शती) ने 'श्रीरंगराजस्तव' तथा 'श्रीगुणरत्नकोश' नामक स्तुतिग्रन्थों का प्रणयन किया। जयदेव[2] ने 'गंगा-स्तव' लिखा।

बिल्वमंगल[3] कवि ने 'कृष्णकर्णामृत', द्वैतमतावलम्बी आनन्दतीर्थ या माधव (१२वी शती) ने 'द्वादशस्तोत्र' की रचना की। बंगाल के विद्वत्प्रेमी नरेश लक्ष्मण-सेन (१११६ ई०) की सभा के मान्यकवि गोवर्धनाचार्य[4] ने 'आर्यासप्तशती' में विभिन्न विषयों पर ७०० आर्याओं का प्रणयन किया है।

स्फुट काव्यों की परम्परा में कविराज[5] तथा बिल्हण[6] के नाम उल्लेखनीय हैं। कहा जाता है कि बिल्हण ने यात्रा के समय अयोध्या में रह कर भगवान् राम की स्तुति में किसी काव्य की भी रचना की थी जो अब अनुपलब्ध है।[7] ये सब काव्यकार महाकवि कल्हण के समकालीन थे।

कथाकाव्यों के कतिपय रचयिता महाकवि कल्हण के सम-कालीन थे। 'उदयसुन्दरीकथा'[8] के प्रणेता सोड्ढल कवि (११०० ई०), 'वैतालपंचविंशतिका' के लेखक कुम्भ शिवदास[9] (१२०० ई०) तथा जम्भलदत्त[10] (१२वी शती) और जैनमुनियों की आत्मकथाओं के रूप में स्वरचित 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' के परिशिष्ट में 'परिशिष्टपर्व' के रचनाकार हेमचन्द्र[11] (११वीं–१२वीं शती) तथा 'कथार्णव' एवं 'शालिवाहन कथा' के रचयिता कल्लालसेन शिवदास[12] (१२वीं शती) भी कल्हण के समय में विद्यमान थे।

१–गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ९०८, वी० वरदाचार्य, वही पृष्ठ १३६
२–वी० वरदाचार्य, वही, पृष्ठ १३६ ३–वही, पृष्ठ १३६
४–कीथ, वही, पृष्ठ ५३, २०२
५–गैरोला, वही, पृष्ठ ८९५, वी० वरदाचार्य, वही, पृष्ठ ११५
६–दासगुप्ता व डे, 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर', पृष्ठ ३५० कीथ, वही, पृष्ठ १५३, १५५
७–कीथ, 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ १५३, १५५
८–दासगुप्ता व डे 'ए हिस्टरी आफ संस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ ४३१ (१०२०-११५० ई० के मध्य की रचना)
९–गैरोला 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ९२०, १०–वही।
११–दासगुप्ता व डे, वही, पृष्ठ ३४३–३४४ (परिशिष्ट पर्व या 'स्थविरावली' की रचना ११६०–११७२ ई० की है। सम्पादित–याकोबी, बिब्लोग्राफिका इण्डिका, १८८३–९१ ई०)
१२–गैरोला, वही, पृष्ठ ९२१।

सुभाषित काव्यों में 'आर्यासप्तशती' के लेखक गोवर्धनाचार्य[1] का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। 'सदुक्तिकर्णामृत' (रचना १२०५ ई०) के लेखक बटुदास के पुत्र श्रीधरदास[2] भी कल्हण के अन्तिम दिनों में विद्यमान थे।

नीतिपरक उपदेशात्मक काव्यों की परम्परा में 'योगशास्त्र' के रचयिता जैनाचार्य हेमचन्द्र[3] (१०८८–११७२ ई०) 'मुग्धोपदेश' के रचनाकार जल्हण[4] (११५० ई०), 'अन्योक्तिमुक्तामाला' के प्रणेता कश्मीरनरेश हर्ष (१०८९–११०१ ई०) के आश्रित कवि शम्भु[5] भी महाकवि कल्हण के समकालीन कवि थे।

श्रावक धर्म के विद्वान् जैनाचार्य वसुनन्दि[6] (१२वीं शती) जो 'आप्त-मीमांसावृत्ति', 'जिनशतकटीका', 'मूलाचारवृत्ति', 'प्रतिष्ठासारसंग्रह', 'उपासका-ध्ययन' आदि ग्रन्थों के प्रणेता माने जाते हैं, भी कल्हण के समकालीन थे।

'वाग्भटालंकार' के कर्ता वाग्भट[7] नेमिनिर्वाणकर्ता वाग्भट से भिन्न थे। वह नेमिनिर्वाणकर्ता वाग्भट के परवर्ती हैं। उन्होंने 'वाग्भटालंकार' की रचना ११७९ विक्रम संवत् (११२३ ई०) में की थी और उसमें नेमिनिर्वाण के अनेक उद्धरण समाविष्ट किये हैं। 'ज्ञानार्णव' के रचयिता शुभचन्द्र[8] भी कल्हण के समकालीन जैन-विद्वान् थे। हेमचन्द्र (१०८८–११७२ ई०) की 'प्रमाणमीमांसा' एक महत्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ है। अतएव हेमचन्द्र[9] भी महाकवि कल्हण के सम-सामयिक थे।

पुरोहित चिह याग नामक बौद्ध पंडित ने चीन तथा भारत के सांस्कृतिक सम्बन्धों का संग्रह अपनी पुस्तक 'बुद्ध और महास्थविरों की वंशावलियों के अभिलेख' में सुंग युग (१२७–११८० ई०) में दिया है।[10] बौद्ध नैयायिक मिथिलावासी गंगेश उपाध्याय[11] ने 'तत्वचिन्तामणि' में नव्य न्याय की प्रतिष्ठा

१–कीथ 'ए हिस्टरी आफ संस्कृत लिटरेचर', पृष्ठ ५३
 बी० वरदाचार्य 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' पृष्ठ १४८

२–बी० वरदाचार्य, वही पृष्ठ १४८ ३–बी० वरदाचार्य वही पृष्ठ १४३

४–बी० वरदाचार्य वही, पृष्ठ १८३ ५–बी० वरदाचार्य वही पृष्ठ १४५

६–पं० हीरालाल जैन वसुनन्दि श्रावकाचार पृष्ठ ५८ (भारतीय ज्ञानपीठ काशी से अप्रैल १९५२ में प्रकाशित) नाथूरामप्रेमी जैनसाहित्य और इतिहास पृष्ठ ३०२ (१९५६ द्वितीय संस्करण)

७–गैरोला– संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३५८

८–नाथूरामप्रेमी जैनसाहित्य और इतिहास पृष्ठ ३३२–३४१।

९–कीथ, ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर' पृष्ठ ८८५।

१०–गैरोला, वही पृष्ठ ३७० ११–कीथ वही पृष्ठ ४८८

की (१२वी शती) । किसी अज्ञाननामा बौद्ध विद्वान्[1] ने 'महावश' की टीका (१२वी शती) में लिखी ये सब महाकवि कल्हण के समकालीन विद्वान् थे ।

पालिकाव्य मे वर्णनात्मक श्रेणी के काव्य-ग्रन्थो मे बुद्ध-रश्मितकृत[2] 'जिनालकार' (१२वी शती) उल्लेखनीय है। सिंहलीभिक्षु सारिपुत्र के शिष्य छपद[3] ने 'न्यास' की टीका 'न्यासप्रदीप' (१२वी शती) मे लिखी। इसी 'न्यासप्रदीप' पर 'सुत-निद्देश'[4] नामक व्याकरण ग्रन्थ की रचना सन् ११८१ ई० मे की गई। सिंहलीभिक्षु सारिपुत्र के शिष्य स्थविर सघरक्षित[5] (१२वी शती) ने कच्चायन व्याकरण पर एक ग्रन्थ 'सम्बन्धचिन्ता' लिखा। इन्होने ही भिक्षु धर्म श्री के 'खुद्दक सिक्खा' पर एक टीका 'खुद्दक सिक्खा टीका' लिखी। कच्चायन व्याकरण पर लिखे गये ग्रन्थो मे स्थविर धर्मश्री[6] (१२वीं शती) की 'सद्दत्थभेदचिन्ता' (शब्दार्थभेदचिन्ता) उल्लेखनीय है। इसी कच्चायन व्याकरण पर आधारित 'सद्दनीति' नामक-व्याकरण (११५४ ई०) के रचनाकार वर्मी भिक्षु अग्गवश[7] भी कल्हण के सम-सामयिक थे।

अमरकोश पर आधारित 'अभिधानप्पदीपिका' नामक पालिकोशग्रन्थ के रचनाकार महाथेरमोग्गलायन[8] (११५३-८६ ई० के आसपास) भी कल्हण के समवर्ती थे। सिंहली भिक्षु सारिपुत्र के शिष्य स्थविर सघरक्षित[9] (१२वी शती) ने 'वृत्तोदय' पालि के एकमात्र छन्दशास्त्रविषयक ग्रन्थ की रचना की। इन्ही स्थविर सघरक्षित ने पालि के एकमात्र काव्यशास्त्रग्रन्थ 'सुबोधालकार' की रचना की।

अष्टाध्यायी पर वृत्ति लिखने वाले 'केशव'[10] 'इन्दुमती-वृत्ति' के रचयिता इन्दुमित्र[11] 'दुर्घटवृत्ति' के रचयिता मैत्रेयरक्षित सभी[12] १२वी शती में कल्हण

१–गैरोला, सस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ४१८,
२–गैरोला, वही, पृष्ठ ४२३ (सम्पादित–गैले द्वारा सिंहली सस्करण, १९००)
३–गैरोला, वही, पृष्ठ ४२५
४–गैरोला, वही, पृष्ठ ४२६, मेबिल बोड, दि पालि लिट्रेचर आफ बरमा, पृष्ठ १७, सुभूति–नाममाला, पृष्ठ १५ (भूमिका)
५–गैरोला, 'सस्कृत साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ४२६
६–गैरोला, वही, पृष्ठ ४२३
७–कीथ, 'ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर' पृष्ठ ४२६
८–कीथ, वही, पृष्ठ ४३८ मुनिजिनविजय, 'अभिधानप्पदीपिका', पृष्ठ १५६ (प्रका० १९८० विक्रमी, अहमदाबाद) ९–गैरोला, वही, पृष्ठ ४३०
१०–गैरोला, वही, पृष्ठ ६४१, पुरुषोत्तमदेव की 'भाषावृत्ति' ५/२/११२
११–गैरोला, वही, पृष्ठ ६४१, विट्ठल की 'प्रक्रियाकौमुदी' भाग १, पृष्ठ ६१०, ६८६, भाग २, पृष्ठ १४५
१२–गैरोला, वही, पृष्ठ ६४१, उणादिवृत्ति, पृष्ठ ८०, १४२ गैरोला, वही, पृष्ठ ६४७

के समय में विद्यमान थे। बौद्ध वैयाकरण मैत्रेयरक्षित (१२वीं शता०) ने महाभाष्य पर एक टीका लिखी थी जो अब अनुपलब्ध है। यही विद्वान 'न्यासारतन्त्रप्रदीपटीका' 'तन्त्रप्रदीप' 'धातुप्रदीप' तथा 'दुर्घटवृत्ति' के भी रचनाकार हैं।

'प्राणपणित' नामक महाभाष्यवृत्ति तथा भाषा-वृत्ति' के रचनाकार पुरुषोत्तमदेव[1] (१२वीं शती) भी कल्हण के समकालीन वैयाकरण एवं कोशकार थे। इन्होंने अनेक व्याकरण व कोश ग्रन्थों की रचना की।

काशिका पर विद्यासागर मुनि[2] (१२वीं शती से पूर्व) ने 'प्रक्रिया मंजरी' धर्मसूत्र के व्याख्याता हरिदत्त मिश्र[3] (१२वीं शती) ने 'पद मंजरी' रामदेव मिश्र[4] (१२वीं शती) ने 'वृत्तिप्रदीप' लिखी। इसी काशिका पर इन्दुमित्र[5] (१२वीं शती से पूर्व) ने 'अनुन्यास' लिखा।

जैनाचार्य हेमचन्द्र[6] (१०८८-११७२ ई०) ने शब्दानुशासन ग्रन्थ तथा उसी पर 'बृहद्वृत्ति टीका' लिखकर एक नवीन सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया।

१२वीं शती के उत्तरार्द्ध में सिंहली बौद्ध भिक्षु धर्म-कीर्ति[7] ने 'रूपावतार' व्याकरण ग्रन्थ लिखा।

शरणदेव[8] ने दुर्घटवृत्ति ग्रन्थ की रचना की (११७२ ई०)।

कृष्णलीलाशुक[9] (बिल्वमंगल) (१२वीं शती) ने भी एक काव्यात्मक 'श्रीचिह्नप्रकाश' लिखकर उसमें वररुचि-व्याकरण के उदाहरणों को स्पष्ट किया है। यह भी महाकवि कल्हण के सम-सामयिक थे।

ज्योतिषाचार्य भास्कराचार्य[10] को कौन नहीं जानता? उन्होंने 'सिद्धान्तशिरोमणि' का प्रणयन किया। वह सिद्धहस्त कवि भी थे। इनका स्थितिकाल ११४४ ई० के आसपास है।

१—गैरोला संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६४१ ६४३, भाषावृत्ति, पृष्ठ १, अमरकोश टीका सर्वस्व, भाग २ पृष्ठ २०७ सृष्टिधरकी भाषावृत्त्यर्थ विवृति १।
२—वाचस्पति गैरोला 'संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६५५
३—वा० गैरोला, वही पृष्ठ ६५५ ४—वा० गैरोला वही पृष्ठ ६५५
५—गैरोला वही पृष्ठ ६५४
६—गैरोला वही पृष्ठ ६५६ बी० वरदाचार्य संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २८२
७—गैरोला वही, पृष्ठ ६५७ ८—गैरोला वही पृष्ठ ६५७
९—गैरोला, वही, पृष्ठ ६५९ बी० वरदाचार्य वही पृष्ठ २८४
१०—गोरखप्रसाद भारतीय ज्योतिष का इतिहास पृष्ठ १९१ गैरोला वही पृष्ठ ६०८। ११—गैरोला वही, पृष्ठ ६०८-६०९

सन् १०८८–११७२ ई० है । मम्मटाचार्य[1] ने अपने काव्यप्रकाश की रचना ११०० ई० के आसपास की । ये सब महाकवि कल्हण के समवर्ती हैं ।

आस्तिकदर्शन के आचार्यों में जिनमें से कुछ का उल्लेख पूर्व ही हो चुका है । 'न्यायलीलावती' के लेखक वल्लभाचार्य[2] (१२वीं शती), 'तर्करत्न' 'न्यायरत्नाकर' तथा 'शास्त्रदीपिका' के लेखक पार्थसारथिमिश्र[3] (१२वी शती १०५०–१९२० ई०), मीमांसक मुरारिमिश्र[4] (१२वीं शती), विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक तथा 'श्रीभाष्य', 'गीतभाष्य' आदि के प्रणेता रामानुजाचार्य[5] (१०१७–११३७ ई०), द्वैतवाद के प्रवर्तक वेदभाष्यकार तथा 'न्यायमालाविस्तर' के कर्त्ता माधवाचार्य[6] (१११९ ई० जन्म), 'खण्डनखण्डखाद्य' वेदान्त ग्रन्थ के रचयिता श्रीहर्ष[7] (१२वी शती), मिथिला के प्रसिद्ध नैयायिक 'न्यायकुसुमाञ्जलि' के निर्माता 'उदयनाचार्य'[8] (१२वी शती) तथा 'षट्दर्शनसमुच्चय' के कर्त्ता हरिभद्र[9] (१२वी शती) महाकवि कल्हण के समवर्ती थे ।

गद्यकाव्य के क्षेत्र में 'गद्यचिन्तामणि' के रचयिता वादीभसिंह[10] (११०० ई०) तथा उदयसुन्दरीकथा' के प्रणेता सोड्ढल[11] (११०० ई०) उल्लेखनीय हैं । चम्पू काव्यों में भोजराज[12] (११वीं शती) का 'चम्पूरामायण' महाकवि कल्हण से कुछ ही समय पूर्व का है ।

'चण्डकौशिक' नाटक के कर्त्ता क्षेमीश्वर[13] (११वी शती), 'कुन्दमाला' के

१–बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ०९६

२–गैराला, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' पृ० ४८४ वी० वरदाचार्य इनका समय लगभग १०५० ई० मानते हैं । देखो पृ० ३२८

३–वी० वरदाचार्य, वही, पृ० ३४९

४–गैरोला, वही, पृ० ४९०, वी० वरदाचार्य, वही, पृ० ३४८

५–ई० डब्ल्यू० थामसन हिस्ट्री आफ इण्डिया', पृ० १०४ तथा वी० वरदाचार्य, वही, पृ०३६५

६–ई० डब्ल्यू० थामसन, वही, पृ० १०४, गैराला, वही, पृ० ५०४–६

७–दासगुप्ता व डे, वही, पृ० ३२५–३२६

८–श्री हर्ष का स्थितिकाल–गैराला, वही, पृ० ८६४

९–वी० वरदाचार्य, वही, पृ० ३७४

१०–दासगुप्ता व डे, वही, पृ० ४३२ (संपादित कुप्पुस्वामी शास्त्री मद्रास १९०२)

११–दासगुप्ता व डे, वही, पृ० ४३१ (संपादित–गायकवाड ओरियन्टल सीरीज बड़ौदा, १९२०) तथा वी० वरदाचार्य, वही, पृ० १६६

१२–दासगुप्ता व डे, वही, पृ० ५०८

१३–गैरोला, 'संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', पृ० ७०८

लेखक दिङ्नाग[1] (११वीं शती) 'कर्णसुन्दरी' नाटिका के रचनाकार 'बिल्हण'[2] (११वी व १२वी शती), 'यज्ञफलम्' नाटक का अज्ञातनामा लेखक[3] (११वी व १२वी शती), 'धूर्तविटसम्वाद' (भाण) के रचयिता ईश्वरदत्त[4] (११०० ई०), प्रतीकात्मक शैली के नाटको मे प्रथम उपलब्ध नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' के कर्त्ता 'कृष्णमिश्र'[5] (११०७ ई०), 'मुदितकुमुदचन्द्र' प्रकरण के लेखक यशश्चन्द्र[6] (११२४ ई०), 'नलविलास' तथा निर्भयभीम' व्यायोग के कर्त्ता एव 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक तथा 'कौमुदी-मित्रानन्द' प्रकरण के प्रणेता जैनाचार्य हेमचन्द्र-शिष्य रामचन्द्र[7] (११००-११७५ ई०), छायानाटको की प्रतिनिधि रचना 'दूताङ्गद' के रचयिता सुभटकवि[8] (१२वी शती) 'लटकमेलकम्' प्रहसन के कर्त्ता शखधर कविराज[9] (१२वी शती) 'धनजयविजय' व्यायोग के रचनाकार कनकाचार्य[10] (१२वी शती), पराथपराक्रम' व्यायोग के रचयिता प्रह्लाददेव[11] (१२वीं शती) तथा कर्पूरचरित' भाण, 'हास्यचूडामणि' प्रहसन, त्रिपुरदाह' डिम, किरातार्जुनीय' व्यायोग, 'समुद्रमथन' समवकार, 'माधवी' वीथी, 'शर्मिष्ठाययाति' अक तथा रुक्मिणीपरिणय', ईहामृग के रचनाकार एव कालिजरनरेश परमर्दिदेव तथा उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्मदेव के अमात्य व सम्मानित विद्वान् वत्सराज[12] नाटक के क्षेत्र मे विशेषणरूपेण उल्लेखनीय हैं। ये सब महाकवि कल्हण के सम-सामयिक नाटककार थे।

अलकारशास्त्रकारो मे मम्मटाचार्य, जैनाचार्य हेमचन्द्र, 'वाग्भटालकार' प्रणेता वाग्भट और रुय्यक का नाम पहले ही आ चुका है। कुछ अन्य अलकारशास्त्रकार जैसे 'औचित्य-विचारचर्चा' के कर्त्ता 'क्षेमेन्द्र'[13], 'नाट्यदर्पण' के

१-गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ७०८, बलदेव उपाध्याय 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० २६३

२-वी० वरदाचार्य, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० २३५

३-'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा', पृ० ९६-९७

४-गैरोला 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० ८२१

५-गैरोला, वही, पृ० ८१२   ६-वी० वरदाचार्य, वही, पृ० २३५

७-बलदेव उपाध्याय-'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० २६२

८-गैरोला, वही पृ० ८१२   ९-वी० वरदाचार्य वही, पृ० २३५

१०-गैरोला, वही, पृ० ८१२-८२४   ११-गैरोला, वही पृ० ८२४

१२-वी० वरदाचार्य, वही, पृ० २३६।

१३-बलदेव उपाध्याय 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० ३५५

रचनाकार रामचन्द्र और गुणचन्द्र[1] (१२वीं शती) तथा 'चन्द्रालोक' के कर्ता जयदेव[2] (१२वीं शती) महाकवि कल्हण के समवर्ती थे।

कल्हण के ग्रन्थ व उनकी तिथि

महाकवि कल्हण का एक ही ग्रन्थ 'राजतरंगिणी' उपलब्ध है। रत्नाकर ने अपने 'सारसमुच्चय' में महाकवि कल्हण द्वारा प्रणीत एक अन्य ग्रन्थ का सन्दर्भ दिया है। उसका नाम 'जयसिंहाभ्युदय'[3] था परन्तु यह ग्रन्थ अब तक अनुपलब्ध है। इसमें कश्मीर नरेश राजा जयसिंह की अभ्युदय सम्बन्धी कथा वर्णित है। सम्भवत इसकी रचना राजतरंगिणी की रचना के अनन्तर सन् ११५० ई० के आस-पास हुई होगी।

राजतरंगिणी ऐतिहासिक महाकाव्यों की परम्परा मे एक अनूठी एव सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमे कश्मीर के राजाओ की तरंगिणी प्रवाहित हुई है। इसमे कश्मीर राजाओं का इतिहास राजा युधिष्ठिर के समकालीन राजा गोनन्द प्रथम से लेकर राजा जयसिंह (सिंहदेव) के शासनकाल के २२वें वर्ष तक अर्थात् ४२२५वें लौकिक वर्ष (११४९–५० ई०) तक का लेखनीबद्ध किया गया है।[4] महाकवि ने इस ऐतिहासिक महाकाव्य का प्रणयन ४२२४वें लौकिक वर्ष अर्थात् ११४८ ई० में प्रारम्भ किया[5] और दूसरे वर्ष उसे समाप्त कर दिया।

कश्मीर का लौकिक वर्ष ४२२४–११४८ ई० = ३०७५–७६ ई० पू० प्रारम्भ होता है। कलिवर्ष का प्रारम्भ ३१०१ ई० पू० माना जाता है, अर्थात् उसका प्रारम्भ ३१०१–७८ = ३१७९ शककाल पू० होता है।[6] इस प्रकार कश्मीर का लौकिक वर्ष, कलि वर्ष के २५ वर्ष बीतने पर प्रारम्भ हुआ।

महाकवि कल्हण का कथन है कि कलि के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर कौरव-पाण्डव हुए थे, अर्थात् ३१७९–६५३ = २५२६ शक-काल पू० मे कौरव-पाण्डव विद्यमान थे। इस प्रकार युधिष्ठिर का शक-काल २५२६ हुआ।। यही उल्लेख कल्हण ने भी किया है।

महाकवि कल्हण एक और सूचना अपने ग्रन्थ मे देते हैं। वह लिखते हैं कि तीसरे गोनन्द के समय से आज तक प्राय २३३० वर्ष बीते हैं और अब उन ५२ राजाओं के शासनकाल का १२६६वाँ वर्ष है। इस प्रकार कल्हण का समय

१–गैरोला, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० ९६५

२–कीथ, 'क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर', पृ० १४०–१४१

३–दासगुप्ता व डे 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर', पृ० ३५४

४–राजतरङ्गिणी, ८/३४०४ ५–वही, १/४८–५६

६–बृहत्संहिता, १३ अध्याय, ३ श्लोक।

निम्नांकित आता है—

गतकलि—	=	६५३ वर्ष
५२ राजाओं का शासनकाल	=	१२६६ वर्ष
तीसरे गोनन्द से अब तक (अर्थात् कल्हण के समय तक)	=	२३३० वर्ष
कुल योग	=	४२४९ वर्ष

और भी, महाकवि कल्हण का कथन है कि इस समय शक-काल के २४वें लौकिक वर्ष में १०७० वर्ष बीत चुके हैं। यह गणना भी निम्नांकित है—

गतकलि	=	६५३ वर्ष
युधिष्ठिर शककाल	=	२५२६ वर्ष
शक-काल	=	१०७० वर्ष
कुल योग	=	४२४९ वर्ष

यदि कलिवर्ष का प्रारम्भ ३१०१ ई० पू० माना जाय तो कल्हण की उपर्युक्त गणना ४२४९–३१०१=११४८ ई० की निकलती है, अर्थात् महाकवि ने अपने ग्रन्थ की रचना ११४८ ई० में प्रारम्भ की।

कलि वर्ष का प्रारम्भ ३१०१ ई० पू० से ही हुआ, इसका एक प्रमाण और उपलब्ध होता है। यह प्रमाण निम्नलिखित है। चालुक्यवंशोद्भूत श्री पुलकेशी महाराज के जैन-मन्दिर स्थित शिलालेख में लिखा[1] है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पंचसु ॥
पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पंचशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥

अर्थात् महाभारत युद्ध से ३७३५ वर्ष तथा शक राजाओं के कलिकाल में ५५६ वर्ष व्यतीत हुये हैं। इस प्रकार कलि वर्ष ३७३५–५५६=३१७९ ईसवी पू० आता है।

साहित्यदर्पण की भूमिका में महामहोपाध्याय प० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी का इस प्रकार का उद्धरण है[2]—

"शकारम्भे ३१७९ एतावत्कलिगतमासीद् इति ब्रह्मगुप्तादयो गाणितिकाः।

1–'साहित्यदर्पण' की भूमिका, पृ० २६ 2–वही

तथा च पठ्यते ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे–'गोऽगैकगुणा शकान्तेऽब्दा' इति । एवमेव सिद्धान्त-शिरोमणावपि, एवमेव च चालुक्यवंशोद्भूतस्य श्रीपुलकेशिनो जैनमन्दिरस्य-शिलालेखेऽपि ।"

गोरखप्रसाद महोदय लिखते हैं–"इस प्रकार कलियुग का प्रारम्भ ३१०२ ई० पू० *की १८वीं फरवरी के प्रारम्भ वाली अर्धरात्रि पर होना ठहरता है ।*"[1]

इस प्रकार उपर्युक्त गणना से राजतरंगिणी का रचनाकाल ११४८ ई० आता है ।

महाकवि कल्हण ने अपने ग्रन्थ में राजा जयसिंह के शासनकाल के २२वें वर्ष तक का वर्णन किया है, जिसे उन्होंने ४२२५वां लौकिक वर्ष कहा है । इस प्रकार ४२२५-३०७५ (६) ११४९-५० ई० में *महाकवि के ग्रन्थ राजतरंगिणी* की रचना समाप्त हुई । इस प्रकार राजतरंगिणी का रचनाकाल ११४८-५० ई० आता है ।

राजतरंगिणी की पृष्ठभूमि

राजतरंगिणी के प्रणेता हमारे चरितनायक कल्हण ने राजतरंगिणी का प्रणयन सच्चे कलाकार एवं कलापारखी की भाँति किया है । वह जानते थे कि कवि के काव्यामृत का पान करने से कवि तथा उसके काव्य में वर्णित पात्रों का यश शरीर अमरत्व को प्राप्त हो जाता है । वह यह भी जानते थे कि केवल कवि ही भूतकाल की घटनाओं को वर्तमानकाल की भाँति प्रत्यक्ष प्रस्तुत कर सकता है । उनके विचार से निष्पक्ष होकर सच्चा इतिहास लिखने वाला कवि ही प्रशंसा का पात्र होता है ।

महाकवि कल्हण ने प्राचीन इतिहासकारों के लिखे हुये इतिहास का पुनर्लेखन एक निर्दिष्ट लक्ष्य को लेकर किया है । इस महाकवि ने देखा कि प्राचीन इतिहासकारों ने निष्पक्षरूप में इतिहास ग्रन्थों का प्रणयन नहीं किया था । फिर प्राचीन इतिहासकारों ने बड़े इतिहास-ग्रन्थों की रचना की थी । तीसरे, उनमें एक बहुत बड़ा दोष यह था कि वे इतिहास-ग्रन्थ कठोर विद्वता से पूर्ण थे । फलतः वे साधारण जनता के समक्ष वास्तविक इतिहास का ज्ञान प्रस्तुत करने में अक्षम थे । उनका यह भी कथन है कि प्राचीन इतिहासकार क्षेमेन्द्र ने अनवधानता-वश अपने ग्रन्थ 'नृपावलि' में अनेक त्रुटियाँ की थी जिससे कि उनका कोई भी अंश निर्दोष नहीं रह गया था ।

इन सभी बातों को हृदयंगम करके महाकवि कल्हण ने काव्यात्मक शैली के द्वारा काश्मीर देश के इतिहास का वर्णन करने का सुप्रयास किया । इसीलिये स्थान-

१–भारतीय ज्योतिष का इतिहास, अध्याय ९, पृष्ठ ९५, (प्रथम संस्करण, १९५६)

स्थान पर उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का उचित सन्निवेश करके महाकवि ने इस इतिहास को सर्वांग सुन्दर महाकाव्य के रूप में अभिव्यंजित किया है।

महाकवि कल्हण की कवि-सुलभ प्रतिभा कश्मीर जैसी स्वर्गोपम पुनीत भूमि को प्राप्त कर मुखरित हो उठी। निरन्तरप्रवाहशील नदियों से आप्लावित, हिम सदृश सुस्वादु शीतल जल से पूर्ण द्राक्षाफलादि स्वर्ग-दुर्लभ पदार्थों से सम्पन्न कश्मीरमंडल की मनोहारिणी छटा ने महाकवि के मन पटल पर अमिट छाप डाल रखी थी।

कश्मीरमंडल के तुंग विद्याभवन, देवालय, मठ, मन्दिर तथा पवित्र तीर्थ-स्थानों ने महाकवि की कल्पनाभित्ति को विभिन्न रंगों की तूलिका-कृतियों से अलंकृत कर रखा था। महाकवि ने लिखा है—

"तीनों लोकों में भूलोक श्रेष्ठ है, भूलोक में कौवेरी (उत्तर) दिशा की उत्तम शोभा है, उसमें भी हिमालय पर्वत प्रशंसा के योग्य है और उस पर्वत पर भी कश्मीरमंडल परम रमणीक है।"

ऐसे कश्मीरमंडल की कथा को लेखनीबद्ध करने के लिये महाकवि का मन उत्कंठित हो उठा। कश्मीर का क्रमबद्ध इतिहास लिखने की सम्पूर्ण सामग्री कवि ने एकत्र कर रखी थी और उसे सांगोपांग लिखने की उसमें क्षमता थी। अतः महाकवि इस स्वर्गोपम प्रदेश के इतिहास प्रणयन के लोभ का संवरण न कर सका।

महाकवि कल्हण का अध्ययन गम्भीर एवं सर्वांगीण था। विशेषकर इतिहास ग्रन्थों के अध्ययन में वह बड़ी रुचि रखते थे। वह कवि सुव्रत के इतिहासग्रन्थ के गुण-दोषों से भली-भांति परिचित थे। वह क्षेमेन्द्रकृत नृपावली के इतिहासग्रन्थ के गुण दोषों से अभिज्ञ थे। उन्होंने प्राचीन विद्वानों द्वारा रचित ग्यारह ग्रन्थों का तथा नीलमुनि-प्रणीत नीलमतपुराण का भी अध्ययन एवं मनन-मंथन किया था। यही नहीं उन्होंने प्राचीन राजाओं द्वारा विभिन्न देव मन्दिरों, नगरों, ताम्रपत्रों, आज्ञापत्रों, प्रशस्ति-पत्रों तथा अन्यान्य शास्त्रों का अवलोकन-मनन एवं अध्ययन किया था, जिससे कि उनका सारा भ्रम दूर हो चुका था। उन्होंने नीलमतपुराण पद्ममिहिर विद्वान् के इतिहासग्रन्थ तथा छविल्लाकर विद्वान् के इतिहासग्रन्थ से कश्मीरमंडल के प्रारम्भिक ५२ राजाओं में से १० राजाओं का वर्णन पढ़ रखा था। इस प्रकार महाकवि को कश्मीर का क्रमबद्ध इतिहास लिखने के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो गई।

प्राचीन इतिहासकारों के इतिहास ग्रन्थों के अध्ययन से लोगों में विभिन्न राजाओं के शासनकाल के विषय में अनेक भ्रम फैले थे। महाकवि कल्हण की उत्कृष्ट अभिलाषा थी कि लोगों को सच्चा इतिहास जानने का उचित साधन मिले तथा वे

प्राचीनकाल के विभिन्न व्यवहारो से परिचित हो जावें। ऐसे इतिहास को वह अत्यन्त सुन्दर रीति से अभिव्यक्त करना जानते थे। सभी प्राणियो की क्षणभगुरता को दृष्टिकोण मे रख कर शान्तरस से राजतरगिणी की कथा को सम्वलित करके हमारे चरितनायक महाकवि कल्हण ने कश्मीरमडल के राजाओ की तरगिणी प्रवाहित की है।

इस इतिहासग्रन्थ का प्रणयन करने मे कल्हण ने इतिहास-सामग्री का समुचित उपयोग किया है। उन्होने गोनन्द प्रथम से लेकर राजा जयसिंह के राज्यकाल (११२७-११४९ ई०) तक के कश्मीर नरेशो के शासनकालो के विभिन्न घटनाचक्रो का कालक्रमपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। यह विवरण निष्पक्ष, यथातथ्य तथा सजीव है। गुण-दोष दर्शन मे महाकवि की स्पष्टवादिता एव निष्पक्षता उसको सच्चे इतिहासकार के पद पर प्रतिष्ठित कर देती है। महाकवि ने अपने समय का विस्तृत तथा सच्चा चित्र प्रस्तुत किया है। प्रारम्भिक तीन-चार तरगो का इतिहास दन्तकथाओ, जनश्रुतियो, परम्पराओ, पारिवारिक प्रथाओ एव विश्वास आदि की सहायता से लिखा गया है। अतएव कहीं-कहीं काल-गणना कृत्रिम तथा भ्रमपूर्ण प्रतीत होती है जैसे राजा रणादित्य का शासनकाल ३०० वर्षों का निर्दिष्ट करने से पाठक भ्रान्त हो जाते हैं। प्रारम्भिक तीन तरगा मे अर्थात् ईस्वी सन् की छठी शताब्दी के अन्त तक काल-गणना कृत्रिम मालूम पडती है। तथापि सप्तम एव अष्टम तरगो का यथातथ्य वर्णन महाकवि की वर्णनात्मक तथा विवेचनात्मक शक्ति का अप्रतिम निदर्शन है।

इन सब बातो के साथ-साथ महाकवि कल्हण की कुछ दृढ मान्यतायें थी। दैवगति की अनिवार्यता, शुभाशुभ शकुनो की फलवता, तथा कर्मफल की अवश्यभाविता मे महाकवि का अटूट विश्वास था। स्थान-स्थान पर इनका समावेश कल्हणकृत राजतरगिणी मे दृष्टव्य है।

उपर्युक्त तथ्य राजतरगिणी की रचना-पृष्ठभूमि की आधारशिलायें हैं जो इस महाकाव्य को ऐतिहासिक महाकाव्यो मे शीर्षस्थान प्रदान करती हैं। ये आधारशिलायें इतनी सुदृढ एव प्रामाणिक हैं कि वे महाकवि को एक विवेचनशील तथा उत्कृष्ट इतिहासकार के पद पर प्रतिष्ठित करती है। आधुनिक भारतीय ऐतिहासिक उपन्यासो मे जो मनोरजक तत्व विद्यमान रहता है, उसका बीजन्यास राजतरगिणी की इस पृष्ठभूमि मे हुआ। विभिन्न सस्कृतियो एव भाषाओ के जलोष्मा के सम्पर्क ने उस बीज को अकुरित पल्लवित, पुष्पित एव फलित बनाकर हमारे समक्ष आधुनिक भारतीय ऐतिहासिक उपन्यास के रूप मे प्रस्तुत किया है।

सस्कृत साहित्य मे राजतरगिणी एक अनूठी रचना, बेजोड प्रबन्ध एव अमर ऐतिहासिक कृति है।

द्वितीय अध्याय

राजतरंगिणी की संक्षिप्त कथा

गोनन्दादि ५२ नरेशों की कथा

विल्सन, बूलर और स्टीन आदि कतिपय पाश्चात्य इतिहासप्रेमी विद्वानों का कहना है कि–

"महाकवि कल्हण अपने इतिहास-प्रणयन कार्य में पूर्ण सफल रहे हैं। उन्होंने विभिन्न कश्मीर नरेशों के उत्थान-पतन की गाथा को तिथि तथा सम्वत् समेत लिखकर भारतीय इतिहास का बहुत बड़ा उपकार किया है। उनके इस सत्प्रयत्न से विस्मृतिगर्त में पड़े अनेक महापुरुषों के जीवनवृत्त का निर्णय करने में बड़ी सहायता मिलेगी। उसकी यह कृति देखकर हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि कल्हण बड़ा ही चतुर कलाकार था। वह मानव स्वभाव का अद्भुत पारखी था। वह अपने देश के नैतिक, भौतिक एवं आर्थिक परिस्थिति से भली भांति परिचित था। प्राचीन इतिहास के अन्वेषण में उसकी सूक्ष्म प्रतिभा विलक्षण कार्य करती थी। वह स्वाभिमानी काव्य-शिल्पी था। उसने यह ऐतिहासिक महाकाव्य किसी राजा से पुरस्कार प्राप्त करने के निमित्त नहीं लिखा था, अपितु ऐतिहासिक तथ्य विश्व के समक्ष रखने के उद्देश्य से ही उसने यह भगीरथ प्रयत्न किया और इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त की।"[1]

महाकवि कल्हण ने अपनी सुपरिचित जन्म-भूमि का ही इतिहास प्रणीत किया, क्योंकि महर्षि कश्यप के पावन तपोवन, शाकुन्तलभरत की पवित्र जन्म भूमि, ऋषियों के शारदा प्रदेश, अनेकानेक काव्येतिहास शास्त्रादि के रचना-स्थल विद्या एवं कला के प्राचीन केन्द्र, संस्कृत के धुरन्धर पण्डितों एवं कवियों की लीला भूमि तथा भारतवर्ष के शीर्ष स्थान कश्मीरमण्डल से अधिक रमणीय और गौरवशाली कौन मण्डल हो सकता था? उन्होंने स्वयं लिखा है–[2]

"त्रिलोक्यां रत्नसूः श्लाघ्या तस्यां धनपतेर्हरित्।
तत्र गौरीगुरुः शैलो यत्तस्मिन्नपि मण्डलम्॥"

अर्थात् तीनों लोकों में भू-लोक श्रेष्ठ है, भू-लोक में कौबेरी (उत्तर) दिशा

1–पाण्डेय रामतेज शास्त्री–प्राक्कथन, पृष्ठ ३-४
2–राजतरंगिणी १.४३

की शोभा उत्तम है, उसमे भी हिमालय पर्वत प्रशसनीय है, और उस पर्वत पर भी काश्मीर मण्डल परम् रमणीक है ।

राजतरगिणी की सक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

"कल्प के प्रारम्भ से छ मन्वन्तर तक हिमालय पर्वत के मध्य मे अगाध जल से परिपूर्ण सतीसर नामक एक विशाल सरोवर था । वैवस्वत नामक सातवें मन्वन्तर मे महर्षि कश्यप ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओ की सहायता से उस सरोवर मे निवास करने वाले जलोद्भव नामक राक्षस का वध कराया और सरोवर की भूमि पर कश्मीर मडल की स्थापना की । वितस्ता नदी के प्रवाहरूपी दण्ड तथा कुण्ड-रूपी छत्र धारण किये हुये सब नागों के राजा नीलनाग इस मडल का पालन करते है । कलियुग मे यहा कौरव-पाण्डव के समकालीन तृतीय गोनन्द तक ५२ राजे हो चुके थे ।[1] कलियुग मे उन गोनन्द आदि ५२ राजाओ ने २२६८ वर्ष तक काश्मीर देश पर शासन किया ।

कश्मीर राज्यासन को अलकृत करने वाले राजाओ का शासन-काल तथा भुक्त कलि का समय दोनो बराबर हैं । कलि के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर कौरव-पाण्डव हुये थे ।

जब राजा युधिष्ठिर पृथ्वी पर शासन करते थे तब सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर विद्यमान थे । युधिष्ठिर का शक काल २५२६ माना जाता है । उस समय कश्मीर मडल पर परम प्रतापी राजा गोनन्द राज्य करता था । गोनन्द जरासन्ध का मित्र था । राजा जरासन्ध ने अपने विरोधी मथुरा के यादवो के विरुद्ध राजा गोनन्द से सहायता मांगी । राजा गोनन्द ने अपनी सेना के द्वारा मथुरा नगरी को चारो ओर से घेर लिया । वीर राजा गोनन्द ने यादव वीरों के यश को मलिन कर दिया । तब बलराम ने अपनी सेना को धैर्य बँधाया । गोनन्द और बलराम का बहुत समय तक भीषण युद्ध हुआ । अन्त मे विजय श्री बलराम को मिली । गोनन्द ने वीरगति प्राप्त की । प्रथम तरग मे वर्णित गोनन्दादि ५२ राजाओ तथा गोनन्द-वशज अन्य २१ राजाओं का शासन वृक्ष तथा शासन काल निम्नाकित है—

प्रथम तरग (गोनन्दप्रथम से लेकर अन्य युधिष्ठिर तक)

शासन-वृक्ष

१—गोनन्द प्रथम

|

२—दामोदर

|

शेष अगले पृष्ठ पर

[1] राजतरंगिणी १,४४

पिछले पृष्ठ का शेष

|

३–यशोमती (दामोदर की रानी)

|

४–गोनन्द द्वितीय

\+

अज्ञातनामा ३५ राजाओं का शासन

\+

४०–नव

|

४१–कुशेशयाक्ष

|

४२–खगेन्द्र

|

४३–सुरेन्द्र

\+

४४–अन्य वंशज–गोधर

|

४५–सुवर्ण

|

४६–जनक

|

४७–शचीनर

\+

४८–राजा शकुनीपुत्र–अशोक (शचीनर के प्रपितृव्य का पुत्र)

|

४९–जलौक

\+

५०–संदिग्ध वंशज–दामोदर

\+

५१–तुरुष्क राजे — हुष्क, जुष्क, कनिष्क

\+

५२–अभिमन्यु

५२ राजाओं का शासन काल = २२६८ वर्ष

टिप्पणी–जिन राजाओं के उत्तराधिकारी उनके पुत्र हुये उनके नीचे(|) चिह्न लगा है और जो राजे अन्य वंशज अथवा संदिग्ध वंशज हैं, उनके ऊपर(+) चिह्न लगाया गया है।

शासनकाल

	वर्ष	मास	दिन
१–गोनन्द वंशज–गोनन्द तृतीय	२५	०	०
२–विभीषण	५३	६	०
३–इन्द्रजीत	३५	०	०
४–रावण	३७	०	०
५–विभीषणद्वितीय	३५	६	०
६–किन्नर	३९	९	०
७–सिद्ध	६०	०	०
८–उत्पलाक्ष	३०	६	०
९–हिरण्याक्ष	३७	७	०
१०–हिरण्यकुल	६०	०	०
११–वसुकुल	६०	०	०
१२–मिहिरकुल	७०	०	०
१३–वक्र	६३	०	१३
१४–क्षितिनन्द	३०	०	०
१५–वसुनन्द	५२	२	०
१६–नर	६०	०	०
१७–अक्ष	६०	०	०
१८–गोपादित्य	६०	०	६
१९–गोकर्ण	५७	११	०
२०–खिखिलाय (नरेन्द्रादित्य)	३६	३	१०
२१–अंध युधिष्ठिर	४०	९	१०
	योग १०१४	०	९

राजा गोनन्द के बाद उसका पुत्र दामोदर कश्मीराधिपति हुआ। गान्धार की राजकुमारी के स्वयम्वर में यादवों का निमन्त्रण था। पिता-वध-वैर के ऋण से उऋण होने के लिए दामोदर एक विशाल वाहिनी को लेकर गान्धार देश जा पहुँचा। भयंकर युद्धोपरान्त श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र के द्वारा दामोदर को वीरगति प्राप्त हुई।

श्रीकृष्ण ने दामोदर की गर्भवती रानी यशोमति देवी को कश्मीर मण्डल की शासिका बनवाया। तत्पश्चात यशोमति रानी के नवजात शिशु ने राज्यश्री का लाभ किया। वह गोनन्द तृतीय के नाम से विख्यात हुआ। तत्पश्चात् होने वाले ३५ राजाओं के नाम तक अज्ञात हैं, क्योंकि उनका इतिहास नष्ट हो जाने के कारण वे विस्मृति-सागर में निमग्न हो गये हैं।[1]

तदनन्तर लव, कुशेशयाक्ष, खगेन्द्र सुरेन्द्र, अप्रत्यक्षगोचर, सुवर्ण, जनक, शचीनर, अशोक, जलौक, दामोदर, तुरुष्कनरेशहुष्क, जुष्क एवं कनिष्क, अभिमन्यु तथा गोनन्द तृतीय ने कश्मीर मण्डल पर शासन किया। इन राजाओं में से अधिकांश राजे नगर निर्माण, विहार निर्माण, अग्रहारप्रतिष्ठा, अग्रहारदान, स्वर्णादि धनदान के लिए विख्यात हुए।

राजा शकुनी का प्रपौत्र अशोक बड़ा पुण्यात्मा राजा था। जैन धर्म को स्वीकार करके उसने अनेक स्तूपों का निर्माण कराया। उसने ९६ लक्ष दिव्य भवनों से विभूषित बहुत बड़ा श्रीनगर नामक नगर बसाया। उसने अन्य निर्माण कार्य भी किये। महाकवि कल्हण का अशोक ऐतिहासिक अशोक से मेल नहीं खाता।

अशोक पुत्र जलौक ने अपनी अद्भुत कीर्ति से समस्त संसार को आश्चर्य चकित कर दिया। वह सत्यवादी, शिवभक्त, अनेक देशों का विजेता, विद्वत्प्रेमी, चतुर्वर्णाश्रम धर्म का व्यवस्थापक, उत्तम शासक, नीतिमर्मज्ञ, अग्रहार–विहार निर्माणकर्ता, तपोनिष्ठ एवं प्रजाकल्याणपरक था। अन्त में अपनी धर्मपत्नी पट्टमहिषी ईशान देवी के साथ चीरमोचन तीर्थ में अपना शरीर त्याग करके वह शिवस्वरूप में लीन हो गया। अशोक पुत्र जलौक की ऐतिहासिकता प्रमाणित की जा चुकी है।

जलौक तनय दामोदर अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रभावशाली राजा था। उसने गुड्ड नामक सेतु का निर्माण कराया था। उस सेतु से दामोदर सद प्रदेश–स्थित एक नगर में जल पहुँचाने का विचार कर ही रहा था कि क्षुद्र ब्राह्मणों ने शाप दे दिया और उसके शासन का अन्त हो गया।

तत्पश्चात् कश्मीर मंडल तुरुष्क राजाओं के आधिपत्य में आया। ये

1–राजतरङ्गिणी १ ८३

इस राजा का मंत्री सन्धिमति अत्यन्त बुद्धिमान्, कीर्तिमान् और असाधारण शिव-भक्त था।

देव-मन्दिरों की इस आकाशवाणी से कि, "राज्य सधिमतेर्भावि" (भविष्य में इस राज्य का राजा सन्धिमति होगा) राजा जयेन्द्र भयभीत हो गया। उसने सन्धिमति को पहले तो कारागार में १० वर्ष रखा और बाद में क्रूर वाधिकों द्वारा वध करा दिया। तथापि अघटित घटना–पटीयान् विधाता के विलक्षण प्रभाव से योगिनियों ने सन्धिमति को पुनरुज्जीवित कर दिया। सन्धिमति ने आर्य राज के नाम से ४७ वर्ष तक राज्य का भोग किया। अपने शासनकाल में उसने अनेक मठ, प्रतिमा व शिवलिंग स्थापित किये और अनेक निर्माण कार्य किये। अन्त में राज्य कार्यों से विमुख होकर वह शान्त रस के कार्यों से विशेष रुचि लेने लगा। और एक दिन कश्मीर के समस्त प्रजा-जनों को राज्य-सभा में बुलाकर कश्मीर का सुरक्षित राज्य उन्हें लौटा दिया। फिर वह उत्तर की ओर सोदराम्बुतीर्थ में जाकर वैराग्यवस्था के आनन्द की अनुभूति करने लगा।

राजा सन्धिमति के चले जाने पर कश्मीर के प्रजा-जन तथा मन्त्रिगण गान्धार देश में जाकर महान् यशस्वी मेघवाहन को कश्मीर ले आये। मेघवाहन अन्धयुधिष्ठिर के प्रपौत्र गोपादित्य का पुत्र था।[1] गान्धार नरेश ने कश्मीर-नरेश को जीतने के लिए ही गोपादित्य का पालन-पोषण किया था। अब मेघवाहन कश्मीर मंडल का राजा बनाया गया।

तृतीय तरंग में मेघवाहन आदि १० राजाओं का शासनवृक्ष एवं शासन-काल इस प्रकार है

तृतीय तरंग (मेघवाहन से लेकर बालादित्य तक)

शासन-वृक्ष	शासन-काल		
	वर्ष	मास	दिन
१–अन्धयुधिष्ठिर प्रपौत्र गोपादित्य पुत्र–मेघवाहन (गोनन्द वंशज)	३४	०	०
२–श्रेष्ठसेन तुंजीन द्वितीय अथवा प्रवरसेन	३०	०	०
३–हिरण्य	३०	२	०

१–राजतरंगिणी ३,१४६

४—मातृगुप्त	४	९	१
तोरमाण			
५—प्रवरसेन	६०	०	०
६—युधिष्ठिर द्वितीय	३९	३	०
७—नरेन्द्रादित्य	१३	०	०
८—रणादित्य	३००	०	०
९—विक्रमादित्य	४२	०	०
१०— बालादित्य	३	४	०
योग	५८९	६	१

राजा मेघवाहन के प्रजा प्रेम, दया, दाक्षिण्य, अहिंसा-पालन, नवीन मठ, विहार, स्तूप व नगरों के निर्माण से कश्मीर की प्रजा का अनुराग अपने राजा के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। राजा की अलौकिक भावुकता में प्रजा-रंजन एवं कल्याण की वृद्धि हुई। राजा की जीव दया एवं उदारता अलौकिक थी।

तत्पश्चात् मेघवाहन-तनय श्रेष्ठसेन राजा बना। वह अत्यन्त वीर था। वह समस्त पृथ्वी को अपने घर का आंगन समझता था। प्रवरेश्वर शिव की स्थापना के अनन्तर उसने अनेकानेक देवालयों का निर्माण कराया। उसने ३० वर्ष तक पृथ्वी पर निष्कण्टक राज्य किया। तदनन्तर हिरण्य राजा बना। उसने युवराज तोरमाण को कारागृह में डाल दिया। इस अवधि में उज्जयिनी के चक्रवर्ती राजा विक्रमादित्य द्वारा प्रेषित मातृगुप्त को कश्मीर मंडल का राजा बनाया। राजा मातृगुप्त याचकों के लिए कल्पवृक्ष था। वह विद्याप्रेमी भी था। उसने कतिपय निर्माण कार्य भी सम्पन्न किए। अन्त में राजा विक्रमादित्य के मरणोपरान्त काशीधाम जाकर उसने संन्यास ग्रहण कर लिया।

तत्पश्चात् तोरमाण तनय प्रवरसेन ने कश्मीर मण्डल का राज्यभार वहन

किया। उसकी दिग्-विजय धर्म-विजय थी। उसने दसो दिशायें जीत ली। फिर उसने अनेक निर्माण काय किए। उसन वितस्ता नदी पर नौ-सेतु-निर्माण कराकर ससार मे नौ सेतु-निर्माण प्रथा का सूत्रपात किया। राजा प्रवरसेन ६० वर्ष तक जगतीतल का ऐश्वय भोगकर सदेह कैलाश-गामी हुआ।

तदनन्तर युधिष्ठिर, नरेन्द्रादित्य तथा रणादित्य कश्मीर-मण्डल के शासक हुये। राजा रणादित्य का शौर्य अप्रतिम था। उसने अनेक मन्दिरो का निर्माण कराया तथा अनेक प्रतिमाओ की स्थापना की। जिस प्रकार रघुवश मे भगवान् राम ने उसी तरह गोनन्द वश मे रणादित्य ने अपनी प्रजा को स्वर्ग सुख प्राप्त करा दिया। इन दोनो का प्रजा-प्रेम ससार मे अनुपम माना गया है।

तदनन्तर अत्यन्त पराक्रमी विक्रमादित्य तथा उसका अनुजबालादित्य कश्मीर के शासक बने। बालादित्य गोनन्द वश के साम्राज्यभोक्ता राजाओ मे से अन्तिम राजा थे। उनकी पुत्री अनगलेखा अत्यन्त रूपवती थी। एक ज्योतिषी के इस कथन पर कि राजा का जामाता राज्य का शासक होगा, राजा बालादित्य ने अपनी कन्या का विवाह साधारण कुलोत्पन्न दुर्लभवर्धन नामक अश्वघास कायस्थ के साथ कर दिया, जिससे कि एक साधारण कुल जन्मा युवक साम्राज्य का अधिकारी न बन सके। कालान्तर मे दुर्लभवर्धन नैतिक मार्गावलम्बी होने के कारण लोकप्रिय बन गया।

राज्य मन्त्री खख ने गोनन्द वश की पुरुष परम्परा समाप्त पा करके राज-जामाता दुर्लभवर्धन को राज्य का शासक बना दिया। इस प्रकार कर्कोटक नाग वश के शासन का प्रारम्भ हुआ मेघवाहन से बालादित्य तक १० राजे हुये, जिन्होने ५३६ वर्ष शासन किया।

कर्कोटक-वश

गोनन्द वश के अन्तिम राजा बालादित्य के कोई पुत्र न था, अतएव राज्य मन्त्री खख ने उसके जामाता दुर्लभवर्धन का राज्याभिषेक कर दिया। दुर्लभवर्धन कर्कोटक नाग वश मे उत्पन्न हुआ था, अतएव दुर्लभवर्धन के कश्मीर मण्डल के शासक बनने पर कर्कोटक नागवश का शासन प्रारम्भ हुआ। इस वश के दुर्लभवर्धन, दुर्लभक (प्रतापादित्य), चन्द्रापीड, तारापीड ललितादित्य, कुवलयापीड, वज्रादित्य, पृथ्व्यापीड, सग्रामापीड, जयापीड, जज्ज, ललितापीड, सग्रामापीड द्वितीय, चिप्पट जयापीड, अजितापीड, अनगापीड, उत्पलापीड, १७ राजाओ ने २६० वर्ष ६ मास १० दिन राज्य किया। उनका शासन-वृक्ष तथा शासन-काल निम्नांकित है—

चतुर्थ तरंग—कर्कोटक नाग वंश ।

(दुर्लभ वर्धन से लेकर उत्पलापीड तक)

शासन-वंश	शासन-काल		
गोनन्द वंश का अन्तिम राजा-बालादित्य			
अनङ्गलेखा =			
१-कायस्थ दुर्लभवर्धन	३६	०	०
२-दुर्लभक (प्रतापादित्य)	५०	०	०
तारापीड उदितादित्य	८	८	०
३-चन्द्रापीड ४-वज्रादित्य ५-ललितादित्य या (मुक्तापीड)	४	०	२६
	३६	७	११
(क्रमश)			
६-कुवलयापीड ७-वज्रादित्य (बप्पियक) या	१	०	१५
ललितादित्य	७	०	० क्रमश
८-त्रिभुवनापीड ९-पृथिव्यापीड १०-संग्रामापीड	४	१	०
११-जयापीड	३१	०	० क्रमश
१२-जज्ज[1]	३	०	०
१३-ललितापीड तथा	१२	०	०
१४-संग्रामापीड (द्वितीय) या पृथिव्यापीड	७	०	०
१५-चिप्पट जयापीड (७९३-८०५ ई०)	०२	०	०
१६-अजितापीड	०	०	७
(८०५-८३१ ई०)	२६	०	०
१७-अनङ्गापीड (८३३-८३६ ई०)	३	०	०
१८-उत्पलापीड (८३६-८५५ ई०)	१९	०	११
योग	२६०	६	१०

[1] जयापीड का साला या मंत्री

राजा दुर्लभवर्धन का विवाह गोनन्दवश के अन्तिम राजा बालादित्य की पुत्री अनगलेखा से हुआ था। उसने अनेक ग्राम ब्राह्मणो को दान मे दिये थे। श्रीनगर मे उसने दुर्लभस्वामी नाम की मूर्ति स्थापित की। राजा प्रतापादित्य ने अनेक अग्रहार स्थापित किये और प्रतापपुर नामक नगर बसाया।

राजा चन्द्रापीड बडा ही पुण्यात्मा एव यशस्वी था। वह क्षमाशील होते हुए भी अत्यन्त पराक्रमी था। राजनीति में तो वह अद्वितीय था। उसके सामने कोई अन्य राजा न्याय-प्रिय न था। उसके न्याय की कथायें अत्यन्त मार्मिक एव शिक्षाप्रद हैं। प्रच्छन्न अपराध का पता लगाकर अपराधी को दण्ड देना या तो राजा कार्तवीर्य के शासनकाल मे होता था या राजा चन्द्रापीड के शासनकाल मे।

कहा जाता है कि विष्णु भगवान् ने स्वप्न मे दर्शन देकर एक बार इस राजा की न्याय-विषयक शका का समाधान किया था। उसके धार्मिक कृत्यों से देश में सतयुग का सा वातावरण दृष्टिगोचर होने लगा था। इस उच्चकोटि के शासक को उसके दुष्ट भ्राता तारापीड ने एक मान्त्रिक ब्राह्मण के द्वारा आभिचारिकी क्रिया द्वारा मरवा डाला।

तारापीड अत्यन्त ही क्रूर शासक था। वह देवताओ से द्वेष करके ब्राह्मणो का दण्ड द्वारा दमन करने लगा। उसकी भी मृत्यु अभिचारिकी क्रिया द्वारा हुई।

तारापीड के अनन्तर उसका अनुज ललितादित्य कश्मीर मडल का राजा हुआ। रण-दुन्दुभी के भीषण निनाद के प्रेमी इस राजा ने दिग्विजय करते हुये गाधिपुर, अन्तर्वेद, कान्यकुब्ज आदि के राजाओ से लोहा लिया और विजय-श्री का लाभ किया।

कहाँ तक कहा जाय, इस राजा की विजय पताका पूर्व मे पूर्वी समुद्र तट, कलिंग, गौड आदि देशो मे, दक्षिण मे कर्नाटक, कावेरी तट व सुदूर समुद्री द्वीपो में, पश्चिम मे क्रमुक, काकण, द्वारिका उज्जयिनी, काम्बोज आदि देशो म, उत्तर में तुखार देश, भूटान, दरददेश, प्राग्ज्योतिषपुर तथा मध्य मे मरु-प्रदेश, स्त्री राज्य तथा कुरु देश मे फहराने लगी।

इस राजा (ललितादित्य) ने अनेक नगरो, मन्दिरों, विहारो, स्तूपो आदि का निर्माण कराया। उसने विभिन्न देवताओ की मूर्तियो की स्थापना की, जैसे मार्तण्ड भगवान्, विष्णु भगवान् वराह भगवान्श्री, गोवधन देव, गरुड भगवान्, बुद्ध भगवान्, तथा उनके पार्षदो की मूर्तियाँ। इसके शासनकाल मे हिन्दूधर्म, बुद्धधर्म, जैनधम सभी का आदर किया जाता था। हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायो का समान रूप से सम्मान किया जाता था।

राजा ललितादित्य बडा ही उदार एव दानी था। वह विद्वत्प्रेमी था। वह अश्वशास्त्रमर्मज्ञ था। देश, काल की परिस्थिति के प्रभाव मे राजा ललितादित्य

कभी-कभी बड़े भयंकर एवं अनिन्दनीय कार्य कर बैठता था। मदिरा पीकर वह अग्निदाह, वध आदि कार्य करा देता था।

ललितादित्य के दिवंगत होने पर कश्मीर का शासक कुवलयापीड हुआ। संसार की समस्त विभूतियों को विनाशशील तथा क्षणभंगुर समझ कर वह तपस्या हेतु राज्य का परित्याग करके नैमिषारण्य (नैमिषारण्य) तीर्थ चला गया, जहाँ प्रखर तपस्या करके उसने असाधारण सिद्धि प्राप्त की।

तदनन्तर वज्रादित्य, पृथ्व्यापीड तथा संग्रामापीड नामक राजे हुये जिन्होंने क्रमशः सात वर्ष, चार वर्ष एक मास व सात दिन राज्य किया। तत्पश्चात् वज्रादित्य-तनय जयापीड कश्मीराधिपति हुआ। जब वह विजय-यात्रा पर निकला तो उसके साले जज्ज ने विद्रोह करके कश्मीर-मंडल के सम्पूर्ण शासन को हस्तगत कर लिया। राजा जयापीड प्रयागतीर्थ होता हुआ गौडाधिपति जयन्त द्वारा रक्षित पौण्ड्रवर्धन नामक नगर में पहुँचा। तीन वर्ष के शासन के उपरान्त श्रीदेव नामक एक ग्राम-चण्डाल ने जज्ज का वध कर दिया।

राजा जयापीड पुनः सिंहासनारूढ हुआ। राजा जयापीड विद्वत्प्रेमी होने के साथ-साथ अत्यन्त पराक्रमी था। उसने जयपुर एवं प्रतिहारिका आदि नगरों का निर्माण करा कर यशोपार्जन किया। दिग्विजय करती हुई उसकी विशाल-वाहिनी हिमालय से चलकर पूर्वी समुद्रतट तक जा पहुँची। कई बार राजा जयापीड ने दुःसाहस के कार्यों में हाथ डाल कर अपने जीवन को संकट में डाल लिया। अन्त में वह बड़ी युक्ति से विवेकशीलता एवं धैर्य का परिचय देते हुए उन भीषण विपत्तियों से मुक्त हुआ।

कालान्तर में राजा जयापीड ने अपने पितामह का मार्ग त्याग कर पिता के क्रूरतापूर्ण मार्ग का अनुसरण करना प्रारम्भ किया। वह कायस्थ मुसाहिबों का बन गया। अधिक दण्ड, बन्धन, वध एवं अन्य अत्याचारों के द्वारा उसने प्रजा को पीड़ित करना प्रारम्भ किया। ब्रह्मदण्ड का दण्ड भोगकर वह दण्डधारी नरेश दिवंगत हुआ।

तत्पश्चात् जयापीड का पुत्र ललितापीड कश्मीर का राजा बना। विषय-लोलुप यह राजा गणिकाओं का मित्र था और निम्नकोटि की परिहास-कला में अत्यन्त प्रवीण था। वह मर्यादा-प्रिय वृद्धजनों को अपमानित कराकर प्रसन्न होता था, और उसे वेश्याप्रेमियों का साथ बहुत रुचिकर लगता था। उसके दिवंगत होने पर उसका पुत्र संग्रामापीड गद्दी पर बैठा। फिर राजा ललितापीड का शिशु चिप्पट जयापीड अथवा बृहस्पति राजा बना। वह सन् ७९३ ई० (३८६९ लौकिक वर्ष) में राज्यसिंहासन का अधिकारी बना था। उसके पाँच मामा—पद्म, उत्पलक, कल्याण, मम्म और धर्म थे, जिनमें उत्पलक और मम्म अत्यन्त शक्तिशाली थे। ये

एक दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र किया करते थे, और विभिन्न राजाओ को राजगद्दी पर बिठाने को तत्पर रहते थे। राज्य के लोभवश उन्होने अपने भागिनेय राजा चिप्पट जयपीड का सन् ८०५ (३८८१ लौकिक वर्ष) मे अभिचार क्रिया द्वारा वध करा दिया।

तत्पश्चात् उत्पलक ने अजितापीड को शासक बनाया। २६ वर्ष तक उपर्युक्त पाँचो मामे निर्बल राजाओ को राज्याधिकार देकर स्वय वास्तविक शासक बने रहे। सन् ८३१ ई० (३९०७ लौकिक वर्ष) मे मम्म और उत्पलक इन दोनो भाइयो में राज्याधिकार के लिये भीषण युद्ध हुआ। मम्म और उसके पक्षपातियो ने अजितापीड को राज्यच्युत करके सग्रामापीड द्वितीय के पुत्र अनगापीड को सिहासनासीन किया। तीन वर्ष पश्चात् उत्पलक-तनय सुखवर्मा ने अजितापीड के पुत्र उत्पलापीड को कश्मीर शासक बनाया।

उस समय कर्कोटक-वशी राजाओ का कुल नष्टप्राय हो गया था और उत्पलकवश उन्नति पर था। अतएव शूर नामक मन्त्री ने राजा उत्पलापीड को पदच्युत करके उत्पलकतनय सुखवर्मा के पुत्र अवन्ति वर्मा को सन् ८३६ ई० (३९१२ लौकिक वर्ष) मे राज्य-सिहासन का अधिकारी बना दिया। इस प्रकर कर्कोटक वश का अन्त हुआ।

उत्पल–वंश

अवन्ति वर्मा के सिंहासनासीन होते ही उत्पल वश का प्रारम्भ हुआ। इस वश मे सब ११ राजे हुये। जिन्होंने शभुवर्धन सहित कुल मिलाकर ८३ वर्ष ४ मास राज्य किया। इन राजाओ का शासन-वृक्ष एव शासन-काल का विवरण निम्नाकित है।

पचम तरग–उत्पल–वश आदि

(अवन्तिवर्मन् से लेकर शूरवर्मन् तक)

शासवृक्ष — शासनकाल–८५५ ई० से लेकर ९३९ ई० तक–८३ वर्ष ४ मास

आखुव ग्राम निवासी उप्प कलवार

उत्पलक | पद्म | कल्याण | मम्म | धर्म | जयादेवी = राजा ललितापीड

मम्म → यशोवर्मा

जयादेवी → (कर्कोटक नागवशज)

शेष अगले पृष्ठ पर

सुखवर्मा
चिप्पट जयापीड
समर
+
धीर
मत्री मेरुवधन
७–निर्जित वर्मा
(पगु)
(९२१-९२२)
९–शंकर वर्द्धन
१०–शम्भु वर्द्धन (९३५-९३६)
११–उन्मत्त अवन्ति वर्मा
(९३७-९३९)
शंकर वर्मा
गूर वर्मा (९३९ ई०)
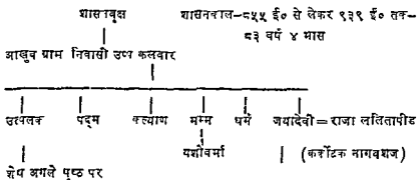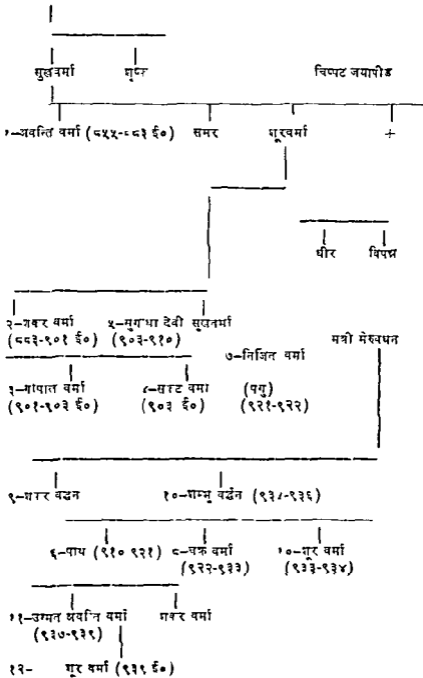
अवन्तिवर्मा अत्यन्त दानवीर, अनेक प्रासादों, मठो, नगरो, मन्दिरों आदि का निर्माता, धर्म-सहिष्णु एव उदार था। उसने कलियुग मे भी सत्ययुग का सा वातावरण उपस्थित कर दिया था। अन्त में सन् ८८३ ई० (३९५९ लौकिक वर्ष) मे श्रद्धा पूर्वक भगवद्गीता का श्रवण करते हुये एव वैष्णव धाम का स्मरण करते हुये उस नरेश-श्रेष्ठ ने अपनी ऐहिक लीला समाप्त की।[1]

तदनन्तर शूरवर्मा के पुत्र शकर वर्मा ने कश्मीर का भार सम्हाला। दायादो को परास्त करने एव राज्य-लक्ष्मी से विभूषित होने के पश्चात् विजिगीषु राजा शकर वर्मा ने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। उसने दार्वाभिसार नरेश, त्रिगर्त नरेश, गुजर देशाधिपति, त्रिगर्त नरेश आदि का मान मर्दन किया। एक थक्किय वशज राजकुमार इस कश्मीर नरेश के आश्रय की अपेक्षा रखता था। उसने शकर पुर नामक नगर बसाया। अपने व अपनी पत्नी सुगन्धादेवी के नाम पर उसने शकर गौरीश व सुगन्धेश शिव की प्रतिष्ठा की। शकरपुर में राजा ने वस्त्र बुनने का कारखाना तथा पशु क्रय-विक्रय हाट का प्रारम्भ किया।[2]

कालान्तर मे राजा शकर वर्मा लोभ के वशीभूत होकर धार्मिक सस्थानों की सम्पत्तियो का अपहरण करने लगा। उसने देव-पूजन की सामग्रियो पर बहुत बड़ा कर लगा दिया। उसने वेगार के बदले मे कर लेने की प्रथा का प्रारम्भ किया। उसके तेरह प्रकार थे। इस प्रकार अनेक दु खदायी करों का भार ग्रामीण जनता पर लाद दिया जिससे वह निर्धन हो गई।[3] एक ओर तो जनता व्याधि एव दुर्भिक्ष से ग्रस्त थी दूसरी ओर राजा का अर्थ-लोभ उसे सन्त्रस्त कर रहा था। उसके राज्य मे प्रसिद्ध कवियो को तो छोटे-मोटे धन्धे करके जीविका निर्वाह करना पड़ता था। परन्तु राजा का भार वाहक लवट दो सहस्र दीनार प्रतिदिन की दर से वेतन पाता था।[4] राजा की विवक-हीनता से अनेक निरपराध व्यक्तियो को प्राणो से हाथ धोना पडा। वीरानक नामक स्थान पर आक्रमण करके उसने उसे समूल नष्ट कर दिया। अन्त मे एक चाण्डाल के द्वारा छोडे हुए बाण से उसकी मृत्यु हो गई। उसने सन् ८८३ ई० से ९०१ ई० (३९५९ से ३९७७ लौकिक वर्ष) तक शासन किया।

तदनन्तर गोपाल वर्मा, सकट वर्मा, सुगन्धा देवी, पार्थ, पगु (निर्जित वर्मा) चक्र वर्मा, शूर वर्मा, शम्भु वर्मा, अवन्तिवर्मा तथा शूर शर्मा ने कश्मीर मडल पर शासन किया। गोपाल वर्मा व सकट वर्मा की मृत्यु के अनन्तर शकर वर्मा के वश का अन्त हो गया। अब प्रजाजनो की प्रार्थना स्वीकार करके सुगन्धा

१—राजतरङ्गिणी ५/१२५,१२६, २—वही ५,१६२, ३—वही ५,१७५, ४—वही ५,२०५,

देवी स्वयं राजकीय कार्य का संचालन करने लगी ।[1]

उन दिनों राजा को भी वश में रखने तथा अनुग्रह करने में समर्थ तन्त्रियों, पदातियों तथा एकांगों का एकता-बद्ध एक विशाल मण्डल था ।[2] उन्होंने मिलकर शूर वर्मा के पुत्र निर्जित वर्मा (पंगु) के दस वर्षीय पुत्र पार्थ को राजगद्दी पर बिठा दिया ।

पार्थ के शासनकाल में षड्यन्त्रों का प्राबल्य था । दैवी प्रकोप से समग्र कश्मीर मण्डल श्मशान के रूप में परिणत हो गया । वर्षा ऋतु के भीषण जल-प्लावन से सारी अगहनी फसल बह गई । सन् ९१६ ई० (३९९२ लौकिक वर्ष) में भयंकर अकाल पड़ा और असंख्य लोग भूख से मरने लगे ।[3]

वितस्ता नदी का प्रवाह शवों से अवरुद्ध हो गया । उस समय मन्त्रियों एवं तन्त्रियों ने अपने पास का अन्न अत्यधिक मूल्य में विक्रय किया । इस प्रकार धन का एकत्र करके वे धन-मद से उन्मत्त हो गये ।[4]

उस समय कश्मीर नरेश बुद्बुद—क्षण भंगुर[5] थे । उनके मन्त्री एवं तन्त्री अत्यन्त शक्तिशाली थे । वे स्वेच्छाचारिता से विभिन्न राजाओं को राज्य देते थे अथवा उन्हें राज्यच्युत कर देते थे । उस समय उत्कोच, लूटमार, कामुकता एवं पक्षपात का सर्वत्र प्राबल्य था । इस प्रकार यह काल कश्मीर के इतिहास में अत्यन्त परिवर्तनशील तथा निम्नकोटि का था । इस समय का इतिहास कृतघ्नता, अत्याचार दुराचार अनैतिकता तथा क्रूरता का इतिहास है ।

तत्पश्चात् सन् ९२१ ई० (३९९७ लौकिक वर्ष) में पार्थ को राज्यच्युत करके पंगु को शासक बनाया गया । पंगु अगले ही वर्ष अपने शिशु पुत्र चक्र वर्मा को राज्याधिकार देकर मर गया । सन् ९३१ ई० में चक्रवर्मा को राज्यच्युत करके तन्त्रियों ने पंगु के दूसरे पुत्र शूरवर्मा को राजा बनाया । फिर शूरवर्मा को राज्यभ्रष्ट करके पार्थ को तथा पार्थ को हटाकर चक्रवर्मा को (४०११ लौकिक वर्ष) राज्याधिकार दिया गया । पुनः चक्रवर्मा को राज्यच्युत करके मन्त्री मेरुवर्धन का कनिष्ठ पुत्र शम्भुवर्धन राजा बना दिया गया । चक्रवर्मा राज्यभ्रष्ट होकर श्री देवसर निवासी संग्राम डामर के पास पहुँचा । उस डामर की सेना लेकर उसने कश्मीर मंडल पर आक्रमण किया । राजा शम्भुवर्धन पकड़ा गया । एक चण्डाल भूभट ने चक्रवर्मा के सामने ही शम्भुवर्धन का वध कर दिया । पूज्य राजाओं के विश्वासघात पूर्वक वध करने की प्रथा इसी समय से प्रचलित हुई ।[6]

राज्य प्राप्त करके राजा चक्रवर्मा क्रूरता पूर्ण कुकृत्य करने लगा । उसने

१—राजतरङ्गिणी ५,२४३, २—वही ५,२४८ ३—वही ५,२७१ ४—वही ५,२७४ ५—वही ५,२७९, ६—वही ५,१४०

एक हंसी नामक डोम-बालिका को महरानी बना लिया। कुछ डोम जो बुद्धिमान् थे, राजा के सभासद बन गये और कुछ मंत्रियों के समान राज-कार्य करने लगे।

दुष्ट मंत्री, चण्डाली रानी एवं डोम प्रियजन ऐसे राजा चक्रवर्मा के लिए और कौन सा निकृष्ट कार्य करना शेष रह गया[1] था। उसने और भी दुराचार, कृतघ्नता आदि अनैतिक कार्य किए। उसने डामरों के किए हुए कार्यों का विस्मरण करके मुख्य-मुख्य डामरों को छल से मरवा डाला। फलत कुपित होकर कुछ विश्वस्त डामर तस्करों ने उसे (राजा चक्रवर्मा) सन् ९३७ ई० (४०१३ लौकिक वर्ष) में कुत्ते की मौत मार डाला।[2]

तदनन्तर राजा पार्थ का दुष्ट एवं पापी पुत्र उन्मत्त अवन्ति वर्मा को सिंहासनासीन किया गया। उसने अपने ही वंश को अपनी क्रूरता का लक्ष्य बनाया। उसने अपने अल्पायु अनुजों को कारागृह में भूखा मार डाला। उसने अपने पिता को दुष्टों द्वारा मरवा डाला। उसके क्रूर पापों के परिणाम से उसे क्षय रोग हो गया, और वह सन् ६३९ ई० (४०१५ लौकिक वर्ष) में मर गया।

तत्पश्चात् शूरवर्मा को राजा बनाया गया। इसी समय डामरों का दमन करने वाला कम्पनेश कमलवधन अपने अश्वारोहियों के साथ राजधानी में आ पहुँचा। उसने सारी राज-सेना जीत ली। उसे विश्वास था कि ब्राह्मण लोग उसे पराक्रमी समझकर उसे राजा बनावेंगे, परन्तु ऐसा न हुआ।

उत्पल वंश का नाश हो जाने से ब्राह्मणों ने पिशाचपुर निवासी वीरदेव तनय कामदेव के विद्वान् परन्तु दरिद्र पुत्र यशस्कर को एक मत से कश्मीर का राजा घोषित किया।[3]

दिद्दा

सन् ९३९ ई० (४०१५ लौकिक वर्ष) में यशस्कर देव कश्मीर का राजा बना। उसके पश्चात् रामदेव तनय वर्णट, संग्राम देव, पर्वगुप्त, क्षेमगुप्त, अभिमन्यु, नन्दि गुप्त, त्रिभुवन, भीमगुप्त, दिद्दा रानी ने कुल मिलाकर ६४ वर्ष ८॥ मास कश्मीर पर शासन किया। इस प्रकार यशस्कर से लेकर दिद्दा रानी तक दस शासकों का शासन-वृक्ष स्थानाभाव के कारण अगले पृष्ठ पर अंकित किया जाता है।

षष्ठ तरंग (यशस्करदेव से लेकर दिद्दा तक)

शासन-वृक्ष (शासन काल ९३९ ई० से लेकर १००३ ई० तक = ६४ वर्ष ८॥ मास)

|

शेष भाग का अगले पृष्ठ पर

१—राजतरङ्गिणी ५,३९१, २—वही ५,४१३, ३—वही ५,४७३,४७६

राजा यशस्कर ने अपनी प्रतिभा के चमत्कार से अपने पूर्वगामी राजाओं की विशृंखलित राज्य-व्यवस्था को सुव्यवस्थित कर दिया। उसके शासन-काल में चतुर्वर्णाश्रम धर्म का नियमित पालन होने लगा। उसकी न्याय-प्रियता विख्यात हो गयी थी। अनेक अवसरों पर धर्म और अधर्म के सूक्ष्म भेद का सम्यक् निरीक्षण व तथ्य का अन्वेषण करके इस विद्वान एवं विवेकशील राजा ने कलिकाल में भी सतयुग की अवतरणा-सी कर दी थी।[1]

कालान्तर में दुष्ट लोगों को पास रखने या नियुक्त करने से यह राजा कुमार्गगामी हो गया। वह उन्हीं दुष्टों की सहायता से प्रजा को पीड़ित करने लगा। वह प्रजा से अन्यायपूर्वक धन-दोहन करने लगा। वेश्यानुरक्ति के कारण उसे पुरोभागी लोगों का निन्दा-पात्र बनना पड़ा। बाद में राजा ने लगभग ५५ अग्रहार विविध उपकरणों सहित ब्राह्मणों को दान देकर अपनी दानवीरता का परिचय दिया।[2] उसने अपनी जन्मभूमि पिशाचपुर में आर्यदेशीय विद्यार्थियों के निवास के

१ राजतरंगिणी ६ ६७ २ वही ६ ८९

लिये एक मठ का निर्माण कराया । अन्त में उदर-रोग से पीड़ित होकर वह अपने बनवाये हुये मठ मे जाकर निवास करने लगा, जहाँ राज्य-लोलुप सम्बन्धियों ने विष देकर उसे मार डाला ।

कहते हैं कि राजा का देहान्त अभिचारकीय क्रिया द्वारा हुआ । वह सन् ९४८ ई० (४०२४ लौकिक वर्ष) मे दिवंगत हुआ।[1]

राजा यशस्कर के प्रपितृव्य रामदेव का तनय वर्णट केवल एक दिवस के लिये ही राजा रहा । तब यशस्कर का शिशु तनय संग्राम देव राजा बना । भूधर आदि ५ सचिवो के साथ पर्वगुप्त मुख्यमन्त्री बना । धीरे-धीरे उसने शिशु संग्रामदेव की संरक्षिका पितामही, पाँचो सचिवो तथा संग्रामदेव का वध करा दिया और स्वयं राजा बन गया । उसने द्रव्योपार्जन ही एकमात्र अपना लक्ष्य बना लिया और प्रजा को पीड़ित कर धन एकत्र करने वाले अधिकारियों को उसने और प्रोत्साहन प्रदान किया ।[2] सन् ९५० ई० (४०२६ लौकिक वर्ष) मे उसने सुरेश्वरी क्षेत्र मे जाकर शरीर-त्याग किया ।

तत्पश्चात् राजा पर्वगुप्त-तनय-क्षेमगुप्त राजा बना । वह द्यूत, मद्य, स्त्री-सेवन आदि अवगुणों का लोलुप था, और नीच-जन-सुलभ अश्लीलता उसका सहज दोष बन गई थी । भोग-वासना, परस्त्रीगमन, अधार्मिक, अनैतिक एवं अपवित्र कर्मों में आपाद-मस्तक निमग्न राजा क्षेमगुप्त की लूतारोग से सन् ९५८ ई० (४०-३४ लौकिक वर्ष) मे मृत्यु हुई । उसने ८ वर्ष शासन किया ।

खशनरेश सिंहराज ने जो अत्यन्त पराक्रमी तथा लोहर आदि दुर्गों का शासक था, अपनी पुत्री दिद्दा का विवाह राजा क्षेमगुप्त के साथ कर दिया था । द्वारपति (सीमापाल) फल्गुण ने भी अपनी कन्या चन्द्रलेखा का विवाह क्षेमगुप्त से किया था । दिद्दा चन्द्रलेखा से तो सपत्नी होने के कारण द्वेष करती ही थी वह चन्द्रलेखा के पिता फल्गुण और स्वयं अपने पति क्षेमगुप्त से भी द्वेष रखती थी ।[3]

दिद्दा स्त्री-स्वभाव के कारण मूढ़मति तथा लोलकर्णी (कच्चेकानो वाली) थी । जब क्षेमगुप्त के मरणोपरान्त उसका पुत्र अभिमन्यु कश्मीर मंडल का राजा बना तो दिद्दा रानी उसकी संरक्षिका बनी । पिशुन रक्क के कहने पर उसने अपने विश्वासपात्र फल्गुण को पर्णोत्स चले जाने को विवश कर दिया । कालान्तर मे जब दिद्दा रानी का विश्वास मंत्री नर वाहन पर न रह गया तो उसने अपमान से संतप्त होकर आत्म-हत्या कर ली । इसी प्रकार कम्पनेश यशोधर को उसने देश-निर्वासन का दण्ड देकर अपमानित किया । वह अत्यन्त दुःशीला और क्रूर थी ।

अभिमन्यु नाम-मात्र का राजा था । राज-काज का संचालन सचमुच दिद्दा रानी ही करती थी । अपनी माता के क्रूरता-पूर्ण पापो से दुःखी होकर अभिमन्यु

१—राजतरंगिणी, ६,११४, २—वही, ६, १३६, ३—वही ६, १९४

क्षयरोग ग्रस्त हो गया। उसकी मृत्यु सन् ९७२ ई० (४०४८ लौकिक वर्ष) में हुई।[1]

तदनन्तर दिद्दा रानी ने अपने अल्प-वयस्क पौत्र नन्दगुप्त को राज सिंहासनासीन कर दिया। नगराधिपति सिन्धु का भ्राता भुय्य अत्यन्त सदाचारी व्यक्ति था। उसने दिद्दा रानी के हृदय में प्रजा-अनुराग जागृत किया। इसी के फलस्वरूप रानी ने मन्दिरों, नगरों तथा मठों का निर्माण कराया।[2] परन्तु उसकी यह धार्मिक प्रवृत्ति केवल अल्प कालीन थी। एक ही वर्ष व्यतीत हुआ था कि उसने नन्दगुप्त को अपनी विलासिता में बाधक समझ कर आभिचारिकी क्रिया द्वारा उसकी जीवन लीला समाप्त करा दी।

इसी प्रकार इस पुंश्चली ने अपने दूसरे पौत्र त्रिभुवन को भी ९७५ ई० (४०५१ लौकिक वर्ष) में मरवा डाला। तत्पश्चात् तीसरे पुत्र भीमगुप्त को उसने सिंहासनारूढ़ किया।[3]

पर्णोत्स प्रान्त के वहिवास ग्राम निवासी तुंग को देखते ही दिद्दा रानी मोहित हो गई। तुंग के साथ अपनी प्रेम-लीला में पुर्णात्मा भुय्य को बाधक मान कर उस रानी ने उसका विषदान द्वारा वध करा दिया।

द्वाराधिपति फल्गुराज, वेलावित्त देवकलश तथा मुख्य मन्त्री नक रानी का कौटिल्य कार्य करते थे तो और लोगों की गणना ही क्या है ?[4]

जब राजा भीमगुप्त ने राज्य की दुर्व्यवस्था तथा अपनी पितामही का दुराचार दूर करने का प्रयत्न किया तो रानी दिद्दा ने उसे कारागृह में डाल दिया और कठोर यन्त्रणायें दीं। यन्त्रणाओं के कारण भीमगुप्त का कारागार में ही सन् ९८० ई० (४०५६ लौकिक वर्ष) में देहान्त हो गया।[5]

अन्त में रानी दिद्दा ने ९८० ई० में कश्मीर मण्डल की शासन-व्यवस्था का भार सम्हाला।

राजा क्षेमगुप्त के मरणोपरान्त ४ राजे—अभिमन्यु नन्दगुप्त त्रिभुवन तथा भीमगुप्त—नाममात्र के राजा थे। उनके शासन कालों का समय अर्थात् सन् ९५८ ई० से ९८० ई० तक (२२ वर्ष) दिद्दा रानी का ही शासन-काल कहा जाना चाहिए।

तदनन्तर सन् १००३ ई० (४०७९ लौकिक वर्ष) तक दिद्दा ने अपने नाम पर शासन किया। वह कूटनीति और जोड़-तोड़ के कार्य में अत्यन्त पटु थी।[6]

स्वर्णदान, उत्कोच, वध, राज्यनिर्वासन, कारावास आदि के द्वारा वह अपने शत्रुओं एवं विद्रोहियों का दमन कर देती थी। साम दाम, दण्ड और भेद इन

---

१ राजतरंगिणी	६,२८९,२९२	४ वही	६,३२४,३२५
२ वही	६,२९९–३०४	५ वही	६,३३२
३ वही	६,३१२,३१३	६ वही	६,३३९

३ अनन्तदेव
(पिछले पृष्ठ से)
राजराज
४ कलश (१०६३–१०८९ ई०)
भोजदेव
कन्दर्प
६ हर्षदेव
५ उत्कर्ष
विजयमल्ल
जयराज
बुप्पा
(१०८९–११०१ ई०)
रखैल पुत्र भोज
भोजदेव
भिक्षाचर
५ (११२०–११२१ ई०)
डोम्ब
प्रताप
मल्लराज
(पिछले पृष्ठ से)
१ उच्चल (११०१-११११ ई०)
३ सल्हण
लोठन
तिलक
४ सुस्सल (१११२–११२० ई०) (११२१–११२७)
२ रड्ड (११११ ई०)
(११११–१११२ ई०)
भोज
मल्लार्जुन
(यशस्कर देव वंशज)
सहस्रमंगल
४ सुस्सल
६ जयसिंह (सिंहदेव)
मल्लार्जुन
अगले पृष्ठ पर

(११२७–)

अम्बा पुत्रिका मेनिला राजतलक्ष्मी पदमश्री कमला गुल्हण तथा

अपरादित्य ललितादित्य जयापीड तथा

यशस्कर नर्मादित्य
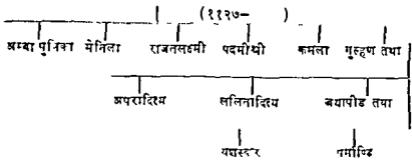
लोहर वंश–(१००३ ई० से ११०१ ई०तक)

लोहर वंश अथवा सातवाहन वंश का पहला राजा संग्रामराज था जिसने सन् १००३ ई० (४०७९ लौकिक वर्ष) की भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को दिद्दा रानी के स्वर्गस्थ हो जाने पर कश्मीर मंडल के राज्य-सिंहासन को सुशोभित किया। संग्रामराज दिद्दा रानी के भाई उदयराज का पुत्र था। यह अपनी चतुरता के बल पर ही दिद्दा रानी के द्वारा युवराज के पद पर अभिषिक्त किया गया था।[1]

लोहर वंश की वंशावली निम्नांकित है, जो द्रष्टव्य है–

लोहर वंश की वंशावली

राजानर

नरवाहन

फुल्ल

सातवाहन

चन्द्र

चन्द्रराज

गोपाल सिंहराज

शेष अगले पृष्ठ पर

1 राज तरंगिणी ६,३५५–३६२

पिछले पृष्ठ का शेष
दिद्दा (राजा क्षेमगुप्त)
उदयराज
कान्तिराज
अभिमन्यु
जस्सराज
संग्रामराज
विग्रहराज
नदगुप्त
त्रिभुवन
भीमगुप्त
हरिराज
तन्वगं
क्षितिराज
भुवनराज
अनन्तदेव
उदयनवत्स
राजराज
कलश
अज्जक
धम्मट
थक्कन
हर्षदेव
उत्कर्ष
भोजदेव
(बुप्पा)
कन्दर्प
विजयमल्ल
जयराज
उक्त अज्जक तथा
धम्मट
विजयराज, गुल्ल, वुल्ल, टुल्ल
रल्हण
मल्हण
रखैल पुत्र भोज
तथा
भोजदेव
डोम्ब
प्रताप
भिक्षाचर
गुग
मल्लराज
लल्ल
सल्हण
उच्चल
लोठन
तिलक
सुस्सल
शेष अगले पृष्ठ पर
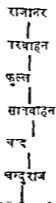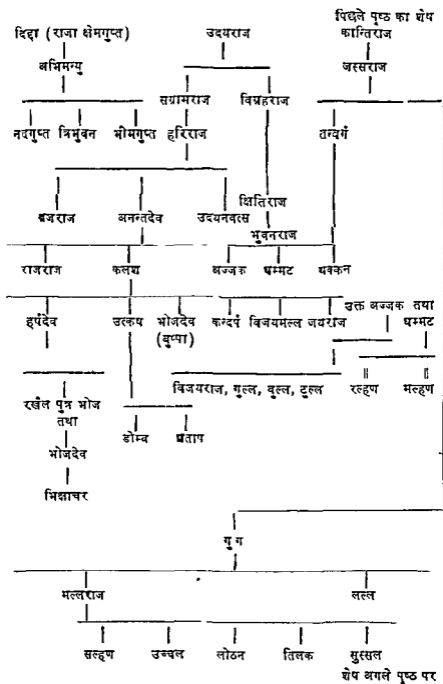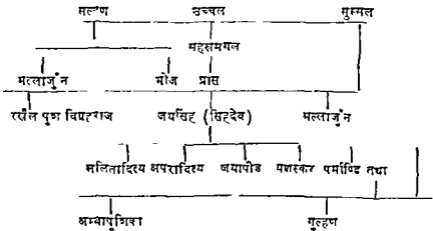
इस वंश के राजाओं के दो विभाग किये जा सकते हैं—

१ उदयराज के वंशज राजे।

२ दूसरा, कान्तिराज के वंशज राजे।

उदयराज के वंशजों ने सन् १००३ ई० से ११०१ ई० तक तदनुसार ४०७९ लौकिक वर्ष से ४१७८ लौकिक वर्ष तक राज्य किया। तदनन्तर उच्चल के सन् ११०१ ई० में सिंहासनारूढ़ होने पर कान्तिराज के वंशजों का शासन प्रारम्भ हुआ। इस वंश का राजा जयसिंह राजतरंगिणी में वर्णित अन्तिम शासक है, जिसके सन ११२७ ई० से ११४९ ई० तक के शासन काल में घटित घटनाओं का महाकवि कल्हण ने अपने ग्रंथ में लेखनीबद्ध किया है। राजा संग्रामराज के बाद ५ और राजे—सर्वश्री हरिराज, अनन्तदेव, कलश उत्कर्ष तथा हर्षदेव हुए जिन्होंने कुल मिलाकर ६८ वर्ष शासन किया।

इस लोहर वंश के शासन काल का बड़ा ही सजीव, ऐतिहासिक एवं मनोहारी वर्णन महाकवि कल्हण ने किया है। आप्तजनों से श्रवण करके अथवा अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करके घटनाओं का यथातथ्य वर्णन कवि की अपनी विशेषता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सभी घटनाएं कवि की आँखों के सामने ही घटित हो रही है।

राजा संग्रामराज ने राज्य का समस्त कार्य तुंग नामक मंत्री पर छोड़ दिया और स्वयं विविध प्रकार के भोगों का आनन्द लेने लगा। तुंग का प्रभाव पराकाष्ठा पर पहुँच गया। तुंग आदि पुराने मंत्रियों को निकाल कर बाहर करने के लिये ब्राह्मणों तथा कुछ मंत्रियों ने परिहासपुर में महापरिषद् के सदस्यों द्वारा अनशन कराया। अन्त में राजा ने उनकी माँगें स्वीकार कर लीं। तब वे दूसरी माँगें प्रस्तुत करने लगे, परन्तु तुंग का भाग्य उसके अनुकूल था। जब तक तुंग प्रजा के कल्याणार्थ कार्य करता रहा उसका भाग्य सूर्य अप्रतिम प्रभा से देदीप्यमान रहा।

अन्त में पुष्पाल्पता के प्रमाद से उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। उसने नीच

कुलोत्पन्न एव क्षुद्रप्रकृति वाले मद्रेश्वर नामक कायस्थ को अपना सहायक चुन लिया और अपने भाग्य को पतनोन्मुख कर दिया। राजा ने तुंग को त्रिलोचन-पाल (शाहीराजा) की सहायता के लिये भेजा। उस समय हम्मीर (तुरुष्क सेनापति (त्रिलोचन पाल पर आक्रमण करने को आतुर था। तुंग ने उक्त हम्मीर की सेना की एक टुकड़ी को पराजित कर दिया।

दूसरे दिन कपट युद्ध मे निपुण हम्मीर ने क्रुद्ध होकर अपनी समस्त सैन्य-शक्ति से युक्त होकर त्रिलोचनपाल की सेना पर आक्रमण कर दिया। त्रिलोचनपाल ने अप्रतिम शौर्य का प्रदर्शन किया, किन्तु वह तुंग सहित विजित हो गया। कुछ ही समय में शाहीराज्य का नाम निशान तक अवशिष्ट न रहा।

इधर परास्त होकर तुंग राजा संग्रामराज के पास पहुंचा। उसकी पराजय से राजा को किंचित्मात्र भी दुःख अथवा क्रोध न आया, परन्तु वह तुंग की अधीनता से मुक्त होना चाहता था। राजा ने अपने भाई विग्रहराज की प्रेरणा से तुंग का बध करा दिया और उसकी समस्त संपत्ति अपने अधिकृत कर ली। राजा ने महेश्वर को तुंग के स्थान पर नियुक्त कर दिया। उस पापाचारी ने देव मंदिरो का कोष तथा अन्यान्य वस्तुओ को लूटना प्रारम्भ कर दिया। राजा ने दुर्बुद्धि, पार्थ, कृपण सिन्धुपुत्र मतंग एवं चन्द्रमुख तथा अन्य अयोग्य व्यक्तियो को उच्च पदो पर नियुक्त किया। फलतः राज्य के कुछ दरदो, दिविरो (कायस्थो) और डामरों ने उद्धत होकर उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया। राजा संग्रामराज ने एक भी पुण्य कार्य न किया था। उसकी रानी श्री लेखा भी दुराचारिणी बन गई थी। अन्त मे सन् १०२८ ई० (४१०४ लौकिक वर्ष) की आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को राजा संग्रामराज की मृत्यु हो गई।

संग्रामराज का पुत्र हरिराज कश्मीर मंडल का राजा बना। अपने २२ दिन के शासन काल में ही यह राजा विलक्षण वैभवयुक्त नवीन चन्द्रकला के समान संसार के सभी राजाओं का वन्दनीय बन गया। उसकी आज्ञा अमोघ एवं अप्रतिहत थी।

हरिराज विद्वत्प्रेमी और दानवीर था। उसके अल्पकालीन शासन काल में ही राज्य में लूट पाट और चोरी होना बन्द हो गये थे। उसकी दुराचारिणी माता रानी श्री लेखा ने अभिचार क्रिया द्वारा उसे मरवा डाला।

तदनन्तर राजा हरिराज का अल्प वयस्क पुत्र अनन्त देव सिंहासनारूढ़ हुआ। (सन् १०२८ ई०—४१०४ लौकिक वर्ष) उसी समय अनन्तदेव के पितृव्य विग्रहराज ने कश्मीर राज्य को अपने हस्तगत करने के लिये लोहर प्रान्त से कश्मीर की ओर अभियान किया और लोठिका मठ मे ठहर गया। श्री लेखा ने उस मठ को जलवा दिया। फलतः विग्रहराज तथा उसके समस्त सैनिक उसी मठ में जल कर भस्म हो गये।

राजा अनन्तदेव अत्यन्त अपव्ययी एवं व्यसनी था। वह अपने प्रियसेवको

राज्य-भार स्वयं सम्हाल लिया था और कलश केवल नाममात्र का राजा रह गया था। तदनन्तर कलश कुसंग मे पड़ने के कारण अत्यन्त कुकर्मी तथा दुराचारी बन गया। वह विटों और चाटुकारो की बातो मे भ्रान्तचित होकर दोषों को ही गुण समझने लगा। जब उसके कुकर्मों की बात राजा और रानी के पास पहुँची तो वे क्रुद्ध होकर राज्य का परित्याग करके विजयेश्वर क्षेत्र चले जाने को उद्यत हो गये। तदनुसार विविध सामान व धनराशि लेकर वे विजयेश्वर क्षेत्र चले गये। वे वहाँ स्वर्गोपम सुखो का अनुभव करने लगे परन्तु कलश को अब भी चैन न था। वह कुछ ही समय बाद कुछ सैनिको को लेकर अपने पिता से युद्ध करने के लिये चल पडा। रानी सूर्यमती के समझाने बुझाने से कलश ने पिता के साथ सन्धि कर ली। अब भी कलश का वैर-भाव शान्त न हुआ था। उसने अनन्तदेव के अश्वो के लिये रखी हुई घास मे आग लगवा दी, और उसके अनेक पैदल सैनिको को मरवा डाला। तत्पश्चात् उसने विजयेश्वर क्षेत्र मे आग लगवा दी। जिससे कि राजा अनन्तदेव का सर्वस्व भस्मसात् हो गया। इस पर भी राजा के पास धनाभाव न होते हुये देखकर कलश उसे देश से निर्वासित करने के विचार से दूतो के द्वारा उसे पुनर्वार पर्णोत्स प्रान्त मे चले जाने के लिये सदेश भेजने लगा।

रानी सूर्यमती पुत्र का पक्ष लेकर राजा को पुनर्वार ताने मारती हुई वहा से चल देने के लिये प्रेरित करने लगी। राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर रानी से कठोर वचन कहे, जिनका उत्तर रानी ने और भी कठोर वचनो से दिया। उन्हे सुनकर अत्यधिक क्रोधावेश मे आकर राजा ने अपनी गुदा मे छुरा भोक कर सन् १०७९ ई० मे विजयेश्वर शिव के समक्ष अपने प्राण त्याग दिये।

रानी सूर्यमती ने पिता-पुत्र-वैर कराने वाले पिशुनो को शाप दिया कि उनका तथा उनके कुटुम्बियो का कतिपय दिनों मे ही विनाश हो जाये। तदनन्तर रानी सूर्यमती धधकती हुई चिता में कूद कर भस्म हो गई। उसी चिता मे तीन सेवक व तीन दासियाँ भी जल मरी। राजा अनन्तदेव के प्रेमभाजन सेन तथा क्षेमत ने वैराग्य धारण कर लिया।

हर्षदेव अपने पितामह से प्राप्त धनराशि को लेकर परिजनो के साथ विजयेश्वर क्षेत्र मे ही रहने लगा। वह अपने पिता राजा कलश से विरोध भाव रखने लगा। राजा कलश के दूतो के पुनर्वार समझाने से हर्षदेव ने पिता से सन्धि कर ली।

अब राजा कलश ने अपनी आर्थिक स्थिति सुधार ली। उसके हृदय मे धार्मिक भावना का उद्रेक हुआ। प्रजा-जनो के पुण्योदय से राजा कलश की सद्-बुद्धि प्रजापालन-कार्य में अपने पिता अनन्तदेव के समान उदार व निपुण हो गई। वह वर्तमान व भविष्य मे होने वाले आय-व्यय का बडी सावधानी से देखरेख करने

लगा । अपने समय का उचित रीति से विभाजन करके वह त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम का सेवन करने लगा । उसके राज्य की प्रजा विवाह, यज्ञ, यात्रा आदि सैकड़ों महोत्सवों में तन्मय होकर सदा सुखमय एवं दैन्य-विहीन जीवन व्यतीत करने लगी ।

राजा कलश ने अपने सच्चे सेवकों को उचित पारितोषिक देकर प्रसन्न किया । *यह सब होते हुए भी वह अपनी कुटेवें छोड़ने में असमर्थ था । रूप-लोभी* वह राजा अपने अन्तःपुर में ७२ रानियाँ रखता था । उसे शाक्तमतानुसार की जाने वाली महा समय पूजा पर बड़ी आस्था थी । वह नैतिकता का परित्याग करके शाक्त गुरुओं के साथ यथेष्ट मद्यपान करता था ।

राजा कलश ने कई निर्माण कार्य कराये । उसने कई शिवालयों का निर्माण करवा कर उनके शिखरों पर स्वर्ण-कलश, स्वर्णछत्र व स्वर्ण घंटिकायें लगवाईं । उसने कलशेश नामक शिवलिंग तथा अनेकानेक देव मूर्तियों की स्थापना की ।

उत्तरकाल में राजा कलश बड़ा ही लोभी हो गया । उसने मन्दिरों के नाम लगे हुये गाँवों का अपहरण कर लिया । उसने अयोग्य पुरुषों को सम्पत्ति को मापदण्ड मानकर उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त कर दिया । इस राजा ने कश्मीर में उच्चवर्ग की नर्तकियों के संग्रह करने की प्रथा तथा उपभोगी व्यसन की प्रथा का प्रचलन किया । उसने अपने पुत्र हर्ष को कारावास में डाल दिया । हर्ष ने अपने दिन बड़े कष्ट पूर्वक व्यतीत किये । राजा कलश के आचार व्यवहार में बड़ा परिवर्तन आ गया, उसने नैतिक मार्ग को तिलांजलि देकर क्रूरता धारण कर ली और प्रजाधन का अपहरण करना प्रारम्भ कर दिया ।

अन्त में उसे धातु क्षय का रोग हो गया । लोहर प्रान्त से अपने दूसरे पुत्र उत्कर्ष को बुलाकर उसने उसका राज्याभिषेक कर दिया, और हर्ष को उत्कर्ष के अधीन कर दिया ।

सन् १०८९ ई० (४१६५ लौकिक वर्ष) में ६९ वर्ष की आयु में राजा कलश का स्वर्गवास मार्त्तण्ड भगवान की प्रतिमा के समक्ष हुआ ।

राजा उत्कर्ष ने राज्य प्राप्ति के बाद राज्य व्यवस्था की ओर ध्यान देना बन्द कर दिया । कायस्थ जाति राजमन्त्रियों को उसने समस्त अधिकार सौंप दिये । राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में वह अपने मन्त्रियों से [illegible] नहीं करता था । वह [illegible] के समान कृपण हो गया था और उसका व्यवहार भी निकृष्ट कोटि का था ।

कलश पुत्र विजय मल्ल तथा जयराज अपने भाई हर्षदेव को कारागार से मुक्त करने के पक्ष में थे । विजयमल्ल ने डामरों के साथ राजधानी पर आक्रमण किया ।

उसके सैनिकों ने राजा उत्कर्ष की हस्तिशाला एवं गोमहिष-शाला को जला कर भस्म कर दिया।

अन्त में हर्षदेव को बन्धन मुक्त करके राज-सिंहासन पर बिठाया गया, और राजा उत्कर्ष को कैद कर लिया गया। उत्कर्ष ने खिन्न होकर कैंची से अपने गले की रक्तवाहिनी नसें काट डाली। इस प्रकार केवल २२ दिन राज्य करके वह सन १०८९ ई० (४१६५ लौकिक वर्ष) में २४ वर्ष की आयु में दिवंगत हुआ। उसकी कुछ रानियों ने अग्नि में प्रवेश करके अपने पातिव्रत धर्म का परिचय दिया।

राजा हर्षदेव की कथा नृशंसता, औदार्य एवं करुणा एवं हिंसा तथा धार्मिक सुकृत्य एवं पापाचार से ओत-प्रोत है। यह कथा स्पृहणीय होते हुये भी वर्जनीय, वन्दनीय होकर भी निन्दनीय स्मरणीय होते हुये भी त्याज्य तथा वाञ्छनीय होकर भी अपकीर्ति के योग्य है।

राजा हर्षदेव ने प्रार्थियों की प्रार्थना सुनने के लिये अपने राजभवन के चारों ओर बड़े बड़े घंटे बँधवा दिये। उसने अनुभवी मन्त्रियों के हाथ में राज्य व्यवस्था का कार्य सौंप दिया। उसने सेवकों को उचित पद व पारितोषिक देकर सन्तुष्ट कर दिया। उसने कश्मीर-मंडल की श्री-समृद्धि में पर्याप्त योग दिया। उसने नागरिकों एवं राज्य कर्मचारियों को राजोचित वेष धारण करने की स्वतन्त्रता दी। उसके पास रहने वाली सुन्दरियों की वेश भूषा एवं शोभा अद्वितीय थी।

विद्वत्प्रेमी राजा हर्षदेव ने विद्वानों को त्रिविध रत्न-जटित अलंकारों से सुशोभित किया। उसकी अनेक राजधानियों में गगनचुम्बी एवं पर्वतीय प्रदेशान्तर्गत स्वर्णकलशों से विभूषित अनेक राजप्रासाद दर्शकों के हृदयों में विस्मयभाव जागृत कर देते थे। उसके लगवाये हुये उपवन नन्दन वन से होड़ करते थे। विविध पशु-पक्षियों से परिपूर्ण पम्पा सरोवर का निर्माण उसी ने कराया था।

राजा हर्ष अनेक विद्याओं का अभिज्ञ था। उसके गीतकाव्य को सुनकर आज भी उसके शत्रु तक आँखों से आँसू बरसाने लगते हैं।

विलासमय जीवन-यापन करता हुआ वह राजा रात्रि जागरण करके राज-कार्य सम्पादित करता था, और विद्वानों के साथ शास्त्रचर्चा, गीत तथा नृत्य आदि विनोद के विभिन्न साधनों में रात व्यतीत करता था। उसका सभा मंडप दान और भय दोनों का क्रीडास्थल बना हुआ था। राजा हर्षदेव तथा उसके आश्रित सेवकों ने अनेक निर्माण कार्य किये। इस प्रकार उसके राज्य में एक विचित्र तथा वर्णनातीत कला का प्रादुर्भाव होता हुआ दिखाई दिया।

कुछ समय बाद पुराने मन्त्रियों का स्थान नये मन्त्रियों ने ले लिया और उनका प्रभाव बढ़ने लगा। राजा हर्षदेव इन नवीन मन्त्रियों के बहकावे में आ गया, और कुमार्गगामी बन गया। उसने मृत पिता के वैर का बदला लेने के लिये पिता

द्वारा स्थापित मठों, नगरों आदि उसके स्मारक चिह्नों को लूट खसोट कर नष्ट कर डाला। उसने पिता द्वारा संचित समस्त धन व्यय कर डाला और उसका नाम पापमेन रख दिया। उसने अपने अन्तःपुर में ३६० स्त्रियाँ रख ली।

तत्पश्चात् राजा हर्ष ने दुष्टों के बहकावे में आकर वीर तथा बुद्धिमान मंत्री कन्दर्प के वध का असफल प्रयत्न किया। जयराज, धम्मट, तुन्न, बुद्ध, गुल्ल, विजयराज, डोम्ब आदि का वध कराकर राजा हर्षदेव ने अपने ही कुल का उच्छेद कर डाला।

सैन्य-सुधार के नाम पर राजा हर्षदेव धन का अपव्यय करने लगा। दुष्टों की कुमन्त्रणा से उसने मन्दिरों की सम्पत्ति का अपहरण करने का विचार किया परन्तु उसके परमभक्त सेवक प्रयाग ने उसे ऐसा करने से विरत कर दिया। फिर भी राजा ने सभी मन्दिरों की देव प्रतिमाओं का विध्वंस करा दिया। प्रजा पीडन के लिये उसने नये-नये अधिकारी नियुक्त किये, जैसे अर्थ मंत्री गौरव, अश्वनायक महेश्वर, देवोत्पाटन नायक उदयराज, पुरीपनायक आदि।

राजा हर्ष ने अनेक मूर्खतापूर्ण कार्य किये, जैसे गायन या वादन पर असीमित पारितोषिक, कर्णाटकाधिपति पर्माडि की रानी चन्दला के चित्र पर मुग्ध होना, धूर्तों द्वारा चन्दला के नाम पर राजा से धनापहरण तथा अन्य लज्जाजनक कार्य।

महाकवि कल्हण ने राजा हर्ष के दुराचार एवं व्यभिचार की कुख्याति के कारण उसे 'हर्षरूपी तुरुष्क' कहा है।

राजा हर्ष के आतंकपूर्ण कार्यों की संख्या में वृद्धि होती गई। उसके कर्मचारी अत्यन्त क्रूर तथा स्वार्थी थे। वे राजा को विभिन्न अधिकारियों के विरुद्ध प्रेरित किया करते थे। वह राजा स्वयं अयोग्य हो गया था, और अयोग्य व्यक्तियों को अपने सम्पर्क में रखता था। उसके महामन्त्री सहेल ने लवन्यों के विरुद्ध राजा को प्रेरित किया और दुग्ध-घात नामक दुर्ग को हस्तगत करने की योजना उसके समक्ष प्रस्तुत की। राजा ने अपने सभी सामन्तों को एकत्र करके दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया और दरदराज के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस युद्ध में गुणरत्न मल्लराज के उच्चल और सुस्सल नामक दो पुत्रों ने राजा की पराजित होती हुई सेना की रक्षा करने के कारण असाधारण ख्याति प्राप्त की।

तदनन्तर राजा हर्ष ने सेनापति मल्ल का पुत्र सहित वध करा दिया। उसकी मृत्यु के ही कारण दो मंत्री चम्पकराज तथा उदय एक ही साथ मर मिटे। कहाँ तक कहा जाय "मण्डलं राजदण्डेन सततेन परिक्षतम्। शारदाम्रोपमाऽस्यासीत् प्रामृदद् यत्परम्परा।

अर्थात् "राजा हर्ष के अत्याचारों से पीडित कश्मीरमंडल में घाव पर नमक छिड़कने के समान दुःखों की अन्य परम्परायें भी आने लगीं।" राज्य में चोरी, महामारी, बाढ़ महगी आदि सकटो से प्रजा क्षुब्ध हो उठी। सन् १०९९ ई० (४१७५ लौकिक वर्ष) की भयानक बाढ से कश्मीर के ग्राम पानी मे डूब गये और पानी मे पड़कर फूली और सड़कर भीषण दुर्गंध फैलाने वाली लाशो से सारी नदियों का पानी ढक गया।

इन सकटों से ग्रस्त अत्यन्त दुःखी प्रजा पर राजा और भी अत्याचार करते लगा यथा, वक्षोच्छेदन, कर, निरपराध वध, डामरो का सामूहिक विनाश आदि। डामरो की मुण्डमालायें व मुण्डतोरणावलियाँ राजा की प्रसन्नता एव सतोष की वृद्धि करती थीं। नवन्य-डामरो की मुण्डमालायें लोग राजा के पास उपहार स्वरूप भेजते थे। इसलिये महाकवि कल्हण ने राजा को "हर्षदेव रूपी भैरव" सज्ञा से अभिहित किया है। इसके पश्चात् उन्होंने लिखा है—

'किमन्यद्राक्षस कश्चित्सुरतीर्थर्षिपूजितम्।
निहन्तु मण्डलमिद हर्षव्याजादवातरत् ॥१२४३॥
उल्लासो रात्रिपु दिने स्वाप क्रौर्यमुदग्रता।
अवाग्भयन्वम् वर्तव्य दक्षिणेशोचिते रति ॥१२४४॥
इत्याद्यस्य केचिद्धर्मा नक्तचरोचिता।
तथा हि तत्कालभवं प्रिया प्राणै प्रतीतिता ॥"१२४५॥

अर्थात् "उस राजा हर्ष के विषय मे और अधिक कहाँ तक कहूँ? मेरे विचार मे तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि जैसे कोई राक्षस देवताओ एव ऋषियों द्वारा पूजित इस पवित्र कश्मीर मंडल को नष्ट करने के लिये हर्ष का रूप धारण करके यहाँ पैदा हुआ था, क्योंकि क्रूरता, औद्धत्य, बातचीत मे क्षुद्रता और यमराज के करने योग्य प्राणहरण आदि कार्यों मे प्रेम-ऐसे राक्षसोचित कार्य राजा हर्ष को बहुत ही प्रिय थे।

जब मत्री लक्ष्मीधर ने राजा हर्ष को उच्चल व सुस्सल का वध करने के लिये प्रेरित किया तो उच्चल राजपुरी और सुस्सल कालिजर चले गये। अब उच्चल राजा हर्ष के विरुद्ध किये जाने वाले षड्यन्त्रों का केन्द्र बन गया।

डामर लोग तथा राजपुरी नरेश सग्रामपाल उच्चल को कश्मीर के राजा के रूप मे देखना चाहते थे, अतएव वे उच्चल को कश्मीर पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित करने लगे। राजपक्ष के सैनिकों और उच्चल के डामर सैनिकों का कई बार सामना हुआ, विजयश्री का लाभ न करते देख उच्चल तारमूलक चला गया। इसी बीच मे सुस्सल ने शूरपुर की ओर से उपद्रव करना प्रारम्भ

किया, और उच्चल ने लोहर प्रान्त की ओर से आक्रमण किया। हिरण्यपुर के ब्राह्मणों ने उच्चल का राज्याभिषेक कर दिया।

राजा हर्ष को उसके मन्त्रियों ने बहुत समझाया कि वह या तो सपरिवार लोहराचल चला जावे या समर भूमि में पराक्रम प्रदर्शित करे अथवा आत्महत्या कर ले। परन्तु राजा हर्ष को इनमें से कोई भी विचार रुचिकर न प्रतीत हुआ। इधर राजा के सेवक, सैनिक आदि उसके विरुद्ध हो गये। राजा ने अविवेक-भाग होकर मल्लराज का वध करा दिया।

पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर सुस्सल ने क्रोधाविष्ट होकर वल्लिपुर तक के सभी गाँव जलाकर भस्म कर दिये। राजपुत्र भोजदेव ने सुस्सल को पराजित कर दिया। फलस्वरूप सुस्सल ने भाग कर लवणोत्स में शरण ली। नगराधिकारी नाग उच्चल से जाकर मिल गया। राजा की सेना पराजित हो गई। डामरों ने राजमहल को लूट लिया और अग्निप्रवेश से पराङ्मुख रानियों का बलात् अपहरण कर लिया।

राजा हर्ष किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। मतिभ्रमवश वह अपना कर्तव्यपथ निश्चित न कर पाता था। उसके सभी सैनिक पलायन कर गये थे। किसी भी मन्त्री ने उसे शरण न दी। अब उसे अपने सेवकों पर भी विश्वास न रहा था। अन्त में हर्ष एक श्मशान में स्थित गुण नामक तपस्वी की कुटिया में पहुँचा। वहाँ उसने दो रातें व्यतीत कीं। तपस्वी के मुख से उसने अपने पुत्र भोजदेव के मरण का हृदयविदारक वृत्तान्त सुना। वह तपस्वी विश्वासघाती था। उसने राजा के स्थान का रहस्योद्घाटन कर दिया। राजा उच्चल के सैनिकों ने राजा हर्ष को चारों ओर से घेर कर उसका वध कर दिया।

जिस प्रकार हर्ष जैसा ऐश्वर्यशाली और राजा कोई न हुआ उसी प्रकार उसके समान गर्हित मृत्यु और किसी की नहीं हुई। उसकी मृत्यु सन् ११०१ ई० (४१७७ लौकिक वर्ष) में हुई। उसका सिर काट कर राजा उच्चल के पास भेज दिया गया। उस लाठी के सिरे पर रख कर तरह-तरह की दुर्दशा के साथ चारों ओर नचाया गया। राजा के शिरच्छेद की प्रथा इसी समय से प्रारम्भ हुई। उसका शव एक लकड़हारे के द्वारा एक अनाथ मुर्दे के समान जला दिया गया।

उच्चल

सन् ११०१ ई० (४१७७ लौकिक वर्ष) में राज्यश्री महाराज सातवाहन के वंश में उत्पन्न उच्चलराज के वंश का निवास-स्थान त्याग कर कालिनराज के कुल में जाकर निवास करने लगी। कालिनराज वंशज पहला राजा उच्चल हुआ।

राजा उच्चल अपने अनुज सुस्सल से अत्यधिक प्रेम करता था। सुस्सल

उद्दण्ड हो गया और प्रजा को पीडित करने लगा। राजा उच्चल ने उसे अधिराज्य पद पर अभिषिक्त करके लोहर प्रान्त का शासक बना कर लोहर भेजा। राजा ने भोजदेव के पुत्र भिक्षाचर को अपनी रानी के हाथ मे पालन-पोषण के लिये सौंप दिया।

राजा उच्चल ने डामरो को सुधरने का अवसर दिया, परन्तु पारस्परिक संघर्ष के कारण वे राज्य का परित्याग करके पलायन कर गये। राजा की स्थिति मे शनै-शनै सुधार होने लगा।

राजा उच्चल भीमादव डामर की दो शिक्षाओ को मन्त्र की भाँति हृदयगम किये था। पहली शिक्षा थी—लोक कल्याणार्थ भ्रमण और दूसरी थी—अविलम्ब विप्लव दमन।

राजा असाधारण धैर्यवान तथा मनस्वी था। वह अत्यन्त सदाचारी था। वह दु खियो के कष्ट दूर करने को सदा तत्पर रहता था, और अनशनकारियो के अनशन के कारणो का धर्माध्यक्ष के द्वारा सूक्ष्म विवेचन कराता था। वह निर्धन जनो का धन तथा याचको और प्रार्थियो का कल्पवृक्ष था। राज्य मे उत्कोच आदि अनैतिक कार्यों का समापन करना उसी का कार्य था। वह दोषी अधिकारियो को तत्काल सेवा कार्य से पृथक कर देता था और दण्डनीय व्यक्तियो को दण्ड देता था। वह शिवरात्रि आदि पर्वों पर धन की वर्षा करता था। वह नवीन भवन निर्माण तथा जीर्णोद्धार का व्यसनी था। उसके शासनकाल मे बडे बडे उत्सवो का आयोजन किया जाता था। अच्छे-अच्छे अश्वो का क्रय भी प्रचुर रूपेण होता था।

राजा उच्चल ऐतिहासिक कीर्ति पर अपार श्रद्धा रखता था। फलस्वरूप उसने अपने राज्य मे कायस्थो का मूलोच्छेद कर डाला। उस स्थिरप्रज्ञ राजा ने शुचिवृत्त (ईमानदार) अधिकारियो को नियुक्त करके प्रजा के कण्टको का उच्छिन्न कर दिया और दुष्टो को अविलम्ब अपने वश में कर लिया। उसने शिवरथ नामक विद्वान को सर्व विभागाध्यक्ष नियुक्त किया, जिससे ज्ञात होने लगा था कि कश्मीर राज्य सत्ययुग की स्थिति से भी उन्नत अवस्था मे प्रविष्ट करेगा।

राजा उच्चल की परिपक्व प्रज्ञा तथा विवेक ने राज्य के न्यायालयो को वास्तविक अर्थों मे न्यायालय बना दिया। महाराज मनु के सदृश मनस्वी तथा प्रजा पालन कार्य मे सतत् जागरूक राजा उच्चल की उत्कृष्ट शासन शैली अल्पकाल मे ही विख्यात हो गई। परन्तु यह सुव्यवस्था चिरस्थायी न रह सकी। राजा कालान्तर मे मात्सर्ययुक्त और ईर्ष्यालु होकर सम्मानित जनो का मानरूपी प्राण हरने लगा। वह अब रक्त पात, हाहाकार, द्वन्द्वयुद्ध, मल्लयुद्ध तथा वध का प्रेमी बन गया। वह मन्त्रियो की उचित सम्मतियो को ठुकराने लगा, और उच्च

अधिकारियों को अपमानित करने लगा। उसने क्षुद्र व्यक्तियों को उच्च पदों पर नियुक्त किया। सामनीति का प्रयोग करके उसने अपने अनुज सुस्सल और दरदराज को अपने ऊपर किये जाने वाले आक्रमणों से विरत कर दिया।

ऐसे संकटकालीन समय में सुस्सल तनय जयसिंह का जन्म हुआ। उसके जन्म के प्रभाव से ही अनेक बाधाओं का शमन हो गया। सुस्सल का विनय नीति ने वरण किया। सुस्सल और उच्चल के मध्य उत्पन्न वैर-भाव शान्त हो गया। फलस्वरूप कश्मीर मण्डल तथा लोहर मण्डल दोनों में स्थायी शान्ति स्थापित हो गई। तदनन्तर राजा उच्चल ने अनेक निर्माण कार्य सम्पन्न किये। उसकी रानी जयमती ने भी मठ विहारादि का निर्माण कराया।

एक बार राजा उच्चल क्रमराज्य-स्थित लहट-चक्र नामक ग्राम की ओर जा रहा था कि अचानक चोर-डाकुओं ने उसे घेर लिया। उनके कुचक्र से यत्न-प्रकारेण मुक्त होकर वह इधर-उधर भटकने लगा। सैन्य शिविर में उसकी मृत्यु का झूठा समाचार फैल गया। फलस्वरूप राज्य-लोलुप रड्ड, कुड्ड आदि राजा बनने की कल्पना करने लगे। शीघ्र ही राजा के जीवित होने के समाचार से सभी राज्य-लोलुपों की कामनाओं पर तुषारपात हो गया।

राजा उच्चल ने किसी सुन्दरी पर आसक्त होकर अपनी रानी जयमती से विरोध कर लिया। तत्पश्चात् उसने मधुनराज की कन्या बिज्जला एवं राजपुरी नरेश सोमपाल की कन्या से विवाह किया। थोड़े ही दिनों में द्विसज तनय रड्ड, व्यड्ड व [illegible] ने [illegible] राजा को महल में ही घेर लिया। सड्ड ने तलवार से राजा का शिरश्छेद कर दिया। राजा ने मृत्यु के पहले असाधारण शौर्य का प्रदर्शन किया था। वह सन् ११११ ई० (४१८७ लौकिक वर्ष) में दिवंगत हुआ।

रड्ड छड्ड आदि राजा यशस्कर देव के वंशज कहे जाते थे और इसी आकांक्षा ने उनको राज्य-लोलुप बनाया था। राजा उच्चल के मरणोपरान्त रड्ड कश्मीर का राजा बना परन्तु वह राजा बनकर भी सन्तोषित न हुआ। जैसे ही वह राज सिंहासन पर बैठा [illegible] विरुद्ध हो गये। अन्त में गर्ग ने रड्ड का वध कर दिया। रड्ड का अनुयायियों ने विहार मठ के निकट भाग और [illegible] मार कर प्रस्थान की [illegible]। फिर सड्ड राजा बना। परन्तु उसकी भी रड्ड की सी गति हुई। सड्ड के अनुयायी [illegible] और [illegible] पलायन कर गए। इस प्रकार [illegible] सत्ता-विहीन हो गया। उन विद्रोहियों ने यशस्कर देव की भांति [illegible] राज्य [illegible] प्रमाणित कर दिया कि उनका जन्म यशस्कर वंश में हुआ था।

गर्ग ने मल्लराज के ज्येष्ठ पुत्र सल्हण का राज्याभिषेक कर दिया। इस प्रकार कश्मीर में चार प्रहर के बीच में तीन-तीन राजे हो गये। जब सुस्सल ने अपने अग्रज उच्चल के वध का समाचार सुना तो वह शोकार्त्त हो उठा। दूसरे दिन कश्मीर पहुँच कर उसने गर्गचन्द्र को राजद्रोही घोषित किया। उसने भोग-सेन, कर्णभूति, वैजनेन मरिच और लवराज नामक भ्रातृद्रोहियों का वध करा दिया। गर्ग के सेनानायक सूर्य के द्वारा पराजित हो जाने पर सुस्सल दुर्गम मार्गों से होता हुआ अपनी राजधानी लोहर जा पहुँचा।

राजा सल्हण नाम मात्र का राजा था। राज्य के समस्त न्याय तथा सभी लोगों का हिताहित एवं जीवन-मरण गर्ग के हाथों में केन्द्रीभूत था। उस समय लूटमार, हत्या, व्यभिचार, प्रजापीडन एवं उच्छृंखलता का सर्वत्र आधिपत्य था। प्रमादी राजा सल्हण सभी राजनीतिज्ञों की दृष्टि में उपहास का पात्र बन गया था। कश्मीरी नागरिकों पर गर्ग के अत्याचारों का आतंक छाया हुआ था। राजा सल्हण ने अपने कुछ सैनिकों को गर्ग पर आक्रमण करने से न रोका, परन्तु गर्ग ने उनको छिन्न-भिन्न कर दिया। तत्पश्चात् गर्ग ने सल्हण के साथ सन्धि कर ली। राजा ने जोड-तोड के कार्य में सक्रिय अनेक लोगों का वध करा दिया। इस प्रकार आतंक फैलाने के कारण राजा सल्हण का राज्यकाल अल्पकालीन हो गया। उधर सुस्सल धूर्ततापूर्वक सल्हण और लोठन को कैद करा लिया। राजा सल्हण तीन दिन कम चार मास तक राज्य करके ११११२ ई० (४१८८ लौकिक वर्ष) में बन्दी बना।

राजा सुस्सल नीति व नैपुण्य में अपने अग्रज उच्चल से भी आगे था। उसके राज्य में स्वप्न में भी दुर्भिक्ष का नाम न सुनाई पडता था।

गर्ग उच्चल-तनय सहस्रमंगल को राज्याधिकार देने के पक्ष में था, इसलिये गर्ग और सुस्सल के बीच संघर्ष छिड गया। अन्त में गर्ग निराश्रित हो गया। उसने उच्चल तनय को राजा को समर्पित कर दिया, और वह स्वयं शरणागत हो गया। राजा सुस्सल ने गर्ग को अधिकाधिक धन व सम्मान देकर उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा की और सहस्र मंगल को मुक्त कर दिया। राजा के सैनिकों ने वृद्धिक डामर एवं भोगदेव चण्डाल आदि विद्रोहियों का वध कर दिया। राजा सुस्सल के द्वारा निर्वासित सज्जपाल, यशोराज और अन्य सेवक जा-जाकर उच्चल तनय सहस्र मङ्गल से मिल गये। सहस्र मङ्गल के पक्ष में त्रिगर्ताधिपति आदि ५ राजे सन्नद्ध हो गये और कश्मीर पर आक्रमण करने के लिये कुरुक्षेत्र में आ पहुँचे। जब राज्य से निर्वासित बिम्ब आदि वल्लापुर पहुँचे तो सहस्रमङ्गल की प्रतिष्ठा कम हो गई। अब सहस्रमङ्गल का परित्याग कर राजे लोग बिम्ब तथा भिक्षाचर का अनुसरण करने लगे।

उस समय भिक्षाचर क्लेशमय जीवन व्यतीत कर रहा था। वह भोजन

गग ने मल्लराज के ज्येष्ठ पुत्र मल्हण का राज्याभिषेक कर दिया। इस प्रकार कश्मीर में चार प्रहर के बीच में तीन-तीन राजे हो गये। जब सुस्सल ने अपने अग्रज उच्चल के वध का समाचार सुना तो वह शोकार्त्त हो उठा। दूसरे दिन कश्मीर पहुँच कर उसने गर्ग चन्द्र को राजद्रोही घोषित किया। उसने भोगसेन, कर्णभूति, वेजसेन मरिच और लवराज नामक भ्रातृद्रोहियों का वध करा दिया। गर्ग के सेनानायक सूर्य के द्वारा पराम्त हो जाने पर सुस्सल दुर्गम मार्गों से होता हुआ अपनी राजधानी लोहर जा पहुँचा।

राजा सल्हण नाम मात्र का राजा था। राज्य के समस्त न्याय तथा सभी लोगों का हिताहित एवं जीवन-मरण गर्ग के हाथों में केन्द्रीभूत था। उस समय लूटमार, हत्या, व्यभिचार, प्रजापीडन एवं उच्छृङ्खलता का सर्वत्र आधिपत्य था। प्रमादी राजा सल्हण सभी राजनीतिज्ञों की दृष्टि में उपहास का पात्र बन गया था। कश्मीरी नागरिकों पर गग के अत्याचारों का आतङ्क छाया हुआ था। राजा सल्हण ने अपने कुछ सैनिकों का गर्ग पर आक्रमण करने से न रोका, परन्तु गर्ग ने सबका छिन्न भिन्न कर दिया। तत्पश्चात् गर्ग ने सल्हण के साथ सन्धि कर ली। गजा ने जोड-तोड के न्याय में सन्धि अनेक लोगों का वध करा दिया। इस प्रकार आतङ्क फैलाने के कारण राजा सल्हण का राज्यकाल अल्पकालीन हो गया। उधर सुस्सल धूर्त्तातापूर्वक सल्हण और लोठन को कैद करा लिया। राजा सल्हण तीन दिन कम चार मास तक राज्य करके १११२ ई० (४१८८ लौकिक वर्ष) में बन्दी बना।

राजा सुस्सल नीति व नैपुण्य में अपने अग्रज उच्चल से भी आगे था। उसके राज्य में स्वप्न में भी दुर्भिक्ष का नाम न सुनाई पडता था।

गग उच्चल-तनय सहस्रमगल को राज्याधिकार देने के पक्ष में था, इसलिये गग और सुस्सल के बीच संघर्ष छिड गया। अन्त में गर्ग निराश्रित हो गया। उसने उच्चल तनय को राजा को समर्पित कर दिया, और वह स्वयं शरणागत हो गया। राजा सुस्सल ने गग का अधिकाधिक धन व सम्मान देकर उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा की और सहस्र मगल को मुक्त कर दिया। राजा के सैनिकों ने वृहट्टिक डामर एवं भोगदेव चण्डाल आदि विद्रोहियों का वध कर दिया। राजा सुस्सल के द्वारा निर्वासित मजपाल, यशोराज और अन्य क्षेवक जा-जाकर उच्चल तनय सहस्र मङ्गल से मिल गये। सहस्र मङ्गल के पक्ष में निर्गतविपत्ति आदि ५ राजे संघबद्ध हो गये और कश्मीर पर आक्रमण करने के लिये कुरुक्षेत्र में आ पहुँचे। जब राज्य से निर्वासित भिक्षु आदि वल्लापुर पहुँचे तो सहस्रमङ्गल की प्रतिष्ठा कम हो गई। अब सहस्रमङ्गल का परित्याग कर राजे लोग भिक्षु तथा भिक्षाचर का अनुसरण करने लगे।

उस समय भिक्षाचर क्लेशमय जीवन व्यतीत कर रहा था। वह भोजन

तस्मादि के लिए इधर उधर मारा फिर रहा था। मल्लमल्ल का पुत्र प्राग कश्मीर में प्रविष्ट करके विप्लव मचाने के लिए निकला, परन्तु उसी के विश्वासघाती सेवकों ने उसे पकड़ कर राजा सुस्सल के हाथों में समर्पित कर दिया। राजा ने सहेल आदि पुराने अधिकारियों को अपदस्थ करके कायस्थ गौरक को सब अधिकारियों का प्रमुख बना दिया। इस प्रकार कायस्थों का प्रभुत्व कश्मीर मण्डल में पुनः स्थापित हुआ। उसने राज्यकोष से अपना घर खूब भरा। इसी प्रकार कायस्थ धनाढ्य ने अपार सम्पत्ति संचित कर ली। इस प्रकार राजा उच्चल के समय में जो अधिकारी अपराधी पाये गये थे वही प्रमादी राजा सुस्सल के द्वारा अधिकारी नियुक्त कर दिए गये। इसी प्रकार अनेक उच्च तथा अधम मन्त्रियों की नियुक्ति की गई। चाणिक्य ने राजा सुस्सल व गर्ग के मन में एक दूसरे के प्रति वैर-भाव उत्पन्न कर दिया। राजा ने गर्ग को कारागृह में डाल दिया और दो तीन मासो-परान्त तीन पुत्रों सहित उसका वध करा दिया। इसी प्रकार विम्ब का भी पुत्र के साथ वध करा दिया गया।

गौरक को सर्वाधिकार पद से हटा देने पर राजा सुस्सल के सभी मन्त्री तटस्थ हो गये। राजा ने नवीन मन्त्रियों की नियुक्ति की। नवीन मन्त्रियों की अनुभवहीनता के कारण राज्य पर अचानक भीषण भय-संकट आ उपस्थित हुआ।

मल्लकोष्ठ डामर के भाई अर्जुनकोष्ठ का वध करा देने से डामर भी राजा के शत्रु बन गये। राजा का विश्वस्त सेवक और पृथ्वीहर दुर्व्यवहार के कारण भागकर अपने भाई क्षीर के पास जयन्त देश को चला गया। डामरों पर विजय-लाभ करने वाले कम्पनेश तिलक का राजा ने अपमान किया, जिससे राज्य कार्य में अव्यवस्था हो गया। डामर लोग राज्य में उपद्रव करने लगे। इसी बीच में राज्य में एक भीषण रोग फैल गया, जिसमें राजा के अनेक अश्व मर गये।

तदनन्तर विप्लवों की पुनरावृत्ति हुई। विजय, टिक्क, मल्लकोष्ठ तथा पृथ्वीहर प्रबल होकर राजा सुस्सल की सैन्य शक्ति को नष्ट करने का प्रयास करने लगे। पृथ्वीहर ने राजा की सेना नष्ट कर दी और डामरगणों के साथ नगर राज्य के अश्वों को सैनिकों से छीन ले गये, इस उपद्रव से राजा सुस्सल के क्रोध की सीमा न रही—

निस्त्रिंशता तीव्रतापकृता नृपसमाश्रया ।
अभाग्यभाजिना योग्यामालम्बे कुपद्धतिम् ॥

उस राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर ऐसा कुत्सित मार्ग अपनाया जिसका अभागे लोग चयन करते हैं।

उसने अनेक डामरों का वध कर दिया। यही नहीं उसने अनेक निरपराध व्यक्तियों का भी वध करा दिया। परिणामस्वरूप आभ्यन्तर एवं बाह्य सभी लोग

राजा से सशक तथा उदासीन हो गये ।

कुछ समय पश्चात् भिक्षाचर की अपूर्व ख्याति से राजा सुस्सल चिन्तित रहने लगा । उसने भिक्षाचर की चर्चा पर रोक लगा दी और उसकी खोज करने के लिये दूतों को नियुक्त कर दिया । पृथ्वीहर ने प्रच्छन्न युद्ध द्वारा राजा के अनेक सैनिकों का सहार कर डाला । उधर मडवराज्य के डामरों ने अत्यन्त स्वागत-सत्कारपूर्वक भिक्षाचर का साथ दिया । इधर राजा सुस्सल ने सैनिक सग्रह करने में प्रचुर धन व्यय करना प्रारम्भ किया । पृथ्वीहर ने सर्वत्र विजयश्री का लाभ किया । साम्पल ने नगर में प्रवेश करके राजा के महल की अट्टालिकाओं को लूट कर उनमें आग लगा दी ।

कश्मीर मण्डल में सकट की परम्पराओं की सीमा न थी । राज-वाटिका के ब्राह्मणों का अनशन, विभिन्न प्रकार के प्रमादपूर्ण प्रवाद, चोरी की घटनायें, वाणिज्यों के षड्यन्त्र आदि राजा को त्रस्त करने के लिये पर्याप्त थे । राज्य में अराजकता सी फैली थी । राजा के भृत्य एव अधिकारी दिन में राजा सुस्सल की सेवा करते और रात्रि मे भिक्षाचर के पास पहुँच जाते थे । राजा की विजय को सुनकर लोग दु खी हो जाते थे, जबकि भिक्षाचर की विजय पर वे सन्तोष एव प्रसन्नता प्रकट करते थे । जितना ही अधिक राजा सुस्सल स्वर्ण तथा रत्नों की वर्षा करता था, उतना ही अधिक वह निन्दा का पात्र बनता जाता था । राजा के सैनिकों ने प्रग्रास-भत्ते के लिये पद पद-पर अनशन करना प्रारम्भ कर दिया और वेतन के बदले मे सनिकों ने राजा के आभूषणों तथा स्वर्ण-रजत पात्रों की लूट कर चूर-चूर कर डाला । अन्त में राजा ने ११२० ई० (४१९६ लौकिक वर्ष) में विद्रोहियों से सत्रस्त होकर राजधानी छोड़ दी । वह प्रतापपुर, हुष्कपुर होता हुआ क्रम राज्य में पहुँच गया ।

अब कश्मीर मडल राजा भिक्षाचर के अधिकार में आया । भिक्षाचर ने शासन कार्य की ओर किंचितमात्र भी ध्यान न दिया । उसके अधिकारी नित्यप्रति उसके लिये नवीन भोग विलासों के उपकरण प्रस्तुत करते थे, और वह अत्यन्त विलासप्रिय बन गया । पृथ्वीहर और मल्लकोष्ठ का पारस्परिक राग-द्वेष राजधानी में प्रतिक्षण अशान्ति का वातावरण उपस्थित रखता था । राजा का व्यवहार सूत छिन्न भिन्न हो गया, और चारों ओर उसकी निन्दा होने लगी । उसने तुर्कों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया । अब कश्मीरी, खश और म्लेच्छ योद्धाओं का एक अच्छा समूह बन गया ।

राजा भिक्षाचर की कामुकता एव निर्लज्जता पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी, और अब उसका पतन अवश्यम्भावी था । राजा के कर्मचारी सुस्सल को सदेश भेज कर पुन राज्य प्राप्ति के लिये उद्योग करने को प्रेरित करने लगे । इधर ब्राह्मणों के

अनशन, जनसभा तथा सभाओं का दृश्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगा। राजा का अंकुश ढीला पड़ गया था और विद्रोही तथा षड्यन्त्रकारी स्थान-स्थान पर सिर उठाने लगे थे।

राजा भिक्षाचर के सैनिक सोमपाल व बिम्ब के साथ लोहर में निवास करने वाले राजा सुस्सल से युद्ध करने के लिये पर्णोत्स जा पहुंचे, परन्तु राजा सुस्सल की अप्रतिम वीरता के समक्ष उनकी एक न चली। सोमपाल मारा गया और राज सैनिक निलज्ज भाव से युद्ध भूमि को छोड़कर लौट आये। बिम्ब सुस्सल से मिल गया। तत्पश्चात् भिक्षाचर ने पृथ्वीहर का साथ लेकर राजद्रोहियों को परास्त कर दिया। अब स्थिति भिक्षाचर के अनुकूल थी। जो अश्वारोही, तन्त्री तथा नागरिक राजा के विरुद्ध हो गये थे वे पुनः उसके पक्ष में आकर सम्मिलित हो गये। जनक सिंह जो राजा का विरोधी और सुस्सल का समर्थक बन गया था, भागकर लोहर चला गया। कवि कल्हण ने लिखा है—

ह्यो जानते भैक्षवेऽस्य वल्गतुङ्गतुरङ्गमान्।
दृष्टवन्तो वयं सैन्ये साश्विनाद्यापि पादगा ॥[1]

अर्थात् हमने यह अद्भुत कौतुक देखा कि जो कल जनक के पक्ष में थे वे ही अश्वारोही आज राजा भिक्षु के पक्ष में आकर अपने घोड़े नचाने और कुदाने लगे।

कुछ ही दिनों पश्चात् सुस्सल ने जनकसिंह आदि के साथ कश्मीर पर आक्रमण किया। राजधानी की जनता ने उसका स्वागत किया। इस प्रकार छः मास १२ दिन के बाद सन् ११२१ ई० (४१९७ लौकिक वर्ष) में पुनः राजा सुस्सल कश्मीराधिपति बना।

भिक्षाचर पकड़ लिया गया। छोड़े जाने पर वह पृथ्वीहर आदि के साथ पुष्याणनाड ग्राम में सोमपाल के पास चला गया। पृथ्वीहर ने कई बार भिक्षाचर को संकटों से रक्षा की और अन्त में वह उसकी सहायता करता रहा।

राजा सुस्सल ने कई ऐसे कार्य किये जो केवल उसकी बुद्धिहीनता एवं विवेकहीनता के परिचायक थे। उसके पुराने अधिकारी और कर्मचारी उसके अविश्वास का भाजन बन गये। विदेशी लोगों को उसने अपना विश्वस्त बना लिया। सिन्धुदेश के सुजि [illegible] को प्रजा का उसने उच्च पदों पर प्रतिष्ठित किया। इस कारण उसके पुराने भृत्यगण रुष्ट हो उठे और विरोधियों से जा मिले। एक बार पुनः भिक्षाचार एवं पृथ्वीहर राजा सुस्सल के विरुद्ध समर भूमि में आ गये। सन ११२२ ई० (४१९८ लौकिक वर्ष) में पृथ्वीहर ने राज सैनिकों को परास्त किया और उसके असंख्य शस्त्रधारियों को कैद कर लिया।

1—राजतरंगिणी ८,९४१

तदनन्तर दोनो पक्ष के अगणित राजे तथा योद्धा समरभूमि मे आ गये। जय पराजय के अनेक उत्थान-पतनो के पश्चात् राजा सुस्सल विजयी हुआ। भिक्षाचर को लेकर पृथ्वीहर अपने घर चला गया। मल्लकोष्ठ ने सूनी राजधानी में तस्करो द्वारा आग लगवा दी। तत्पश्चात् सुवर्णसानूर तथा शूपुर आदि ने अनेकश युद्ध करते हुये राजा सुस्सल ने पुनर्वार जय-पराजय प्राप्त किये।

अल्पकालीन शान्ति के पश्चात् पुन अशान्ति की लहर आयी, जिसने राजा सुस्सल को क्षुब्ध कर दिया। राजा का विश्वस्त प्रधान यशोराज कृतघ्नतापूर्वक शत्रुपक्ष से मिल गया, और भिक्षाचर से मिलकर कश्मीर को हस्तगत करने का षड्यन्त्र रचने लगा। उधर मल्लकोष्ठ भी आकर उनसे मिल गया। राजा सुस्सल किंकर्तव्यविमूढ था।

कश्मीर के इतिहास मे सन् ११२० ई० (४१९६ लौकिक वर्ष) का वर्ष बडा ही कराल था, क्योंकि उस दारुण वर्ष मे राज्य के सभी प्राणियों के प्राण अन्तिम स्थिति मे पहुँच चुके थे—

"वर्षोऽथ दुस्तर स्यात एकान्नशतसख्यया।
सर्वभूतान्तकल्लोके प्रावर्तत सुदारुण ॥"

डामर लोगो ने लूटमार एव गृहदाह प्रारम्भ कर दिया था और चारो ओर से आकर राजधानी को घेर लिया था। अग्निदाह तथा वध का सर्वत्र आधिपत्य-सा हो गया था। मानवीय प्रकोपो के साथ प्राकृतिक प्रकोपो ने गठबन्धन कर लिया था।

सूयतापाधिक्य, भूकम्पो तथा भयकर झझावतो ने कश्मीर मण्डल मे विकराल रूप धारण कर लिया था। राजधानी का डामरो द्वारा अग्निदाह अत्यन्त भयानक था। वितस्ता नदी का पुल टूट जाने से राजा नगर की अग्निदाह से रक्षा करने मे असमर्थ था। कश्मीर मडल का समस्त सचित अन्न भडार जलकर भस्म हो गया था।

फलत एक भयकर दुर्भिक्ष आ पड़ा। नदियों मे टूटे पुलो पर पानी में सड़ने से फूले हुये शवो का अम्बार लग गया। इसी समय राजा के दुर्भाग्य से उसके समस्त उपकरणो की विभूति स्वरूपा उसकी प्रिय महारानी मेघमजरी का देहावसान हो गया, जिससे कि राजा के लिये सारा ससार विनोद शून्य और लावण्यवहार दु खमय दिखाई देने लगा। अब राजा ने राज्य-भार उतारने की इच्छा से अपने पुत्र सिहदेव (जयसिंह) को लाहराचल से बुलवाकर राज्याभिषेक कर दिया। ऐसा होते ही राज्य के समस्त उपद्रव शान्त हो गये। वसुन्धरा सस्य सम्पन्न हो गई और राज्य का दुर्भिक्ष दूर हो गया।

गुप्तचरों के इस समाचार से कि 'सिह्देव अपने पिता का द्रोही है" राजा सुस्सल ने क्रोध के वशीभूत होकर उसे कैद कर लेने का आदेश दे दिया। सूक्ष्म दृष्टि से सिह्देव की गतिविधि देखने का प्रबन्ध कर दिया गया।

किसी स्थानक नाम के मनपाल साल्ह नामक एक कुम्हार ग्राम निवासी का उत्पल नामक पुत्र था। उत्पल शीघ्र ही राजा का विश्वस्त दूत बन गया। राजा ने ऐश्वर्य दान का प्रलोभन देकर उत्पल को भिक्षाचर तथा अपने स्वामी टिक्क का वध करने के लिये प्रेरित किया। उत्पल ने सारा वृत्तान्त अपने स्वामी टिक्क को बता दिया। दोनों ने राजा सुस्सल के भी वध की योजना बनाई। उत्पल ने तदनुसार राजा और राजसेवकों की निर्मम हत्या कर दी। उस समय राजा के शव का दाह संस्कार भी करने वाला कोई नहीं था। डामरों ने राज्य सत्ता के शस्त्रास्त्र आदि सब सामग्री लूट ली।

जब सिह्देव ने अपने पिता के वध का समाचार सुना तो उसने अनाथ विचार किया। तदनन्तर कुछ मन्त्रियों ने सिह्देव का पक्षपात किया कुछ ने ही राज्य की सम्पत्ति दी, परन्तु उसे कोई सम्पत्ति पसन्द न आई। राजा सिह्देव ने अपराधियों को अभयदान दे दिया और घोषणा की कि—

'यद्यद्येनाहृत तत्तत्परित्यक्तं मयाधुना।

दत्त चारीभ्यितनतामभय सागसामपि ।।" राजतरंगिणी ८/१३७८

'अब तक राज्य की सम्पदा में से जिसने जिस किसी वस्तु का अपहरण कर लिया है, उन्हें मैं छोड़ता हूँ और साथ ही उन अपराधियों को अभयदान देता हूँ जिन्होंने शत्रुओं से मिलकर राज्य का अपकार किया है।"

तत्पश्चात् राजा सिह्देव ने लक्ष्मक को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। उसी समय अनेक डामरों, पुरवासियों अपराधियों तथा लुटेरों के साथ भिक्षाचर आ पहुँचा। उसके साथी राज्य के विभिन्न विभागों की माँगें प्रस्तुत करते हुये परस्पर संघर्ष करने लगे। इसी बीच में राजा के सहायक पञ्चचन्द्र, सुज्जि, रिल्हण आदि राजा के पास आ गये। डामरों ने राजा के सहायकों व सैनिकों का मार्ग अवरुद्ध कर रखा था। उन्होंने अनेक राजसेवकों का या तो वध कर दिया अथवा उन्हें घायल कर दिया। सज्जक ने राजा सुस्सल के शव की अन्त्येष्टि की। उसका सिर राजपुरी भिजवा दिया गया, जहाँ उचित सम्मान व सहित उसका दाह-संस्कार सम्पन्न किया गया। भिक्षाचर ने शिशिर ऋतु व्यतीत होने पर आक्रमण की तैयारी की, परन्तु उसके पक्ष के लोग राजा सिह्देव के पास पहुँचने लगे। सुज्जि तथा मल्ल ने क्रमशः विद्रोहियों और दस्युओं को मार भगाया। सुज्जि की रण-कुशलता एवं बुद्धिमत्ता से राजा सिह्देव ने पिता के प्रमाद से नष्ट हुये राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया।

भिक्षाचर ने यह सब देखकर विदेश चले जाने का विचार किया। मार्ग मे अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करता हुआ वह अन्त मे अपनी ससुराल (चन्द्रभागा तट निवासी ठक्कुर देंगपाल के पास) जाकर रहने लगा।

पिता के मरण के चार मास के ही अन्दर राजा सिंहदेव ने राज्य की बागडोर पकड़ ली। उसने राजद्रोहियों को एक-एक करके नष्ट कर दिया।

कुछ पैशुनों ने राजा के अन्तरग सेवक तथा स्वामिभक्त साथी जनकसिंह एवं सुज्जि को राजा के प्रेम से वंचित कर दिया। राजा ने खशराज सोमपाल के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके राजपुरी मे भी सुज्जि के प्रभाव को तिरोहित कर दिया।

ज्येष्ठपाल ने सुज्जि को भिक्षाचर के पक्ष मे मिला लिया, परन्तु गगा स्नान करके लौटने पर राजा सिंहदेव ने सुज्जि को प्रलोभन देकर अपने पक्ष में कर लिया। सन ११३० ई० (४२०६ लौकिक वर्ष) मे खशो ने धूर्ततापूर्वक भिक्षाचार व उसके अनुयायियों का वध कर दिया, राजा सिंहदेव ने भिक्षाचर के मुण्ड का सम्मानपूर्वक अन्तिम सस्कार सम्पन्न करने का आदेश दिया। भिक्षाचर के मरण से राजा सिंहदेव (जयसिंह) ने राज्य को निष्कण्टक समझा, परन्तु दूसरे ही दिन लोहर मे लोठन के राज्याभिषेक का समाचार मिला। सोमपाल व सुज्जि लोठन के सहायक बन गये। महामत्री लक्ष्मक को लोहर के सैनिकों ने कैद कर लिया।

राजा जयसिंह ने ३६ लाख दीनार देकर लक्ष्मक को मुक्त कराया। सुज्जि ने, जो कि लोठन का मत्री था अपने राजा के वैवाहिक सम्बन्ध अन्य राजाओं के यहाँ सम्पन्न करवाये। तदनन्तर उसने कश्मीर पर आक्रमण करने के लिये सब राजाओं का एक सुदृढ सगठन तैयार किया।

राजा जयसिंह कुशल कूटनीतिज्ञ था। उसने भेदनीति का प्रयोग करके लोठन के साथी राजाओं मे फूट डाल दी। फलत लोठन ६ वर्ष मे ही राज्याधिकार से वंचित हो गया। रानी सल्हा से उत्पन्न पुत्र मल्लार्जुन लोहर का राजा बनाया गया।

राजा मल्लार्जुन अपव्ययी था। उसने भले लोगों को राज्य से निर्वासित कर दिया, और वेश्याओं, चारणों, विट-चेटकों को प्रश्रय देने लगा। इन लोगो ने राज्य का पर्याप्त शोषण किया।

सन् ११३२ ई० (४२०८ लौकिक वर्ष) मे मल्लार्जुन कोश लेकर अवनाह की ओर पलायन कर गया, क्योंकि वह राजा जयसिंह के लोहर-विजय के लिये प्रेषित किये गये सुज्जि का सामना करने मे असमर्थ था। सेनापति सुज्जि ने कपिल-पुत्र वर्षट को लोहर का मण्डलेश (गवर्नर) नियुक्त कर दिया।

पैशुना ने मुज्जि ने विरुद्ध राजा को प्रेरित किया, यहाँ तक कि राजा ने सेनापति कुनराज के द्वारा सुज्जि का वध करा दिया और सुज्जि के अनुयायियों को भी स्थान-स्थान पर मरवा डाला, अथवा उन्हें कारागृह में डाल दिया। सन् ११३३ ई० (४२०९ लौकिक वर्ष)।

तदनन्तर राजा जयसिंह ने अपने सहायक सज्जपाल, कुनराज आदि को उच्च पद प्रदान किये, और अपने द्रोहियों का दमन कर दिया। कोष्ठेश्वर ने मल्लार्जुन के साथ द्वैराज्य स्थापित करने के प्रयत्न प्रारम्भ किये।

राजा की युद्ध-तत्परता से क्षुब्ध होकर कोष्ठेश्वर ने राजा से सन्धि कर ली। मल्लार्जुन को कैद करके राजा के समक्ष लाया गया। उसके कहने में चित्ररथ तथा कोष्ठेश्वर को बुलवाया गया। कोष्ठेश्वर तथा उसका अनुज चतुष्क राज-सेवकों के प्रहारों से धराशायी हुये। चित्ररथ सुरेश्वरी तीर्थ में जाकर निवास करने लगा।

इस प्रकार राजा जयसिंह ने राज्य के विभिन्न कण्टकों का उत्पाटन करके सारी बाधाओं का शमन कर दिया और अपने सौजन्य बुद्धिरत्न, क्षमता एवं सदाचरण से सारे कश्मीर मण्डल को सुखी बना दिया। शत्रुओं का विनाश हो जाने पर कश्मीर राज्य निष्कण्टक हो गया। सर्वत्र शान्ति, सुख एवं सम्पन्नता दृष्टिगोचर होने लगी। यज्ञ, धर्मकार्य, दान, विद्या-प्रचार, निर्माणकार्य विद्वत्सेवा आदि के द्वारा राजा जयसिंह प्रख्यात हो गया। उसके राज्य की सीमा के अन्तर्गत ६४ वर्षों के लोग भव्य भोगों का उपभोग करते थे। राज्य के सभी नागरिक धनाढ्य हो गये थे अतएव वे विभिन्न प्रकार के उत्सवों में भाग लिया करते थे।

राजा जयसिंह ने वल्लापुर आदि में विद्यमान गुल्हण आदि राजाओं के उत्कर्ष में योग प्रदान किया। उसने कान्यकुब्ज आदि देशों के राजाओं को भव्य भूभाग के वैभव को भोगने योग्य स्वाभिमानी बना दिया। दुमन्त्रणाओं के कारण बहके हुए दरदराज यशोधर का उसने एक बार जीवित-दारिद्र्य भोगने के लिये विवश कर दिया था।

लोठन राजा शूर की सरण्ता में रहकर भरण पोषण के लिये कृषि वाणिज्य आदि कार्य करता था। उसने दरदेश के मन्त्रियों के साथ सम्पर्क रखने वाले अलङ्कारचक्र डामर के साथ राजा के विरोध में षड्यन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। उसने सुस्सल तनय विग्रहराज तथा मल्हण पुत्र भोज को भी मिला लिया।

राजा जयसिंह ने उदय एवं धन्य को लोठन के विरुद्ध सेना देकर प्रेषित किया। लोठन आदि शिलाहृक दुर्ग में चले गये। अलङ्कारचक्र डामर ने दुर्ग की खाद्य सामग्री के समाप्त हो जाने पर होल तथा पद्मस्कर नामक राजद्रोहियों को

धन्य को समर्पित कर दिया, क्योंकि धन्य ने ऐसा करने पर उसे भोज्य सामग्री देने का वचन दिया था। तदनन्तर उस डामर ने सन् ११४३ ई० (४२१९ लौकिक वर्ष) मे लोठन व विग्रहराज को भी राज्य के अधिकारियो को समर्पित कर दिया। राजा जयसिंह के समक्ष पहुँचकर लोठन व विग्रहराज दोनो कृतकृत्य हो गये। राजा जयसिंह की दक्षता, उदारता, गम्भीरता और विनयशीलता देखकर अपने को राजोचित गुणो से सम्पन्न मानने वाले लोठन ने अब स्वयं को निम्न श्रेणी का राजा समझ लिया।

"अभियोगे य एवास्य नीतौ विन्यस्यतो दृशम्।
मुखराग स एवाभूत्यफनावाप्नावविप्लुत ॥"

अर्थात् "उस राजा के समक्ष जो भी अभियुक्त पहुँचा और उसने जिसे सकरुण दृष्टि से निहारा उसके मुख पर पहले जैसी लाली आ गयी, और उसे जीवन का असाधारण फल प्राप्त हो गया।" राजा ने लोठन को सान्त्वना दिलाकर उसके घर भिजवा दिया।

उधर सल्हण-तनय भोज एकांत का जीवन व्यतीत कर रहा था। वह अलकारचक्र डामर के पाश से निकल कर पलायन कर गया। दरदेश के मन्त्री विड्डसीह ने भोज के लिए राजोचित उपकरण भेजे। अतएव भोज एक राजा के समान दुग्घघाट कोट में रहकर व्यवहार करने लगा। योद्धाग्रणी वलहर तनय राजवदन के पुत्र ने आकर भोज की अर्चना की और उसकी पक्ष्यता स्वीकार कर ली। राजवदन ने चोरो, वनचरों और आभीरो के बड़े-बड़े वर्गों को मिलाकर अपने समयका का एक बहुत बडा समुदाय एकत्र कर लिया और कई ग्रामों पर अधिकार करके भोज के आदेशों का पालन करने लगा। इधर डामर-गण, दस्युओं का आश्रयदाता मायावी त्रिल्लक और विप्लवों का प्रवर्तक जयराज सभी राजा जयसिंह के विरुद्ध हो गये। ब्राह्मणों ने पृथ्वी की रक्षा के लिये विजयेश्वर में अनशन प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि राजा ने ब्राह्मणों के कोप का शमन करके उनका अनशन समाप्त कर दिया और उसके सेनापति सजपाल एव रिल्हण ने शत्रुओं को पराजित कर दिया, तथापि उसके कष्टों की परम्परा अभी समाप्त न हुई थी। गर्ग पुत्र पष्ठचन्द्र के दो भाई जयचन्द्र तथा श्रीचन्द्र जो राजा के यहाँ पहले वेतन पाते थे, राजवदन से जा मिले। राजा के दो श्वसुर भी उसके विरुद्ध हो गये। उस समय चोरों और दस्युओं के आक्रमण से असहाय होने के कारण बलवान् निर्बलों का वध करने लगे। राज्य में अराजकता-सी व्याप्त हो गई, और राज्य की अवस्था अत्यन्त दयनीय हो गई।

विड्डसीह ने भोज की सहायता के लिये उत्तरापथ के राजाओं को आमन्त्रित किया। सभी आमन्त्रित राजे सहायतार्थ आये। राजा ने पष्ठचन्द्र की सहायता

के लिए धन्य और उदय को सेना के साथ भेजा। जिह्लमोह ने अपनी विशाल-वाहिनी भोज की सहायता के लिए भेज दी। जिन्दक, ठोठक तथा चतुष्क ने राजा जयसिंह के समक्ष एक महान संकट उपस्थित कर दिया था। इनकी सेना ने रिल्हण को चारों ओर से घेर लिया, परन्तु रिल्हण ने शत्रु सैनिकों को छिन्न-भिन्न कर डाला। राजपक्ष की ओर से रिल्हण की वीरता सराहनीय थी। शत्रु सेना के भास नामक वीर ने भी अप्रतिम शौर्य का परिचय दिया था।

समरभूमि में षष्ठचन्द्र ने मानवोत्तर पुरुषार्थ प्रदर्शित किया, जिससे कि शत्रु-सैनिक भयभीत होकर पलायन कर गये। नाग, डामर के विश्वासघात के कारण भोज को भी दरदसैनिकों के साथ पलायन करना पड़ा। गर्जवदन और अलङ्कारचक्र ने भोज को धन देकर राजा के विरुद्ध पुनः प्रेरित किया, परन्तु उदय ने भोज से व्याज सन्धि कर ली और अलङ्कारचक्र के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। अल्पकाल में ही भोज ने पुनः अलङ्कारचक्र के पुत्रों के साथ सन्धि कर ली। राजा जयसिंह ने भोज को वश में करने के लिए धन्य को नियुक्त किया। धन्य ने बलहर से कई बार इस लिए सन्धि की कि वह भोज को राजा जयसिंह को समर्पित कर दे। इससे धन्य को जन-साधारण का उपहासपात्र बनना पड़ा। तब नाग तथा धन्य ने एक साथ बलहर पर आक्रमण कर दिया। राजा के आदेशानुसार धन्य ने नाग को क़ैद करके राजा के पास भेज दिया। जब बलहर ने धन्य से नाग को वापस माँगा तो उसने उससे भोज को समर्पित कर देने को कहा। इधर भोज का चित्त सन्देह एवं अविश्वास से सशङ्कित था। अन्त में वह अत्यन्त व्यग्रतापूर्वक राजा को प्रसन्न करने का अवसर खोजने लगा, क्योंकि वह अब राजा की महत्ता को समझ गया था। वह राजा जयसिंह से सन्धि करना चाहता था, एतदर्थ उसने नानानामक धाय को राजा के पास साध्यर्थ भेज दिया। राजा ने रानी कल्हणिका को कुछ मन्त्रियों के सहित भोज के साथ सन्धि करने के लिये तारमूलक भेजने का निश्चय किया। सभी डामर राजा के विरोधी हो गये, और वे भोज को अपने निश्चय से डिगाने का प्रयत्न करने लगे। जब रानी कल्हणिका तारमूलक पहुँची तो राजा की ओर से धन्य और रिल्हण विशालवाहिनी एवं अनेक राजपुत्रों के साथ पाचि-ग्राम जा पहुँचे। उधर डामर नागों ने राजा की सेना को नष्ट करने के लिये सूय्यपुर का पुल तोड़ दिया। दोनों ओर की सेनाओं में विरोध उपस्थित होने पर भोज बारम्बार अपनी शक्ति से उसे शान्त कर देता था। अनेक नागों ने भोज को उसके धैर्य तथा दृढ़ निश्चय से विरत करने का असफल प्रयत्न किया।

भोज ने एक विश्वासघाती के समान अभिनय करते हुये बलहर से कहा कि रात्रि व्यतीत होते ही राजसेना पर आक्रमण कर देना चाहिये। प्रातःकाल होते ही भोज जाकर राजसेना से मिल गया। इस प्रकार भोज ने सन् ११४५

ई० (४२२१ लौकिक वर्ष) में राजा जयसिंह की अधीनता स्वीकार कर ली। भोज ने रानी कल्हणिका को प्रणाम किया। भोज जब राजा के दर्शनार्थ चला तो उसने असंख्य नागरिकों को स्तुति करते हुये देखा। अन्त में भोज ने खचाखच भरी हुई राजसभा में प्रवेश किया। राजा ने भोज को प्रणामानन्तर एक दिव्य आसन पर बिठा लिया। भोज ने अपनी तलवार और कटार राजा के आसन के सामने रख दी, परन्तु राजा ने उसे शस्त्र त्याग की आज्ञा नहीं दी।

तदनन्तर राजा जयसिंह भोज को रड्डादेवी तथा अन्य रानियों के महलों में ले गया। उसने भोज से एक बहुमूल्य भवन में निवास करने का अनुरोध किया। भोज ने सुरा-सेवन आदि सुविधाओं का स्वीकार नहीं किया। उसने अपने सद्भाव से राजा का हृदय जीत लिया और वह धीरे-धीरे राजा का विश्वस्त बन गया। भोज राजा की प्रमादवश हीन अथवा उत्तेजनात्मक बात की उपेक्षा कर देता था। वह अश्लील बातों से दूर रहता था। इन सब गुणों के कारण राजा भोज पर पुत्र से भी अधिक स्नेह करने लगा।

राजा जयसिंह ने रड्डादेवी के सबसे बड़े पुत्र गुल्हण का लोहर राज्य में अभिषेक करा दिया। राजा जयसिंह ने गुप्तनीति से दण्डनीति का प्रयोग करके गर्ग-पुत्र जयचन्द्र तथा पृथ्वीहर-पुत्र लोठन का वध करा दिया। उसके अन्य शत्रु दारिद्र्य दुःख से दलित होकर शान्त हो गये।

राजा ने अर्द्धनिर्मित निर्माण-कार्यों को पूर्ण करवाया। बाजार, पचायत, मठ आदि का निर्माण कराकर राजा ने कश्मीर मण्डल के सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया। उसके शासनकाल में प्रजा की सुख समृद्धि में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। धन्य और कुन्दराज नामक अधिकारियों ने राज्य को निष्कण्टक कर दिया। राजा की धार्मिक प्रवृत्ति ने अन्य लोगों को पुण्यकर्मा एवं धार्मिक बना दिया। उसके आश्रित जनों ने अनेक मठ मंदिर, नहरें, पुल, उद्यान आदि का निर्माण कराया। कश्मीर मण्डल की यशोगरिमा दिग्दिगन्त व्यापिनी हो गई।

लोहर नरेश गुल्हण उत्तरोत्तर समृद्धिवान् हो रहा था। राजा जयसिंह के चार पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं—मेनिला, राजलक्ष्मी, पद्मश्री तथा कमला।

रानी रड्डा अत्यन्त पवित्रकर्मा थी। उसने कई देव-यात्रायें तथा तययात्रायें की थीं। अपने धार्मिक कार्यों से उसने दिद्दारानी के यश को तिरोहित कर दिया था। रानी रड्डा ही राजा जयसिंह के कोप की शमनकर्त्री तथा अन्याय राजाओं के निग्रह एवं अनुग्रह की सूत्रधारिणी थी। रानी ने अपने जामाता सोमपाल-तनय भूपाल की सहायता करके उसकी राज्यश्री को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

राजा जयसिंह ने सन् ११४९ ई० (४२२५ लौकिक वर्ष में अपने राज्यकाल के २२ वर्ष व्यतीत किये। प्रजा के पुण्य से इतनी लम्बी अवधि का शासनकाल

किसी अन्य राजा का नहीं देखा गया । उसके धैर्य और कमठता के कारण कश्मीर मण्डल में उसका परिपक्व शासन स्थापित हुआ । यह शक्तिशाली राजा आज पृथ्वी आनन्दित कर रहा है ।

"गुरु सुस्तम्भुभृत् सप्रश्रयप्रतिमक्षम ।
नन्दय मेदिनामास्ते जयसिंह महीपति ॥"[1]

कल्हण का स्वानुभव

महाकवि कल्हण का जन्म सन् ११०० ई० के आस पास परिहासपुर (परिहास-पुर) में हुआ था । यह महामात्य चम्पक के पुत्र थे । चम्पक ने सन् १०८९ (१०८९) से ११०१ तक (४१६५–४१७७ लौकिक वर्ष) महाराज हर्षदेव का प्रधान मन्त्रित्व किया था । बाल्यकाल से ही कल्हण ने अपने पिता के सम्पर्क में रहकर महाराज हर्षदेव के वार्तालाप एवं उत्थान-पतन के इतिहास का निकट से अध्ययन किया था । ब्राह्मण होने के नाते संस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था । कश्मीर मण्डल की परम रमणीयता ने महाकवि के हृदय को बरबस आकृष्ट कर लिया था । कश्मीर में स्थान स्थान पर स्थित तीर्थ, शीतल जल एवं द्राक्षा फलादि किस पुरुष को अपनी अप्रतिमता से आकर्षित नहीं कर लेते ?

कल्हण में कवि-सुलभ प्रतिभा तो थी ही, उनमें सच्चे इतिहास लिखने की भी पटुता थी । प्राचीन इतिहास ग्रन्थों में अनेक त्रुटियाँ थीं । कवि ने कई इतिहास-ग्रन्थों का अनुशीलन किया था । उन्होंने प्राचीन राजाओं द्वारा निर्मित देव-मन्दिरों, नगरों, ताम्रपत्रों, आज्ञापत्रों, प्रशस्तिपत्रों एवं अन्यान्यशास्त्रों का गम्भीरतापूर्वक मनन मंथन किया था, और इस कारण उनका भ्रम दूर हो चुका था ।

कल्हण द्वारा रचित कश्मीर नरेशों से सम्बन्धित इतिहास ग्रन्थ राजतरंगिणी विभिन्न राजाओं के शासनकाल में देश, काल की उन्नति एवं अवनति के विषय में पुरातन ग्रन्थों से उत्पन्न भ्रम को दूर करने में सहायक सिद्ध होगा, ऐसी कवि की मान्यता थी ।

महाकवि कल्हण भारतवर्ष के अशान्ति काल में उत्पन्न हुये थे । उस समय देश पर महान् राजनैतिक एवं धार्मिक संकट छाया हुआ था । देश में विभिन्न राजे, विभिन्न स्थानों पर आधिपत्य स्थापित किये हुये थे । मुसलमानों के आक्रमण भारत के उत्तरी-पश्चिमी प्रान्तों में हो रहे थे । भारत में अफगान साम्राज्य की नींव परिपक्व होने वाली थी ।

महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी के आक्रमणों ने देश को जर्जर कर डाला था । इसी समय कश्मीर मण्डल में महाकवि कल्हण का जन्म हुआ था ।

१–राजतरङ्गिणी ८,३४४८ ।

महाकवि कल्हण की स्पष्टवादिता उन्हें अच्छे इतिहासकार के पद पर अधिष्ठित करती है । अपनी इतिहासपरक वर्णनाशक्ति तथा पटुता का प्रयोग करके महाकवि ने अपने ग्रन्थ के अन्तिम दो तरङ्ग अन्य इतिहासकारो के लिए अप्रतिम निदर्शन रूप प्रस्तुत किये हैं । इसी कारण से महाकवि ने अपने प्रारम्भिक छ तरङ्गो मे सहस्रो वर्षों का इतिहास सन्निविष्ट किया है, और सैकड़ो राजाओ के शासनकालो तथा कार्यकलापो का संक्षिप्त वर्णन किया है, जबकि अन्तिम दो तरङ्गो मे केवल १२ राजाओ के १४५ वर्षों के अन्तर्गत अन्तिम राजाओ के शासनकालो का सूक्ष्म निरीक्षण तथा सागोपाग वर्णन किया है ।

अपने ऐतिहासिक वर्णनो में महाकवि ने विभिन्न घटनाचक्रो का बडी ही चतुरतापूर्वक विश्लेषण किया है, और मनोरंजक कथाओ एव आख्यानो के द्वारा उनको हृदयग्राही बनाने का प्रयत्न किया है ।

महाकवि कल्हण ने अनुभूति के बल पर कथनोपकथनो के द्वारा उन घटनाचक्रो को सवलित करके उनको और अधिक सजीव, सारगर्भित, शिक्षाप्रद और प्रभावोत्पादक बना दिया है । अपने ऐतिहासिक वर्णनो मे महाकवि ने अलङ्कारो का समुचित प्रयोग किया है, जिससे कि वर्णन अत्यन्त मनोहारी और हृदयग्राही बन गये हैं ।

महाकवि ने प्राचीन घटनाओ अथवा संदिग्ध प्रसगो की वास्तविकता प्रमाणित करने के लिये इतिहासकारो, जनश्रुतियो, परम्परागत मान्यताओं, किंवदन्तियो आदि का आश्रय लिया है जैसे–

(१) "पूर्वोक्त जगदु परे"[1]
(बहुत से इतिहासकारो का कथन है)
(२) "इति केषामपि हृदिप्रवादोऽद्यापि वर्तते ।[2]
(३) जनास्त्वलक्षयन् ।[3]
\+ + +
(४) प्रख्यापयद्भिर्गुरुभि श्रद्धेति यदुच्यते ।[4]
\+ + +
(५) तत्ख्यातितैव ।[5]
\+
(६) इत्यासीज्जनश्रुति ।[6]
\+ + +

१–राजतरंगिणी १,३१७, २–वही ३,४५८, ३–वही ३,४५८, ४–वही ६,१११, ५–वही ६,११२, ६–वही ७,४३८ ।

(७) विमायद् ।[1]

\+ \+

(८) तथा हि तत्रात्मजं प्राहुं प्रतीन्ति ।

(९) केचित् प्राहु ।[3]

\+ \+

(१०) इत्यपरेऽभुवन् ।[4]

(११) इति श्रुति ।[5]

(१२) रक्षां भिक्षाचरस्याहुर्निर्मितां तत्र केचन ।
केचित्तु रिपुस्मदर्शीप्रेम्णा तत्त्वरतिताम ।।[6]

अपने समक्ष घटित होने वाली घटनाओं का वर्णन महाकवि ने "आज" अथवा उसी के अभिव्यञ्जक शब्दों अथवा पदावली का प्रयोग करके अथवा अपना स्वयं का सन्दर्भ देते हुये किया है यथा–

(१) 'ह्यापि स्नवहित प्रहृष्यति पर स्व घनरामते मुदाऽद्भुत
सोऽप्यमनोरयत्यहृ मिक्ष मोहोद्यमाध्याय ।[7] (११२१ ई०)

(२) 'हा धिक् नृणां यामनामान्तरे नृपतिद्वयी ।
अद्यास्त्रियाम तथासीद्दृश्या या पुरुषायुषं ।। (११११ ई०)

(३) ह्यो जानते भैक्षवेऽद्य म गुप्तुङ्गं गतुरगमान ।
दृष्टवन्तो वयं मंच मादिनोऽद्यापि सादभुता ।।[9] (११२१ ई०)

(४) प्रत्यक्षस्य गुणाश्चाना विचित्रता यथा स्थितं ।
जनीप्यस्य भविष्यामो विवेकस्यानणा वयम ।।[10] (११२० ई०)

(५) "हिल्लाहसजन्मन सुज्जिभ्रातृस्यालस्य कौशनम् ।
मन्त्रशस्याद्य निवण्य वाणीय पुण्यभागिनी ।।[11] (११३२ ई०)

(६) 'प्रभावो भूमिदेवानां यान्तेऽद्याप्यमगुर"[12] (११३३ ई०)

(७) सुत सुस्सनमूभ्नु सप्रत्ययप्रतिमन्नम ।
नन्दयन्मेदिनीमास्ते जयसिंहो महीपतिः ।।[13] (११४९ ई०)

पूर्व ही कहा जा चुका है कि महाकवि कल्हण ने अन्तिम दो तरंगों के वर्णन

१–राजतरंगिणी ७,१२४३, २–वही ७,१२४४ ३–वही ७,१६९८, ४–वही ८,२२९,२३३, ५–वही ८ २६१, ६–वही ८,२८६, ७–वही ८,३५९, ८–वही ८,३७७, ९–वही ८,९४१, १०–वही ८,१५५१, ११–वही ८,२१५७, १२–वही ८,२२३८, १३–वही ८ ३४४८

मे घटनाचक्रो का सजीव तथा हृदयग्राही वर्णन किया है, और इस प्रकार के घटना-चक्र इतने अधिक हैं कि प्राय उनके पूर्वापर क्रम एव सम्बद्धता को विश्लेषण करना दु साध्य प्रतीत होने लगता है । इसी कारण अन्तिम दो तरगो मे ५१८१ श्लोकों मे जब कि प्रथम छ तरगो मे सब कुल २६४५ श्लोको मे वर्णन किये गये हैं, और पृष्ठों मे भी लगभग दो और एक का अनुपात है । इतने श्लोको और इतने पृष्ठो मे केवल १४५ वर्ष की घटनाओ का ही वर्णन है, जब कि पहले छं तरगो मे ४०७९ वर्षों का कश्मीर का इतिहास घटित हुआ है ।

अन्तिम दो तरगो मे घटनाओ का विस्तारपूर्वक वणन तथा सजीव चित्रण यह प्रमाणित करता है कि महाकवि कल्हण ने इन घटनाओ को या तो अपने पिता-पितामह से विशदरूपेण सुना था या उनको स्वय देखा था । इनमे प्राय सभी राजाओ के शासनकालो का काल-क्रमपूर्ण तथा याथातथ्य वर्णन किया गया है । महाकवि ने कोई भी घटना नहीं छोडी है । इनमे निम्नलिखित घटनायें अत्यन्त सजीव एव उल्लेखनीय हैं–

१–राजा अनन्तदेव का राज्य परित्याग करके विजयेश्वर में जाकर निवास (सप्तम तरग, ३४५–३६१)

२–रानी सूयमती का सती होना (सप्तम तरग, ४७२–४८१)

३–राजा कलश का चरित्र-चित्रण (सप्तम तरग, ४९१–५३२)

४–राजा हर्ष का चरित्र-चित्रण (सप्तम तरग, ६०९–६१५)

५–हर्ष की कारागृह-मुक्ति का वर्णन (सप्तम तरग, ७४३–८१५)

६–राजा हर्ष के अत्याचार व कश्मीर मे दु खा की परम्परायें (सप्तम् तरग १२१५–१२४५)

७–राजा हर्ष तथा उसके मन्त्रियो का पारस्परिक वार्तालाप, (सप्तम तरग १३८६– १४५३)

८–राजा हर्ष का मरण (सप्तम तरग १७०८–१७३०)

९–राजा उच्चल द्वारा कायस्थो का दमन (अष्टम तरग ८७–१०८)

१०–राजा उच्चल की न्यायकथायें (अष्टम तरग १२२–१६०)

११–राजा सुस्सल का पलायन (अष्टम तरग ८१४–८३७)

१२–भिक्षाचर का वणन (अष्टम तरग ८४३–८९२)

१३–अग्निकाड (अष्टम तरग ९७१–९९५, ११६९–११८५)

१४–सुज्जि का वध-वर्णन (अष्टम तरग २०८३–२१५९)

१५–शर्गाद दुर्ग मे भोजदेव तथा लोठन की अवस्था (अष्टम तरग, २५२५–२६२८)

१६–लोठन का आत्म-समर्पण (अष्टम तरग, २६२९–२६६४)

१७—भोजदेव का जयसिंह के पास निवास (अष्टम तरंग, ३२५४–३२७७)

१८—भोज का चरित्र-चित्रण (अष्टम तरंग, ३२६२–३२७७)

१९—सुरेश्वरी की तपोभूमि का वर्णन (अष्टम तरंग, ३३६९–३३७०)

२०—राजा जयसिंह व रानी रड्डा का वर्णन (अष्टम तरंग, ३३८१–३४०१)

महाकवि कल्हण की अनुभूतियों का प्रमाण उनके वचनों से मिलता है। उनका अनुभव व्यापक था, वह जीवन के सभी क्षेत्रों से पूर्णतया परिचित थे। स्थान-स्थान पर ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित आत्मानुभव के आधार पर जो वचन उन्होंने दिये हैं, उनसे ज्ञात होता है कि महाकवि की दृष्टि कितनी पैनी, कितनी सूक्ष्मतत्त्वदर्शिनी, कितनी निष्पक्ष एवं कितनी सत्योद्घाटनपरक थी।

उन्होंने (महाकवि कल्हण) बड़े-बड़े राजाओं को धिक्कारा है, और अपने अनुभव जन्य वचनों को उन पर घटित करके अपनी स्पष्टवादिता का परिचय दिया है। महाकवि ने अपने वचनों को प्रस्तुत करते हुये किंचित्-मात्र यह विचार नहीं किया है कि गगन दतन के समान के राजाओं अमात्य अधिकारियों आदि के गुण-दोषों का उद्घाटन करें या न करें। उन्होंने तो डंके की चोट पर अपनी रचना को अभिव्यक्त किया है। इससे महाकवि की निर्भीकता, निस्पृहता, निष्पक्षता तथा स्पष्टवादिता का परिचय मिलता है। उन्होंने हर्षदेव जैसे महान् कश्मीर नरेश के विषय में लिखा है[1]—

> "यथार्थी चतुरशान्ता वहव पृथिवीभुत ।
> प्रनीतिविषमो मार्ग कष्टमापतितोऽधुना ॥ ८६८ ॥
> सर्वोत्साहोदरक्षेत्र सर्वानुल्लासदूतिका ।
> सर्वव्यसनस्या जननी सर्वनीतिव्ययपोहरत् ॥ ८६९ ॥
> उद्रिक्तशासनस्फूर्तिरुद्रिक्तासागयभिति ।
> उद्रिक्तत्यागसम्पत्तिरुद्रिक्तहरणग्रहा ॥ ८७० ॥
> कारुण्योत्सेकसुभगा हिंसोत्सेकभयंकरी ।
> सत्कर्मोत्सेकललिता पापोत्सेककलंकिता ॥ ८७१ ॥
> स्पृहणीया च वर्ज्या च वन्द्या निन्द्या च सर्वत ।
> निश्चोच्या चापहास्या च काम्या शोच्या च धीमताम् ॥ ८७२ ॥
> आशास्या चापकीर्त्या च स्मार्या त्याज्या च मानसात ।
> *हर्षराजाश्रया चर्चास्था व्याक्रणीष्यते ॥*" ८७३ ॥

अर्थात् "हमने अपनी कथा में यहाँ तक बहुतेरे भले और बुरे राजाओं का इतिहास बताया। अब दुर्भाग्य से बुद्धि की सामर्थ्य के बाहर कुछ भयंकर प्रसंग सामने आ रहे हैं। राजा हर्षदेव के कथा-प्रसंग में सब तरह के अच्छे कार्यों का

१—राजतरंगिणी ७,८६८–८७३

सूत्रपात तथा उन कार्यों की असफलता का वर्णन करना पड़ेगा। साथ ही सब तरह की व्यवस्था का निश्चय और उस निश्चय में राजनीतिक सूझ-बूझ का अभाव भी दिखाई देगा। इसमें कठोर शासन की चमक और उस शासन का उल्लंघन करने का कारण उत्पन्न होने वाली गड़बड़ी तथा इससे होने वाली हानि का भी वर्णन किया जावेगा। इस तरह राजा हर्षदेव की कथा बहुत ही उदारता-भरी और पर-धनापहरण की पराकाष्ठा से ओत प्रोत है। इसमें करुणानिरेक का सौन्दर्य तथा हिंसाविषय की भीषणता भरी है। धार्मिक सुकृत्य की अधिकता के कारण यह कथा लालित्ययुक्त है, और पापाचार की बहुलता ने कलंकित भी है। इस प्रकार यह कथा स्पृहणीय भी है, और वर्जनीय भी। यह कथा वन्दनीय हो करके भी निन्दनीय है। यह बुद्धिमानो की दृष्टि मे कौतुकप्रद होती हुई भी उपहासास्पद है, और कमनीय होने पर भी शोचनीय है। यह कथा वाञ्छनीय होती हुई भी त्याज्य है। इन विशेषताओं से भरी हर्षदेव की कथा का वर्णन किया जा रहा है—

'स्वादूचित स्वादुतयैव भुङ्क्ते थूत्कृत्य मुञ्चत्यपि यूत्कृतानि।
विभाभिनस्त्रासमुपैत्यकस्माद्भूभृच्च बालश्च समानभाव ॥१११४॥
जाड्यमित्यादि यत्किंचिच्छिनिपाता कटाक्षिनम्।
तत्सर्वं हर्षदेवस्य जाड्येन लघुताम् ययौ ॥१११५॥

अर्थात् 'राजाओं और बालकों का स्वभाव एक जैसा होता है। जैसे बालक मधुरभाषी व्यक्ति को अच्छा समझते हैं, यदि कोई थू थू करता है तो वे भी थू, थू करने लगते हैं और यदि कोई धमकाता है तो उससे बिगड़ जाते हैं। ठीक यही हाल राजाओं का भी रहता है। पुरातन काल में राजाओं की मूर्खता पर जो कटाक्ष किए जाते थे, वे सब राजा हर्ष की मूर्खता के समक्ष तुच्छ दिखने लगे।"[1]

'राजा तु गतलज्ज स निरयह्रयोपमजड।
कर्तुं प्रारभता खिन्न पुनर्मण्डलपीडनम् ॥"१२०३॥

अर्थात् "तत्पश्चात् वह मूर्ख और निर्लज्ज राजा हर्ष खेदहीन होकर फिर अपनी प्रजा को सताने लगा।'[2]

"

दुर्बुद्धेस्तस्य भूभर्तुरेव भृत्या विपेदिरे ॥१२१५॥
मण्डले राज-दण्डेन क्षतेनेव परिक्षते।
क्षारपातोपमाऽन्यापि प्रादुर्बभूव खपरम्परा ॥"१२१६॥

अर्थात् "इस प्रकार उस दुर्बुद्धि राजा के दो-दो मंत्री एक साथ मर मिटे। राजा हर्ष के अत्याचारों से पीड़ित कश्मीर मण्डल मे घाव पर नमक छिड़कने के

१—राजतरङ्गिणी ७,१११४,१११५, २—वही ७,१२०३,

तृतीय अध्याय

राजतरंगिणी तथा संस्कृति

'संस्कृति सीमाओं से रहित, मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित तथा मूलत समस्त सामाजिक व्यवस्था के सुचारु सचालन का आधारपीठ है।"[1]

"संक्षेप में नैतिक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सामरिक सभी साधन सांस्कृतिक विधान के विविध अङ्ग हैं।"[2]

राजतरगिणी मे वर्णित सस्कृति भारतीय सस्कृति है। भारतीय सस्कृति समन्वयात्मक है अर्थात् विचारधाराओं, मतो, परम्पराओं तथा व्यवहार-सम्पत्ति में भिन्नतायें होते हुए भी भिन्नताओ का प्रवाह समन्वय मे ही समाप्त होता रहा है। समन्वयवादिता, उदारता, एकात्मक अनेकता, सश्लिष्टता, अवसरानुकूलता, गतिशीलता, पारभौतिकता तथा सूक्ष्मता भारतीय सस्कृति की विशेषतायें हैं जो ससार की अन्य सस्कृतियों से भारतीय सस्कृति को विशिष्ट स्थान प्रदान करती हैं।

विद्या का प्राचीन केन्द्र और सस्कृत विद्वानो का आधुनिक तीर्थ कश्मीर-मण्डल युगों-युगों की भारतीय भावनाओ मे ऐसा ओतप्रोत हो गया है कि वह अखिल भारत के स्वरूप से एकाकार हो गया है। भारतीय सस्कृति की इतनी कड़ियाँ कश्मीर स लिपटी हुई हैं कि एक के अभाव में दूसरे का ध्यान मे लाना असम्भव है।

राजतरगिणी में वर्णित सस्कृति के विभिन्न स्वरूप दर्शनीय हैं। इसका कारण यह है कि राजतरगिणी का इतिहास एक विशाल राज्य का अनेक शताब्दियों के अन्तर्गत विभिन्न राजवशो, सामाजिक परम्पराओ, धार्मिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक उत्थान-पतनो, आर्थिक नीतियों, नैतिक मान्यताओ आदि का वृहद् इतिहास है। तथापि इस वृहद् इतिहास की एक विशेषता यह है कि उसमें विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न स्वरूपो मे एक अविच्छिन्न एकरूपता विद्यमान है। यह एकरूपता इस ग्रन्थ का प्राण है और इस ऐतिहासिक महाकाव्य को अमरता प्रदान करती है।

महाकवि कल्हण ने नीलनाग को कश्मीर मडल का सास्कृतिक नायक

१—पाण्डेय तथा जोशी 'भारतीय सस्कृति के मूल तत्व', पृष्ठ १
२—वही, पृष्ठ २।

बतलाया है ।[1] उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा निम्नलिखित पौराणिक श्लोक को प्रस्तुत किया है–

कश्मीरा पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशज ।
नावज्ञेय स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छता ।।१–७२।।

इस श्लोक से कश्मीरमण्डल का पावनी स्वरूप तथा कश्मीर-नरेश का शिवांशज होना बतलाया गया है । कश्मीरमण्डल त्रिकदर्शन की भूमि है । त्रिकदर्शन नरशक्ति-शिवात्मक है ।[2]

गोनन्दवंश के प्रारम्भिक नरेश अधिकांश शिवभक्त थे । कुछ राजाओं ने जैनधर्म तथा बौद्धधर्म की ओर अपनी प्रवृत्ति प्रदर्शित की । राजा अशोक ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया और एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण कराया । हुष्क, जुष्क और कनिष्क नामक राजे बौद्धमतानुयायी थे, उन्होंने अनेक मठों, चैत्यों तथा विहारों का निर्माण कराया । इसी समय कश्मीर मंडल में प्रव्रज्या के प्रभाव से जाज्वल्यमान बौद्ध भिक्षुओं का प्राधान्य हो गया । उस समय भगवान् बुद्ध के निर्वाण को डेढ सौ वर्ष व्यतीत हुये थे । षडर्हद्वननिवासी नागार्जुन सर्वेश्वर तथा बोधिसत्व माना जाता था । कश्मीर नरेश अभिमन्यु ने चन्द्राचार्य्य आदि महान् पंडितों को लुप्तप्राय व्याकरण-महाभाष्य के प्रचार के लिये प्रेरित किया । चन्द्राचार्य्य ने चान्द्र व्याकरण की रचना की । इधर बलिदान-पूजा आदि कर्मों के लुप्त हो जाने से नागों ने क्रुद्ध होकर प्रजा को नष्ट करना प्रारम्भ किया । तब काश्यप-गोत्रीय चन्द्रदेव नामक ब्राह्मण ने अपनी तपस्या से कश्मीर देश के रक्षक नीलनाग को प्रसन्न कर लिया । नीलनाग ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर नीलमत पुराणोक्त विधि बतायी जिससे बौद्ध बाधा का शमन हो गया ।

नीलमतपुराण का दूसरा नाम कश्मीर माहात्म्य भी है । माहात्म्य ग्रन्थ अनेक हैं । उनका समावेश अधिकतर पुराणों अथवा उप-पुराणों में होता है । ये माहात्म्य ग्रन्थ पुरोहितों अथवा तीर्थों के निर्देश ग्रन्थ हैं, अर्थात् इनमें पुरोहितों अथवा तीर्थों की प्रशंसा की गई है । इनका कुछ अंश प्राचीन परम्पराओं का उल्लेख करता है और कुछ कल्पना प्रसूत है । ये अंश इन ग्रन्थों की पवित्रता को प्रमाणित करने के लिये रचे गये हैं । ये माहात्म्य ग्रन्थ तीर्थयात्रियों के लिये विविध संस्कारों तथा यात्रा मार्गों का भी निर्देश करते हैं ।[3] भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों की भौगोलिक स्थिति का विशद परिचय प्रस्तुत करने वाले इन माहात्म्य ग्रन्थों का

१–विण्टरनित्स, 'ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर', पृष्ठ ५८३–५८४ ।
२–जे० सी० चटर्जी 'काश्मीर शैविज्म', पृष्ठ १, फुटनोट ।
३–विण्टरनित्स 'ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर' पृष्ठ ५८३–५८४ ।

बड़ा ही महत्व है।

राजा अभिमन्यु के पश्चात् राजा गोनन्द तृतीय ने पहले की भाँति नागपूजन, नागयज्ञ, नागयात्रा और नागोत्सव प्रारम्भ करा दिये। राजा के द्वारा नीलमत-पुराणोक्त विधि से धार्मिक कार्य प्रारम्भ कर देने पर बौद्ध बाधा तथा हिमबाधा दोनों का शमन हो गया।[1]

उपर्युक्त घटनाओं से पता चलता है कि महात्मा बुद्ध के निर्वाण के बाद बौद्ध धर्म का धीरे-धीरे ह्रास प्रारम्भ हो गया और वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ, परन्तु इस वैदिक धर्म का उत्थान एक नवीन रूप में हुआ। अब इन्द्र वरुण, अग्नि आदि देवताओं का स्थान उन महापुरुषों ने ले लिया जिनका कि सर्वसाधारण में अपने लोकोत्तर गुणों के कारण अनुपम आदर था। शुंग काल में जिस सनातन वैदिक धर्म का पुनरुद्धार हुआ उसके उपास्यदेव वासुदेव, सकर्षण और शिव थे।[2] बौद्ध और जैन धर्मों में जो स्थान बोधिसत्वों और तीर्थंकरों का था, वही इस सनातन धर्म में इन महापुरुषों का हुआ। बौद्ध और जैन धर्मों के प्रभाव से वैदिक धर्म के यज्ञों की परिपाटी समाप्त हो गई और इसके पुनरुत्थानकाल में अहिंसा का महत्व बढ़ गया। उपलक्षण के रूप में अश्वमेध-यज्ञ अवश्य किये जाने लगे, पर सर्वसाधारण जनता में यज्ञों का पुनः प्रचलन नहीं हुआ। यज्ञों का स्थान इस समय मूर्तिपूजा ने ले लिया। शुंगयुग में जिस प्राचीन सनातन धर्म का पुनरुद्धार हुआ, वह शुद्ध वैदिक नहीं था, उसे पौराणिक कहना अधिक उपयुक्त होगा।[3] इस नये पौराणिक धर्म की दो प्रधान शाखायें थीं—

(१) भागवत और (२) शैव।

पुरान युग में वासुदेव कृष्ण शूरसेन जनपद के सात्वत लोगों के महापुरुष व वीर नेता थे, वह अन्धकवृष्णिगण में प्रादुर्भूत हुये थे। उनके लोकोत्तर गुणों के कारण जनता उन्हें वैदिक विष्णु का अवतार मानने लगी। श्रीमद्भगवद्गीता इस भागवत सम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ था। महाभारत और भागवत-पुराण में कृष्ण के दैवीरूप और माहात्म्य के साथ सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी कथायें संग्रहीत हैं।[4]

भागवत धर्म में पशुहिंसा व बलिदान को उचित नहीं मानते थे। भागवत धर्मावलम्बियों ने कृष्ण, विष्णु व अन्य देवताओं की मूर्तियाँ बनाना प्रारम्भ कर दिया। पूजा की नवीन पद्धति का सूत्रपात हुआ, जिसमें विधि-विधान तथा कर्मकाण्ड की अपेक्षा भक्ति को अधिक प्रधानता दी गयी।[5]

१—राजतरङ्गिणी, १—१८६।

२—सत्यकेतुविद्यालङ्कार 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास', पृष्ठ २६०।

३—वही, पृष्ठ २६१। ४—वही। ५—वही पृष्ठ २६२।

वैष्णव भागवतों के समान शैव भागवत धर्म का भी बौद्धों के ह्रास के बाद विशेषरूप से प्रचार हुआ। अनेक विदेशी आक्रान्ता शैवधर्म की ओर आकृष्ट हुए। इनमें कुषाण राजा विम मुख्य है।

शैवधर्म का प्रवर्तक लकुलीश नामक आचार्य माना जाता है। पुराणों के अनुसार यह शिव का अवतार था। उसने पञ्चार्थविद्या या पञ्चार्थविद्या नामक ग्रन्थ की रचना की। शिवभागवतों ने शिव अथवा रुद्र को अपना उपास्यदेव माना और लकुलीश से उसकी अभिन्नता स्थापित की। प्रारम्भ में शैवधर्म शिव भागवत, लाकुल, पाशुपत और माहेश्वर के नामों से भी अभिहित किया जाता था। आगे चल कर इसके अनेक सम्प्रदायों का विकास हुआ, जिनमें कापालिक और कालमुख विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

शैव मन्दिरों में पहले शिव की मूर्ति स्थापित की जाती थी। कालान्तर में शिवमूर्ति का स्थान लिंग ने ले लिया। शैव लोग लिंग की उपासना करने लगे। प्राचीन भारत के गणराज्यों में यौधेयगण ने शैवधर्म को अपनाया। वे लोग शिव-भागवत थे।

विष्णु और शिव के समान सूर्य की पूजा भी इस समय भारत में प्रचलित हुई। यही नहीं, अब सूर्य के भी मन्दिरों का निर्माण प्रारम्भ हुआ और उनमें सूर्य की मूर्ति स्थापित की गई। सूर्य मन्दिरों के ध्वंसावशेष कश्मीर, अल्मोड़ा आदि में पाये जाते हैं।[1]

वासुदेव, कृष्ण शिव और सूर्य के अतिरिक्त शक्ति स्कन्द गणपति आदि अन्य भी अनेक देवताओं की मूर्तियाँ इस समय बनीं। उनके मन्दिर भी स्थापित किए गए। इस नई प्रवृत्ति की तह में वही भक्ति भावना काम कर रही थी, जिसका प्रतिपादन कृष्ण ने इन शब्दों में किया था, "सर्वान् धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।" वैदिक देवताओं की पूजा का यह एक नया प्रकार इस समय भारत में प्रचलित हो गया था।[2]

कश्मीर मण्डल में भी उपर्युक्त सभी धार्मिक प्रवृत्तियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। नीलमतपुराण में अन्य पुराणों की भाँति वर्णाश्रम धर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है। कश्मीर मण्डल में जब चन्द्रदेव बौद्धों ने शास्त्रार्थ में बड़े बड़े वादियों को परास्त करके नीलमत के सिद्धान्तों को उच्छिन्न कर दिया तो नागों ने क्रुद्ध होकर हिमपात के द्वारा प्रजा का संहार करना प्रारम्भ किया। उस समय बलिदान, पूजा, होमादि धार्मिक कृत्य करने वाले ब्राह्मणों का अपने मरकम के

१—सत्यकेतु विद्यालंकार 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास', पृष्ठ २६४

२—सत्यकेतु विद्यालंकार 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास', पृष्ठ (२६४)

मेरुवर्धन नामक मन्त्री के यहाँ बालकों का अध्यापक था । राजा यशस्कर का विद्या-प्रेम अभूतपूर्व था । उसने अपनी पितृभूमि में आर्यदेशीय विद्यार्थियों को रहने के लिए एक विद्यामठ बनवाया था । राजा जयापीड ने सभी विद्याओं के उद्‌गम स्थान कश्मीर में सब लुप्तप्राय विद्याओं को पुनरुज्जीवित किया । उसने सज्जनों को सुशिक्षित करने के लिये बड़े-बड़े विद्वानों को नियुक्त किया । उसने लुप्त व्याकरण के महाभाष्य का पुन: प्रचार करने के लिये विदेशों से धुरन्धर विद्वानों को बुलाकर फिर से उसके पठन-पाठन की ओर लोगों में रुचि उत्पन्न कर दी । राजा ने क्षीर-स्वामी नामक वैयाकरण से स्वयं विधिवत् महाभाष्य का अध्ययन किया । उसने खोज-खोज कर संसार भर के उत्तम विद्वानों को अपने यहाँ रख लिया । उस समय कश्मीर में राजा के पद की अपेक्षा पंडित पद अधिक लोकप्रिय और विश्रुत था ।

इन सब बातों से पता चलता है कि ब्रह्मचारियों, विद्यार्थियों व विद्याव्यसनियों के लिये सुलेव्य था । द्विजों के विद्योपार्जन के लिये कश्मीर उपयुक्त स्थान था । गृहस्थजीवन का जीवन में सर्वोपरि महत्त्व है । महाकवि की एकमात्र रचना राजतरङ्गिणी गृहस्थ जीवन के विविध संघर्षों की एक मनोरम गाथा है । इस ग्रन्थ में वर्णित असंख्य मान्यताएँ गृहस्थ जीवन के लिए सुन्दर निदर्शन व निधि है । इनमें अधिकतर मान्यताएँ धार्मिक मान्यताएँ हैं ।

जातकर्म से दाहसंस्कार तक षोडश संस्कार, स्वयम्वर आदि विवाह, विविध प्रकार की यात्रायें यथा गंगायात्रा, काशीयात्रा, नागयात्रा आदि, अनेक प्रकार के दर्शन जैसे देवीदर्शन, सूर्यदर्शन, तीर्थदर्शन, नागदर्शन आदि, अनेक प्रकार के उत्सव जैसे सहस्रभक्त, इन्द्रद्वादशी, अनेक प्रकार के शुभाशुभ कार्य शुभशकुन-अपशकुनादि, व्रत-उपवास-यज्ञादि, अनेक प्रकार के सम्बन्ध व सम्बन्धी जैसे मातुल-भागिनेय, भ्राता-भगिनी, माता-पिता, गुरु-शिष्य आदि, अनेक तीर्थ यथा प्लक्षप्रस्रवण (नैमिषारण्य), प्रयाग क्षेत्र, काशीधाम (विमुक्त-तीर्थ) गया, पापसूदन, सोदरादि तीर्थ-स्थान, विविध प्रकार की पूजायें जैसे नागपूजा, सागरपूजा, देवपूजा आदि का उचित स्थलों पर समावेश किया गया है ।

विविध प्रकार के दानों का उल्लेख राजतरङ्गिणी में विशेष रूप से द्रष्टव्य है । इनमें से देशदान, ग्रामदान, भूमिदान, अग्रहारदान, रत्नदान, स्वर्णदान, उपकरणदान, धनदान, सेवकदान, अन्नदान, प्रतिमादान, स्त्रीदान, अश्वदान, गोदान, तुलादान, श्राद्धदान, ग्रहणदान, ग्रहशान्तिदान, दक्षिणा, विवाहदान, उभयमुखीदान, औषधिदान आदि का उल्लेख मुख्यरूप से किया गया है ।

श्राद्ध, पितर तथा देवतर्पण, दक्षिणा और आतिथ्य, सन्ध्योपासन आदि का समावेश पंचमहायज्ञों में होता है । इनका उल्लेख राजतरङ्गिणी में यत्र-तत्र मिलता है । गुरु और गुरुमहिमा के उदाहरण कई स्थानों में दर्शनीय हैं । राजा

जलौक और उसका तेजस्वी गुरु, राजा विभिनान्य तथा उसका महान् प्रभावशाली गुरु उग्र, राजा सन्धिमति तथा उसका निस्पृह गुरु ईशान्, रानी अमृतप्रभा और उसके पिता का गुरु सिद्ध अल्लार राजा चन्द्रापीड तथा उसका गुणवान् गुरु मिहिर-दत्त आदि शिष्य-गुरु परम्परा के अप्रतिम निदर्शन हैं। गुरुद्रोह के कारण राजा ताराचीड का राज्य अल्पकालीन हो गया था।

राजतरङ्गिणी मे सन्यास आश्रम के कई एवं सुन्दर वर्णन लेखनीबद्ध किये गये हैं। पहले चार तरङ्गों के अधिकांश राजे तपस्या मे दृढ़ विश्वास रखने थे। ससार की अनित्यता को हृदयगम करके वे पुण्यकार्य करते हुए अन्त मे राज्य का परित्याग कर देते थे और किसी वन या तीर्थ म अपनी ऐहिक लीला का समाप्त करके स्वर्गसुख के अधिकारी होते थे। ऐसे राजाओं म कुछ का वर्णन नीचे दिया जाता है। राजा जलौक अपनी पत्नी के साथ चीरमोचनतीर्थ में अपना शरीर त्याग कर शिव स्वरूप में लीन हो गया था। राजा सिद्ध सासारिक सुख-भोग करता हुआ भी विषय-पक से सदा निलिप्त रहता था। फलस्वरूप उसने सदेह शिवलोक प्राप्त किया।

राजा आयराज ने समस्त प्रजाजनों को कश्मीर का सुरक्षित राज्य लौटा कर और स्वय समस्त राज्यचिह्नों का परित्याग करके तपस्या के लिए नन्दिक्षेत्र को प्रस्थान किया था।

राजा मातृगुप्त ने कश्मीर मडल का राज्य त्याग कर काशीधाम जाकर सन्यास ले लिया था और काषायवस्त्र धारण कर लिए थे।

राजा प्रवरसेन ने राज्य त्याग कर सशरीर कैलाशवास किया था। राजा रणादित्य ने दक्षिणापथ मे जाकर कठोर तप किया था और अन्त मे पाताललोक का भी ऐश्वर्य भोगकर वह परम धाम का अधिकारी बना।

राजा कुवलयापीड ने राज्य का परित्याग करके प्लक्षप्रस्रवण (नैमिषारण्य) तीर्थ में प्रबल तपस्या की और असाधारण सिद्धि प्राप्त की।

विशि राजा प्रतिष्ठित (यजुर्वेद, २०/९)

'राजा की स्थिति प्रजा पर निर्भर होती है।'

उपर्युक्त उदाहरणो से पता चलता है कि कश्मीर मण्डल की प्रजा भी आश्रम व्यवस्था मे गम्भीर आस्था रखती थी।

योगी तथा योगिनियो का उल्लेख राजतरङ्गिणी मे कई स्थलो पर आया है। राजा आयराज (सन्धिमति) का गुरु ईशान महान् योगी तथा जितेन्द्रिय था।

भट्टा नामक योगिनी ने राजा मिहिरकुलतनय राजा बक को पुत्र-पौत्रा समेत मातृचक्र के समक्ष बलिदान करके आकाशगमन की सिद्धि प्राप्त कर ली थी।

राजा जलौक ने चीरमोचन तीर्थ में ब्रह्मासन लगाकर तथा ध्यानमग्न होकर कई दिनों तक तपस्या की थी।

राजा प्रवरसेन अपने योगबल से पाषाणनिर्मित प्रासाद का भेदन करके निर्मल गगनमण्डल में उड़ गया था। योगिनियों ने अपने योगबल से मन्त्री सन्धिमति के नर-कंकाल में प्राणप्रतिष्ठा कर दी थी।

राजा उच्चल के शासनकाल में तो प्रत्येक मार्ग पर योग विद्या तथा प्राणायाम शिक्षा के केन्द्र बने हुये थे।

कुछ योगियों ने तो अपने योग से सिद्धि प्राप्त कर ली थी। राजा मेघवाहन की रानी अमृतप्रभा के पिता का गुरु सिद्ध अल्लोर था।

राजा प्रवरसेन का गुरु श्रीपर्वत निवासी पाशुपतव्रती सिद्ध अश्वपाद था। देवी रणारम्भा ने ब्रह्म नामक सिद्ध से भगवान् रणेश्वर की प्रतिष्ठा कराई थी और अपनी सिद्धता का भेद खुल गया जानकर वह सिद्ध आकाशमार्ग से उड़ गया था। राजा अवन्तिवर्मा के शासनकाल में श्रीभट्ट, कल्लट आदि सिद्ध पुरुष लोकानुग्रह के लिये जगतीतल पर अवतीर्ण हुए थे।

भट्टारक मठ का मठाधीश व्योमशिव बड़ा धर्मात्मा और कर्मठ भिक्षु था। उसने खुर्खुटसिद्धि प्राप्त करने के लिये व्रत ले रहा था और कठोर तप किया था।

रानी रणारम्भा ने आकाशचारी सिद्धों के द्वारा विष्णु और शिव की मूर्तियों को मानसरोवर से मंगवाया था।

इन योगियों और सिद्धों के अतिरिक्त कश्मीर में तान्त्रिक, मान्त्रिक, कापालिक तथा अवधूत भी थे। ये सम्मोहन वशीकरण, मारण तथा उच्चाटन क्रियाओं में दक्ष थे। राजा जलौक का गुरु परम तेजस्वी अवधूत था।

कुछ ब्राह्मण वेशहोम के द्वारा कृत्या उत्पन्न करके मारणक्रिया सम्पन्न करते थे। अभिचार क्रिया के द्वारा वध तो साधारण घटना-सी बन गई थी। राजा संग्रामराज के राज्यकाल में ब्राह्मणों ने तुंग का विनाश करने के लिये वेशहोम के द्वारा कृत्या उत्पन्न की थी।

राजा चित्ररथ के कुकृत्यों से सन्त्रस्त होकर ब्राह्मणों ने कृत्या द्वारा उसके प्राणों का हरण किया था। एक मान्त्रिक ने सुश्रवा नाग को कष्ट दे रखा था। एक अन्य मान्त्रिक ने राजा चन्द्रापीड के शासनकाल में अपने सहपाठी ब्राह्मण के प्राण ले लिये थे। एक द्राविड मान्त्रिक ने महापद्म नामक नागराज को मन्त्रबल से पकड़ने का यत्न किया था।

राजा कलश के शासनकाल में विद्याधरवणिक नामक तान्त्रिक भैरव से भी न डरने वाले भग्नजानु भट्टपादों को भयभीत होकर अपने चरणों में गिरते देखकर उनके मस्तक पर अपना वरदहस्त रखकर स्वस्थ कर दिया करता था।

राजा प्रवरसेन का गुरु पाशुपतपन्थी अश्वपाद एक कापालिक था। मरण-शय्या पर पड़े हुए हलधर ने जिष्णुराज को लाञ्छित करके उसका उच्चाटन किया था। इसी प्रकार जयानन्द ने विजय का उच्चाटन करके उसकी पुनरावृत्ति कर दी।

राजा चन्द्रापीड का उसके कनिष्ठ भाई तारापीड ने अभिचारिकी क्रिया द्वारा मरवा डाला था। अल्पवयस्क राजा गोपालवर्मा अपने मातामह प्रभाकरदेव द्वारा अभिचार क्रिया द्वारा मरवा डाला गया था।

राजा यशस्कर की मृत्यु अभिचारिकी क्रिया द्वारा हुई थी। रानी दिद्दा ने अपने पौत्रों नन्दिगुप्त तथा त्रिभुवनगुप्त का अभिचार क्रिया द्वारा मरवा डाला था।

रानी श्रीलेखा ने अपने पुत्र राजा हरिराज को अभिचार क्रिया से मरवा दिया।

कश्मीर मण्डल के निवासी मन्त्रजाप, रामायण–पुराण–गीतादि श्रवण, भेंट व मनौती, शुभाशुभ कर्मों की फलवत्ता, शुभशकुन अपशकुन आदि के शुभाशुभ परिणाम सत्य, स्वामिभक्ति व देशभक्ति, शाप व वरदान शपथ तथा भविष्यवाणी की परिणति, भूतप्रेत बैतालादि की सत्ता, प्रायश्चित्त, पुण्यकर्म तथा पुण्यफल आदि में विश्वास रखते थे।

राजतरङ्गिणी में नारी के स्थान की अत्यन्त सम्मान कल्पना की गई है। कश्मीर देश को पार्वती का स्वरूप तथा उसके राजा को साक्षात् शिव बतलाया गया है। परन्तु नारी के अधिकार सीमित थे। उनको पठन-पाठन का अधिकार न था। वह राज्याधिकारिणी न हो सकती थी। कश्मीर नरेश दामोदर के मरणोपरान्त श्रीकृष्ण ने बड़ी कठिनाई से उसकी रानी यशोमतीदेवी का राज्याभिषेक कराया था। राजा क्षेमगुप्त की रानी दिद्दा ने अभिचारकर्म द्वारा अपने पौत्रों की जीवन लीला समाप्त करने का घृणित कार्य करके राज्य प्राप्त किया था। राजा शङ्कर वर्मा की रानी सुगन्धादेवी ने राजा को भी वश में करने तथा अनुग्रह करने में समर्थ तन्त्रिया तथा पदातियों के ऐकाङ्ग मण्डल के साथ मैत्री करके उसकी सहायता से दो वर्ष राज्य चलाया था।

रानी श्रीलेखा ने जब अपने पुत्र राजा हरिराज का अभिचार क्रिया के द्वारा वध करा कर स्वयं अपना राज्याभिषेक कराने की चेष्टा की तो दिवंगत राजा हरिराज के धात्रेय भ्राता सागर एवं कुछ एकांगों ने मिलकर उसके अल्पवयस्क पुत्र अभिनंदेव का राज्याभिषेक करा दिया। इन सब प्रसंगों से ज्ञात होता है कि स्त्रियों को राज्याधिकार देना जनमत के विरुद्ध था।

राजतरङ्गिणी में एक ओर जहाँ पतिपरायणा, पतिव्रता एवं सती-साध्वी स्त्रियों का उल्लेख है तो दूसरी ओर कुलटा और व्यभिचारिणी स्त्रियों का भी वर्णन किया गया है। पतिपरायणा चन्द्रलेखा, सती-साध्वी वणिक्पत्नी (राजा यशस्कर के शासनकाल में), चरित्रवती रानी अमृतप्रभा, राजा शङ्करवर्मा की

सुरेन्द्रवती आदि तीन सती-साध्वी रानियाँ, राजा यशस्कर की पतिव्रता रानी त्रैलोक्यदेवी, तुग की पुत्रवधू सती बिम्बा, सती सूयमती, पतिपरायणा रानी सहजा, भत्तराज की छै पत्नियाँ सती कुमुदलेखा, वल्लभा आदि के चरित्र सुशीला नारियो के लिये उत्कृष्ट आदर्श हैं।

दूसरी ओर दुर्लभवधन की रानी अनगलेखा, राजा शकरवर्मा की रानी सुगन्धादेवी, राजा क्षेमगुप्त की रानी दिद्दा, तुगपुत्र कन्दर्पसिंह की पत्नी क्षेमा, राजा सग्रामराज की रानी श्रीलेखा आदि की व्यभिचार कथायें स्त्रीजाति की दुश्चरित्रता के अप्रतिम उदाहरण हैं।

उस समय स्त्रियों के अग्निप्रवेश की प्रथा (सतीप्रथा) प्रचलित थी। महाकवि ने स्त्रियो के सतीत्व की भूरि-भूरि प्रशसा की है।

उस समय राजे अनेक विवाह कर लेते थे अर्थात् तत्कालीन समाज में बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी। राजा कलश के अन्त पुर मे बहत्तर रानियाँ थीं। राजा हर्ष के रनिवास में ३६० रानियाँ थीं। राजा जयसिंह ने भी कई रानियो से विवाह किये थे।

राजाओ के सैनिक शत्रु राजा की रानियो का बलात् अपहरण कर लेते थे। सुज्जि ने मागिक की पुत्री का हरण करके राजा लोठन की उजडी गृहस्थी बसा दी थी।

राजा अन्ध युधिष्ठिर के पलायन करने पर शत्रुओ ने उनकी अन्त पुर की रानियो का अपहरण कर लिया था। राजा हर्ष की रानियो का डामर बलात् अपहरण कर ले गये थे और राजा कुछ न कर सका था।

नोण नामक वैश्य ने तो अपनी पत्नी नरेन्द्रप्रभा को राजा दुर्लभक को सहर्ष समर्पित कर दिया था।

इससे ज्ञात होता है कि कुछ राजे अत्यन्त स्त्रीपरक थे। इनमें राजा क्षेमगुप्त तथा राजा अनन्तदेव के नाम उल्लेखनीय हैं। राजा जयापीड का पुत्र ललितापीड, राजा कलश तथा राजा भिक्षाचर परम कामी एव वेश्यागामी राजे हुये हैं। उस समय वेश्याओ के वेश्यालय भी खुले हुये थे।

राजपरिवारो के अतिरिक्त साधारण गृहणियाँ में भी व्यभिचार घर कर गया था। यदि ऐसा न होता तो राजा मिहिरकुल पति-पुत्र-बान्धव समेत तीन करोड कुलस्त्रियो का वध करा कर क्रूरकर्मा न बन जाता।

महाकवि कल्हण ने स्त्रीजाति को लक्ष्य करके लिखा है—

निसर्गतरला नारी को नियन्त्रयितु क्षम ।
नियन्त्रणेन किं वा स्याद्यत्मला स्मरणोचितम् ॥ ३–५१५ ॥

और भी राजा अनन्तदेव स्त्रियो के स्वभाव के विषय में कहता है—

क्व काश्चिदन्या काश्चित्प्रभा काश्चिच्च कार्मणे ।
पुस्त्र काश्चिदमुत्रासिद्भर्तृणा जहु नुरक्ता ॥ ७–८२६ ॥

रानी जयमती के कपटकार्य का उल्लेख करते कवि लिखता है–

दौ शीलस्य्याचरन्त्या घातयन्त्यापि वल्लभान् ।
हेतया प्रविशत्यग्नि न स्त्रीषु प्रत्यय ववचित ॥ ८–३-६ ॥

राजा जयसिंह ने दण्ड की ऐसी व्यवस्था कर भी कि गृहस्था के घर मे व्याह कर आयी हुई स्त्रियो मे फँसे हुये दुराचार का अन्त हो गया।

सन्यस्तनायें विरता होने के बाद भी धन की इच्छा से दुराचारिणी हो हो जाती थी।

कश्मीर की सुन्दरी गायिकाओ का क्रय विक्रय भी खूब होता था। टक्कदेश के निवासी चुन्निय नामक व्यापारी ने तुर्की के व्यापारियो से विभिन्न देशो से लाई हुई सुन्दरी गायिकाओ को खरीद कर राजा हर्ष को उपहार रूप मे दी थीं।

राजतरङ्गिणी मे रखैल स्त्रियो का भी वर्णन किया गया है। राजा ललितादित्य की रखैल और करणप (कलवार) जाति की वेश्या जयादेवी से चिप्पट जयापीड का जन्म हुआ था। राजा वगु की रानियो कल्हटदेवी तथा मृगावती युवक सुगन्धादित्य की मनभावनी रखैल थी।

रानी दिद्दा पथवाहक तुग की रखैल बन गई थी। दुष्ट पाथ बड़ा ही दुर्बुद्धि था। वह अपने भाई की पत्नी को रखे हुये था।

कुछ स्त्रियाँ गायन और नृत्य कला मे पारंगत थी। राजा जलौक ने भगवान ज्येष्ठश की पूजा के समय नृत्य करने के लिये नृत्य-गीत कुशल अन्त पुर की सौ स्त्रियो को नियुक्त किया था। राजा जयापीड कश्मीर जज्ज के द्वारा कश्मीरमण्डल का बलात् अपहरण कर लेने पर राजा गौडाधिपति जयन्त के द्वारा पौण्ड्रवधन नगर मे गया। वहाँ भगवान कार्तिकेय के मन्दिर मे उसने नर्तकियो का गायन सुना तथा नृत्य देखा।

उन नर्तकियो मे कमला नारी ने राजा को अपने घर ले जाकर उसका आतिथ्य सत्कार किया था। राजा चक्रवर्मा के शासनकाल मे डाम जाति का रग नामक विदेशी गायक अपने साथ हसी और नागलता नामक सुनयनी गायिकायें लाया था। उसका सगीत कपूर की वानी मे रखे हुए मैरेय (मदिरा) की भाँति हृदयहारी था।

देवमन्दिरों की देवदासियाँ भी नृत्य-गीत मे निपुण होती थी। राजा कलश ने ही कश्मीर मे उपाँग गीत तथा उच्च कोटि की नर्तकियो के सग्रह की प्रथा का प्रारम्भ किया था।

राजतरगिणी मे अन्य वर्ण विवाह का कई स्थलों पर उल्लेख किया गया है।

इससे चातुर्वर्ण्यव्यवस्था की शिथिलता का आभास मिलता है । यह शिथिलता तृतीय तरंग के बिल्कुल अन्त तथा चतुर्थ तरंग के प्रारम्भ से अर्थात् ईसा की छठी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश से दृष्टिगोचर होती है । गोनन्दवंश के अन्तिम राजा बालादित्य ने अपनी पुत्री का विवाह दुर्लभवर्धन नामक अश्वघास कायस्थ के साथ कर दिया था ।

सातवाहन वंशज राजा संग्रामराज ने अपनी पुत्री लोठिका का विवाह दिद्दामठ के अध्यक्ष प्रेम नामक ब्राह्मण के साथ कर दिया था । अभिजात नारियाँ साधारण कुलस्त्रियों की भाँति जीवन व्यतीत करती थीं । कुछ निर्धन स्त्रियाँ दासी कार्य करके जीवनयापन करती थीं ।

वस्त्राभूषण

राजतरंगिणी में निम्नलिखित वस्त्रों का उल्लेख किया गया है—

१ स्वर्णरश्मि वस्त्र, कंचुकी, अवच्छेलेख कंचुकी,
२ स्वर्णतार के वस्त्र
३ काषायवस्त्र,
४ सन के वस्त्र
५ मृग चर्म,
६ सूती वस्त्र
७ कम्बल,
८ पगड़ी (शिरस्त्राण)
९ लहँगे आदि ।

आभूषणों में से कुछ निम्नांकित हैं—

१ कंकण,
२ विजायठ,
३ कुण्डल,
४ स्वर्णमिनसार अलङ्कार,
५ हेमोपवीतक (सुनहरी जरी के गुच्छे)
६ अंगुलीयक (अंगूठी),
७ कमल के आभूषण,
८ भाँति-भाँति के रत्नाभूषण ।

सौन्दर्य-प्रसाधन के उपकरणों में चन्दन, तिलक, ताम्बूल, अंजन, काजल, कमल के आभूषण आदि की गणना की जा सकती है ।

महाकवि कल्हण ने अनेक साधारिक एवं प्राणान्तक रोगों का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है । यथा—

१ शरीर दाह,	८ धातुक्षयरोग,
२ शरीर पीडा,	९ गलगण्डरोग,
३ क्षयरोग,	१० शूलरोग,
४ सूता रोग,	११ विपूधिका
५ ज्वर,	२१ नेत्ररोग,
६ शीतज्वर,	१३ पदरोग,
७ उदररोग,	१४ दुर्नाम (बवासीर) आदि।

राजतरङ्गिणी मे अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्रों का भी उल्लेख है–

१ तूर्य	७ हुडक्का,
२ यामतूर्य	८ पटह (डुग्गी)
३ कुम्भ (वाद्य)	९ दुन्दुभि (युद्धवाद्य)
४ कांस्य (मजीरा)	१० उत्सववाद्य,
५ काहला (नगाडा)	११ वेणु,
६ कांस्यतालान्विाद्य,	१२ वीणा आदि।

भोजन

राजतरंगिणी के प्रारम्भिक तरङ्ग मे लिखा है कि यहाँ पर (कश्मीर म) हिम सदृश शीतल जल एव द्राक्षाफल आदि स्वर्ग स भी दुर्लभ पदार्थ साधारण वस्तु माने जाते है।

उसमे यह भी लिखा है कि शान्त द्वितीय का उचित पोषण करने के लिये जलपूर्ण वितस्ता नदी और सवसम्पत्प्रसविनीभूमि दोनों ही उपमाताओं का कार्य करने लगी।

बौद्ध धर्म की उन्नति के समय कश्मीरमण्डल धनधान्यपूर्ण था। धान चावल तथा पुआल का वर्णन अनेक बार आने से प्रतीत होता है कि चावल कश्मीरमण्डल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण खाद्यान्न था। यव के पुये तथा सत्तू के भोजन का भी उल्लेख किया गया है।

चावल के बाद यव गोधूम तथा चने की महत्ता को प्रतिपादित किया जा सकता है। कुछ लोग मांस मछली तथा लहसुन आदि खाते थे। द्राक्षाफल के अन्धकार भरे झुरमुट कश्मीरमण्डल का फलाढ्य बनाते थे। सुस्वादु द्राक्षाफल कश्मीर के प्रमुख खाद्यपदार्थों मे थे। लोठन और विग्रहराज को सकट के समय छिलकेदार जौ और कादो के पुये खाने पड़े थे।

भोज और क्षेमराज का तो पुआल की आच म अपनी ठंड दूर करनी पड़ी थी। जल प्लावन, हिमपात, अथवा दुर्भिक्ष आने से चावल आदि खाद्यान्नों का मूल्य बढ़ जाता था और उत्पादन वृद्धि होने पर इनका मूल्य घट जाता था।

महात्मा सुय्य ने भूमि का जल से उद्धार करके तथा विभिन्न नदियों को अपने वशीभूत करके कश्मीर मण्डल को हरे-भरे क्षेत्रों से परिपूर्ण कर दिया था।

उत्तम सुभिक्ष के समय जिस कश्मीर में एक खारी चावल का मूल्य दो सौ दीनार से कम न होता था, सुय्य के प्रताप से वहाँ एक खारी चावल का मूल्य केवल छत्तीस दीनार रह गया।

लौकिक सम्वत् ३९९२ (९१६ ई०) के भयंकर अकाल में एक खारी चावल का मूल्य एक हजार दीनार हो गया। महात्मा सुय्य के पहले होने वाले जलप्लावन मे चावल का यही मूल्य हो गया था।

आर्थिक जीवन

प्राचीन काल से आध्यात्मिक जीवन ही भारतीय जीवन का आदर्श एवं लक्ष्य रहा है, फिर भी आर्थिक सफलता का जीवन मे विशेष महत्व है। वर्ग चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का लाभ मानव जीवन का सर्वोपरि उद्देश्य है। अर्थ के अभाव मे धर्म और काम की प्राप्ति असम्भव है। अर्थ भले ही जीवन का चरम लक्ष्य न हो परन्तु उस लक्ष्य को लाभ करने का एक साधन अवश्य है। आर्थिक जीवन के अन्तर्गत आजीविका के साधन, अधिकार और स्वामित्व, कृषि-कर्म, अनाज, ऋतु, सिंचाई, पशुपालनादि उद्यम विभिन्न प्रकार के व्यापार, सिक्के, ऋण इत्यादि आते हैं।

राजतरङ्गिणी के प्रारम्भिक तीन तरङ्गों में वर्णित आर्थिक जीवन की सभी व्यवस्थायें मनुस्मृति के आधार पर थीं, परन्तु कालान्तर मे सभी व्यवस्थाओं मे न्यूनाधिक परिवर्तन हो गये। कश्मीर मे कृषि आजीविका का प्रधान साधन था। पशुपालन भी एक स्वतन्त्र आजीविका का साधन था।

वैश्य लोग वाणिज्य और व्यापार करते थे। धरोहर गिरवी रखना भूमि गिरवी रखना, ऋण देना, भूमि का किराया लेना आदि धनार्जन के साधन थे। ब्राह्मण लोग शिक्षणकार्य, धार्मिक कृत्य, यज्ञादि सम्पन्न करा कर दान-दक्षिणादि से जीवन यापन करते थे। कुछ ब्राह्मण राजाओं का मन्त्रित्व भी करते थे।

क्षत्रिय लोग युद्ध, राष्ट्ररक्षा, राज्यशासन आदि के बदले धन प्राप्त कर जीवनयापन करते थे। शूद्र लोग शारीरिक परिश्रम तथा सेवा कार्य के लिये जीवन यापनार्थ धन पाते थे।

इन उपर्युक्त वर्णों की अलग-अलग श्रेणियाँ बनी हुई थीं। ब्राह्मणों की ब्राह्मपरिषद् सर्वाधिक शक्तिशाली सभा थी। एकांगों तन्त्रियों तथा पदातियों के संघ बने हुये थे। इन संघ-संगठनों का बड़ा प्रभाव था। ब्राह्म-परिषद् तो राजा का चुनने का अधिकार रखती थी। एकांग आदि के संघ राज्यक्रान्तियों को कराने में समर्थ थे।

कभी-कभी कुछ व्यक्ति चोरी, वचना, चोरबाजारी आदि से सम्पत्ति का अर्जन करते थे, परन्तु ये साधन त्याज्य एव राज्य की ओर से दण्डनीय थे।

राज्य की भूमि पर लगाये गये करों तथा राजस्व से प्राप्त धन कश्मीर के वशपरम्परागत राजतन्त्र मे राजा की सम्पत्ति होती थी। राजद्रोह करने वाले व्यक्ति की सम्पत्ति राजा की सम्पत्ति हो जाती थी। पिता की मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य, गृह आदि का अधिकारी बनता था। परन्तु यदि ज्येष्ठ पुत्र अयोग्य हो तो मन्त्रिपरिषद् किसी अन्य वशज या कनिष्ठ पुत्र को राज्याधिकारी घोषित कर सकती थी और उसका निर्णय सर्वमान्य होता था। ब्राह्मणों को दिये हुए दान दक्षिणा, उपहार अपहार पर उन्हीं का स्वामित्व होता था। युद्ध में विजय से प्राप्त सम्पत्ति का अधिकारी विजेता होता था। कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि से प्राप्त सम्पत्ति पर वैश्यों का और श्रम तथा सेवा से प्राप्त धन पर शूद्रों का अधिकार था।

कृषि

कश्मीरमण्डल मे चावल, यव कोदो, मूंग आदि खाद्यान्न और द्राक्षाफल आदि फल कश्मीर की सम्पत्ति थे। विभिन्न स्थानों पर मनाविर अन्नक्षेत्र अतिथियों के भोजन के साधन थे। कभी-कभी हिमपात, जल-प्लावन, दुर्भिक्ष आदि से अन्न का मूल्य बढ़ जाता था। उत्पादन की वृद्धि होने से अन्न का मूल्य घट जाता था। द्राक्षाफल के बगीचा के झुरमुट उन्हें निविड अन्धकार से परिपूर्ण किये रहते थे।[1]

कश्मीर भूमि अनेक वनों से परिपूर्ण थी। भूमि के उत्पादन की वृद्धि के लिए विष्ठा की खाद डाली जाती थी।

कृषि-क्षेत्रों की सिंचाई के साधन अच्छे थे। रहट के घटीयन्त्र, वशीभूत नदियाँ तथा जल में पाषाणसेतु का निर्माण कश्मीर को उर्वर बनाने मे सहायक हुए।

राजा प्रवरसेन ने निर्मल जल से भरी हुई सुन्दर नहरों का निर्माण करवाया था। रिल्हण के छोटे भाई सुमना ने वितस्ता नदी में कनकवाहिनी नामक एक नहर निकलवायी थी।

विभिन्न व्यक्तियों द्वारा गोशालाओं का निर्माण कश्मीर मण्डल मे गोधन के प्राचुर्य को सिद्ध करता है। गोधन के अतिरिक्त गज, अश्व, महिष, अज (बकरो), भेड़ों आदि का उल्लेख भी राजतरंगिणी में आया है। कुत्ते, बिल्ली, श्येन (बाज) आदि को लोग मनोरंजन के लिए पालते थे। गो, महिषी तथा अजाएँ दूध के लिए, भेड़ें ऊन के लिए तथा अज मास के लिए पाले जाते थे।

मृगया भी मनोरजन के साथ-साथ मृग-चर्म व मास के लिये की जाती थी।

१—राजतरङ्गिणी, ८/१४१०।

पक्षियो तथा मछलियों का शिकार मास के लिये किया जाता था ।

अन्य उद्यमो मे इमारती लकडी का काम, खनिज पदार्थों ईंट, पत्थर का काम होता था । कुम्हार लोग खिलौने, घट इत्यादि बनाते थे । प्रसिद्ध शिल्पी भवन, विहार, मन्दिर व मूर्तियो की निर्माणकला मे दक्ष थे । बढई और लुहार क्रमश लकडी तथा लोहे के सामान हसन्तिका (अगीठी) जैसे रथ, पालकी, नौका, कृषियन्त्र, शस्त्रास्त्र आदि बनाते थे ।

सिंहासन, आभूषण आदि बनाने को स्वर्णकार रहते थे । चरखे, करघे तथा भरनियो से सूत व वस्त्रो का निर्माण होता था । दरजी लोग परिधान वस्त्र जैसे कचुकी आदि अन्य वस्त्र जैसे तिरस्करिणी (पर्दा), चदोवा (चादनी, शामियाना) आदि बनाते थे । चमकार लोग पदत्राण ही न बनाते थे, वे मृगचम मशक, अश्वो के साज सामान वाद्ययन्त्रों तथा कृषियन्त्रों के बनाने मे भी सहायता करते थे । इनके अतिरिक्त रत्नादि के लिये जौहरी, कम्बल बुनने वाले बुनकर, ताड के पखे बनाने वाले, मदिरा बनाने वाल आदि अपने उद्यमो से औद्योगिक क्षेत्र को समृद्ध किये हुये थे । कश्मीर की व्यापारिक स्थिति अच्छी थी । आन्तरिक व्यापार के अतिरिक्त विदेशो स भी व्यापार सम्बन्ध सुदृढ हो चुके थे । आन्तरिक व्यापार स्थल व जलमार्ग से होता था । *आन्तरिक व्यापार के लिए हट्टें (बाजार) लगायी* जाती थी । राजतरंगिणी मे पशुहट्ट एव साधारण हट्टो का उल्लेख किया गया है । राजा ललितादित्य की रानी कमलावती ने कमलाहट्ट नामक बाजार लगवाया था । बाजारो मे तौलनाप से क्रय-विक्रय होता था ।

हिमपात, दुर्भिक्ष, जलप्लावन के समय जब अन्नादि की कमी हो जाती थी तो लोग भ्रष्टाचार, चारबाजारी आदि से धनार्जन करते थे । लौकिक सम्वत ३९९२ के अकाल मे तन्त्रियो के नाम से दी हुई हुण्डियो को विपन्नावस्था म पडी प्रजा को देखकर जो व्यक्ति अधिक स अधिक धन वसूल करता था, वही राज्य के मन्त्रिपद पर रह सकता था । उस समय राजे भी तन्त्रियों स हुण्डी ले-लेकर अपना उदरपोषण करते थे ।

नदियो मे नौकाओ के द्वारा भी व्यापार होता था । कुछ लोग अन्न के अतिरिक्त काष्ठ, रत्न, अश्व, वफ आदि का व्यापार करते थे । अश्वो और सुन्दरियो, रत्नों तथा सेवको का क्रय-विक्रय विदेशो से होता था । सुन्दरी बालिकाओ का व्यापार टर्की देश के व्यापारी तथा अश्वो का व्यापार कान्धार व दर्वाभिसार प्रान्तो से होता था । राजा कलश के राज्यकाल में सेल्लपुर निवासी नयन के पुत्र जयक न दूर-दूर के प्रदेशो मे अश्व तथा अन्यान्य पण्य वस्तुएँ बेचकर कुबेर स स्पर्धा करने वाली विपुल सम्पदा एकत्र कर ली थी ।

रानी सूयमती ने एक शिवलिंग सत्तर लाख दीनार म एक टक्कदेशीय

व्यापारी के हाथ बेंच दिया ।

राजा शङ्करवर्मा के राज्यकाल में परिहासपुर की ख्याति के मूलकारण दो व्यवसाय थे—

१ कपड़े बुनने का कारखाना और,

२ पशुओं के क्रय विक्रय की हाट ।

इन दोनों व्यवसायों को राजा ने शङ्करपुर में भी चालू किया ।

उपर्युक्त व्यापारों में सिक्कों का उपयोग किया जाता था । ये सिक्के अधिकतर स्वर्ण व रजत के होते थे । व ताम्र के भी बनाये जाते थे । राजा तोरमाण ने 'बालाहत' नामक प्राचीन सिक्कों का प्रचलन बन्द करके अपने प्रभाव से 'दीनार' नामक सिक्का चलाया था ।

राजा मातृगुप्त ने प्रचलित सिक्के के स्थान पर करम्भक नामक स्वर्णमुद्रा का प्रचलन कर दिया । महापद्म नामक नागराज ने राजा जयापीड को एक ताम्र भवन बतलाया था जिससे राजा ने बहुत-सा तांबा निकलवाकर निजनामांकित एक कम सौ करोड़ दीनार नामक सिक्के ढलवाये थे । राजा ललितादित्य ने ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राओं के अर्पण से दिग्विजय के पश्चात् प्रायश्चित किया था । भुखार देश निवासी महान् रसशास्त्री रासायनिक प्रयोगों के द्वारा स्वर्ण बनाकर राजकोष को स्वर्ण सम्पन्न बनाये रखता था । वह विशेष प्रकार की मणियों के प्रयोग से भी सुपरिचित था । राजा हर्षदेव ने दाक्षिणात्य पद्धति के अनुसार अपने राज्य में सोनाचार टंक (सिक्के) चलाये थे । उसके राज्य में लेन-देन का सारा व्यवहार सोने-चाँदी के दीनारों से ही होता था । तांबे के सिक्कों का उपयोग बहुत कम किया जाता था ।

राजा जयापीड ने अपने नाम की मुद्रा पर 'श्रीजयापीडदेवस्य' खुदवा कर प्रचलित कराया था । राजा कलश ने हर्ष की समस्त धनराशि पर उसके नाम की सील-मुहर लगवा कर अलग रख दिया था । कान्द्रेश्वर मल्लार्जुन से धन वसूल करने के लिये सब कागज पत्रों पर अपनी सिन्दूरी मुहर लगवाता था ।

कश्मीर के कतिपय राजे बड़े ही अपव्ययी थे । इनमें राजा अनन्तदेव तथा सुस्सल के नाम उल्लेखनीय हैं । राजा अनन्तदेव ने पद्मराज नामक तमोली से प्रचुर धन ऋणरूप में ले रखा था । बदले में उसने राजमुकुट और राजसिंहासन गिरवी रख दिये थे ।

राजा कलश के सर्वाधिकारी जयानन्द ने पैदल सैनिकों का संग्रह करने के लिए अयोग्य धनिकों से ऋण लिया था । राजा यशस्कर के राज्यकाल में एक धनी व्यापारी ने अपनी सम्पत्ति बेचकर ऋण चुकाया था । इनसे पता चलता है कि कश्मीर में ब्याज पर ऋण का आदान-प्रदान हुआ करता था ।

विविध-कलायें

कश्मीरमण्डल शिक्षा तथा ज्ञान का प्रसिद्ध केन्द्र था। उसमें बड़े-बड़े विद्या-भवन बने हुये थे। राजा यशस्कर ने विश्वासपुर में विद्यार्थियों के लिए एक विद्या-मठ का निर्माण कराया था।[1] उसका पिता कामदेव मेरुवर्धन नामक मन्त्री के यहाँ अध्यापक था।[2]

बौद्ध धर्म के पतन के अनन्तर हिन्दू धर्म पर बौद्धों तथा जैनों की मूर्ति-पूजा का गम्भीर प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप भारतीय वास्तुकला, स्थापत्यकला तथा मूर्तिकला के क्षेत्र में एक नवोन्मेष का स्फुरण हुआ। कश्मीरमण्डल में भी नाना प्रकार के मन्दिरों, विहारों तथा स्तूपों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ। कश्मीर के प्रायः सभी राजे ललितकलाप्रेमी थे। वे उदारमना भी थे। निर्माणकार्यों में उन्होंने सभी धर्मों से सम्बद्ध निर्माण किये। अधिकतर राजे शैव थे। उन्होंने शैव सम्प्रदाय सम्बन्धी मन्दिरों, प्रतिमाओं, लिंगों, स्वर्णछत्रों, स्वर्ण निर्मित कलशों, घटिकाओं, त्रिशूलों, कटोरों और प्रासादों का निर्माण कराया। यही नहीं, अनेक चैत्यों, विहारों, स्तम्भों, प्राकारों, मठों, महलों, यूपों, मातृचक्रों, बुद्धमूर्तियों, मार्तण्ड, देवी, स्वामिकार्तिकेय की प्रतिमाओं, जिनदेव की मूर्तियों, क्रीडारामों तथा क्रीडाक्षेत्रों, स्तूपों, सेतुओं, नहरों, मण्डपों, प्रपाओं, छात्रशालों स्नानकोष्ठों, उद्यानों, सरोवरों आदि का निर्माण कराकर वास्तुकला एवं स्थापत्यकला के भव्य निदर्शन प्रस्तुत किये गये थे। राजाओं ने ही नहीं, उनके आश्रितों, रानियों, अधिकारियों, सम्बन्धियों तथा सेवकों ने भी ये निर्माण कार्य करवाये। उन्होंने अनेक भवनों, ग्रामों तथा नगरों का भी निर्माण कराया था। लव नामक राजा ने ८४ लाख पत्थर के मकान बनवाकर लोलोर नगर बसाया था। राजा अशोक ने अनेक स्तूप, एक जैन मन्दिर तथा दो प्रासाद बनवाये थे। राजा जलौक ने गुद्द नामक सेतु का निर्माण कराया था। हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क ने अनेक मठों एवं चैत्यों का निर्माण कराया। राजा मेघवाहन तथा उसकी रानियों ने अनेक मठों व विशाल विहारों का निर्माण कराया था। राजा प्रवरसेन ने अनेक प्रकार के निर्माण कार्य सम्पन्न किये थे। उसके सम्बन्धियों व मन्त्रियों ने प्रसिद्ध निर्माण कार्य किये। राजा रणादित्य व उसकी रानी रणारम्भा ने मठ, मन्दिर, मण्डप व एक आरोग्यशाला बनवाई। इसी प्रकार राजा ललितादित्य, राजा जयापीड, राजा अवन्तिवर्मा, राजा यशस्कर, राजा अनन्तदेव, राजा उच्चल, राजा सिंहदेव आदि ने अनेकानेक निर्माण कार्य सम्पादित किये। इनके आश्रितों ने भी निर्माणकार्यों को कराकर अपनी कलाप्रियता तथा धार्मिक प्रवृत्ति का परिचय दिया। राजा जयसिंह की धार्मिकता के

१–राजतरङ्गिणी, ६/८७, २–वही, ५/४७० ।

प्रभाव से एकमात्र बुद्ध की आजीविका वाले लोग भी पुण्यकर्मा बन गये थे, इनमें कमलिया के भाई सगिया, मेतापनि उदय की पत्नी चिन्ता अलङ्कार का सगा भाई मखक, रिल्हण तथा उसका अनुज सुमना उल्लेखनीय हैं।

कश्मीर मण्डल में विभिन्न राजाओं ने मूर्तियों का निर्माण तथा स्थापना कराई थी। ये मूर्तियाँ विभिन्न देवी देवताओं की थी और वे स्वर्ण, रजत, ताम्र तथा प्रस्तर की निर्मित कराई गई थी।

राजा ललितादित्य ने चौरासी हजार तोले सोने की जिनमूर्ति, इतने ही तोले चांदी से श्री परिहास केशव की मूर्ति और इतने ही सर ताम्बे से भगवान् बुद्ध की आकाश-व्यापी विशाल मूर्ति को बनवाया था। एक समान नागर से उसने इन मूर्तियों के लिए उतने ही श्रेष्ठ, उतने ही विशाल और उतने ही सुन्दर चैत्य (मन्दिर) बनवाये थे। इस प्रकार परिहासकेशव, मुक्ताकेशव, महावराह, जिनदेव तथा बुद्ध भगवान इन पाँचों निर्माणों की लागत समान थी। इस राजा की रानी तथा आश्रितों ने भी अनेक मूर्तियों की स्थापना की। राजा जयसिंह की रानियों तथा आश्रितों ने भी अनेक मूर्तियों की स्थापना की थी। दार्वाभिसार नामक राजा के सन्धि विग्रहिक एवं पुण्यकर्मा जट्ट ने यष्टमूर्ति की स्थापना की थी।

राजा जयसिंह पुत्र पुत्री के विवाह तथा देव प्रतिष्ठा आदि शुभकार्यों में दिन खोल कर सामग्रीदान से सहायता करता था। वह नित्य राज्यकार्य में और तत्वज्ञानियों के साथ शिवपूजन में व्यस्त रहता था।

कश्मीरमण्डल में प्रारम्भ से लेकर महाकवि कल्हण के समय तक अनेक प्रकार के विज्ञानों, शास्त्रों तथा कलाविज्ञों की अविच्छिन्न परम्परा रही थी। इनमें से कुछ का उल्लेख किया जा रहा है—

१ राजा जलौक—नाटिवेधी रसमिद्धि का ज्ञाता (१–११०)
२ चन्द्राचार्य—वैयाकरण (चान्द्रव्याकरण का रचयिता) (१–१७६)
३ राजा वसुनन्द—कामशास्त्रकार (राजतरङ्गिणी—२/३३१)
४ चन्दक—नाटककार (राजतरङ्गिणी, २/१६)
५ राजा मातृगुप्त—नाटककार तथा शकुन-शास्त्रज्ञ (३/२२२)
६ अश्वपाद—सिद्ध (३–२६७) व मायाविद (३–३६६)
७ मेण्ठ कवि—कवि (३–२६२), जय शिल्पी (३–३५१)
८ रणादित्य—द्यूतकार (पूर्वजन्म का) (३–३९२)
९ वाक्पतिराज—महाकवि (४–१४४)
१० भवभूति—महाकवि (४–१४४)
११ चङ्कुण का अग्रज—रसशास्त्री (स्वर्ण निर्माण) (४–२४६)
१२ राजा ललितादित्य—अश्वशास्त्रज्ञ (४–२६५)

१३ राजा जयापीड—नाट्यशास्त्रज्ञ व नृत्यगीतकनाममर्मज्ञ (४–४२२)
१४ क्षीरस्वामी—वैयाकरण (४–४८९)
१५ दामोदरगुप्त—कुट्टनीमत नामक कामशास्त्र ग्रन्थ का रचयिता (४–४९६)
१६ मनोरथ, (
१७ शङ्खदत्त (
१८ चटक व (कवि (४–४९७)
१९ सन्धिमान् (
२० शकुक—महाकाव्यकार 'भुवनाभ्युदय' का प्रणेता (४–७०५)
२१ रामट—वैयाकरण, व्याख्याता (५–२९)
२२ मुक्ताकण, (
२३ शिवस्वामी, (कवि व शास्त्रज्ञ (५–३४)
२४ आनन्दवर्धन, (
२५ रत्नाकर (
२६ सुय्य—शिल्पज्ञ (५–७८), भूमिकनाममज्ञ (५/१११–११२),
सेतुकलामर्मज्ञ (५–९१)
२७ नायक—चतुर्विद्या विशारद (५–१५९)
२८ राजा क्षेमगुप्त—कुन्तविद्या (भाले की लक्ष्यवेध विद्या) (६–१८०)
२९ देवनलय—कौट्टिल्यकाय (६–३२४)
३० राजा उन्मत्त अवन्ति वर्मा—शस्त्रविद्याभ्यास (८–४४०)
३१ विडालवणिक—नास्तिक (७/२७९–२८०)
३२ राजा कलश—उपागगीतव्यसन (७–६०६)
३३ राजा हर्ष—स्वरोदयशास्त्र (७–७९६) गीतकाव्य, सगीतमयकाव्य (७–९४२)
३४ विल्हण—महाकवि (७/९३५–९३७)
३५ विजयपाल, (
३६ धम्मट, (श्येनपालन (७/५८० तथा ७/१०४६)
३७ कनक—सगीत विद्या व गायक (७–१११७)
३८ भीमनायक—आनोपविद (७–१११६)
३९ जयराज—शस्त्रज्ञान, युद्धज्ञान (७–१०२२)
४० राजा भिक्षाचर—पासे खेलना (८–१७४०)
४१ कुन्तराज—व्यायामविद्या (८–२३२८)
४२ चित्ररथ—द्यूत (८–२३५७)
कुछ अन्य कलाओं का भी निम्नवत् नाम आता है—
१ चित्रकारी (८–१५७८)

२ नाट्यकला (२–१५६ व ८–३१३९)
३ ज्योतिष (३–४४० व ८–१०३)
४ शल्यक्रिया (४–६४५)
५ पुत्तलीविद्या (४–६६३)
६ वैद्यक (८/८५६ व ८/११२०)
७ स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, लक्षणशास्त्र तथा गणितशास्त्र (८–१०३)
८ योगविद्या व प्राणायामशिक्षा (८–७४)
९ ऐन्द्रजालिक क्रिया (८–८९)
१० नृत्यकला (४/२६९–२७०)
११ नृत्यगानकला (१–१५१) आदि

आमोद-प्रमोद के साधन

कश्मीरमण्डल के प्रमुख आमोद प्रमोद के साधनों में गायन, वादन तथा नृत्य थे। इनका नाटयशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजतरंगिणी में इनका अनेक बार उल्लेख आया है। राजा जलौक ने भगवान् ज्येष्ठेश की पूजा के लिए नृत्य करने के लिए नृत्य गीत-कुशल अन्तःपुर की सौ स्त्रियाँ नियुक्त की थीं। राजा जयापीड जो नृत्य गीतादि कलाओं का ममज्ञ था गौडाधिपति राजा जयन्त के नगर में कार्तिकेय के मंदिर में संगीत सुनने तथा नृत्य देखने गया था।

[illegible] कुछ देवदासियाँ नृत्य-गीत के द्वारा जीविका-निर्वाह करती थीं और प्रजाजनों का मनोरंजन करती थीं।

राजा कलश ने उपभोग [illegible] व्यसन तथा उच्चकोटि की नर्तकियों का संग्रह इन दोनों प्रथाओं का प्रचलन किया था।

राजा हर्ष उत्कृष्ट कोटि का गायक था। वह राजसभा में गायन गाकर अपने मधुरगानों से राजा (कलश) को प्रसन्न कर देता था। वह स्वरोदयशास्त्र का पूर्ण ज्ञान रखता था। संगीतमय काव्य के निर्माण में निपुण हर्षदेव के गीत-काव्य को सुनकर उसके शत्रु तक आँसू बरसाने लगते थे। [illegible] नामक गायक राजा हर्ष का शिष्य था और बड़े परिश्रम से उसने संगीतशास्त्र की साधना की थी।

तुकबन्दी करने वाला कवि मदिन नाट्य-शाला में भड़ैती का काम करके जनता का मनोरंजन करता था।

वाद्यवृन्द के तीनों प्रकार के बाजा—आनद्ध तत तथा सुषिर का वर्णन राजतरङ्गिणी में आया है। इनका वर्णन सामाजिक-दशा-वर्णन वाले स्थल में इसी अध्याय में द्रष्टव्य है। इनसे जनता का पर्याप्त मनोरंजन होता था।

पुत्तलिका नृत्य भी आमोद-प्रमोद का एक साधन था। इसका उल्लेख महाकवि कल्हण ने किया है।

राजा मिहिरकुल हत्या तथा वध को मनोरंजन का साधन समझता था। चिंघाड़ते हुए हाथियों का आर्तनाद उसे हर्षातिरेक से रोमांचित कर देता था। राजा तारापीड ने पुत्र के जन्म के समय कबन्ध नृत्य कराकर सुख पाया था। राजा जयसिंह वेणु-वीणा के स्थान पर द्वैषहीन विद्वानों के सयुक्तिक वाद-विवाद अधिक पसन्द करता था। विद्वानों के साथ शास्त्र चर्चा करके राजा हर्ष रातें बिता देता था।

राजा प्रवरसेन ने लोगों के लिए क्रीडाक्षेत्र बनवाये थे। उनके नगर के मध्य में क्रीडापर्वत विद्यमान था।

आखेट, द्यूतक्रीडा, चित्रकारी, शतरंज, पासे के खेल, ऐन्द्रजालिक क्रियाओं आदि का समावेश आमोद-प्रमोद के साधनों में किया जा सकता है।

नैतिकता

महाकवि कल्हण ने अपने ग्रन्थ राजतरङ्गिणी में निष्पक्ष रूप से नैतिक आदर्शों का प्रतिपादन किया है। उन्होंने दोष को दोष और गुण को गुण माना है। उन्होंने प्रजा को कष्ट देने वाले राजाओं की कठोर आलोचना की है, साथ ही प्रजापालक राजाओं की प्रशंसा की है। राजा हर्ष जैसे तेजस्वी राजा के शोचनीय अन्त का कारण उन्होंने उसकी विचारहीनता तथा उसके दुष्ट मन्त्रियों को माना है। उन्होंने सेवकों की ईमानदारी तथा सच्ची सेवा की बारम्बार प्रशंसा की है। स्त्रियों के सतीत्व तथा पति परायणता को उन्होंने सर्वोपरि माना है। ब्राह्मणों की उचित प्रशंसा करने के साथ-साथ उन्होंने उनकी कठोर आलोचना तथा भर्त्सना भी की है। राजा के राज्याभिषेक का नैतिक महत्त्व है। सभी तीर्थों के जल से अभिषेक (स्नान) राजा के बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों को शुद्ध करता है और ब्राह्मणों द्वारा किया गया, तिलक सभी प्रजाजन के समर्थन का प्रतीक समझा जाता है। ब्राह्मपरिषद् के ब्राह्मणों द्वारा राजा यशस्करदेव का राज्याभिषेक इसी तथ्य की पुष्टि करता है।[1]

राजाओं के द्वारा सम्पादित प्रजाहित के समस्त कार्य उनकी उन्नति के कारण बनते हैं, जबकि उनके दुष्कर्मों का अन्त सदैव बुरा होता है। महाकवि कल्हण पुण्य-कार्यों की सफलता को स्वीकार करते हैं। वह शुभाशुभ कर्मों की फलवत्ता पर अटूट विश्वास रखते हैं।

१—राजतरंगिणी ५/४७७।

चतुर्थ अध्याय

राजतरंगिणी तथा राजनीति

भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से राज्य व्यवस्था विद्यमान रही है। सुव्यवस्थित राजनैतिक अवस्था का प्रमाण हमें ऋग्वेद में मिलता है। राजा का कर्तव्य प्रजा का कल्याण होता था। प्रजा की समृद्धि पर ही राजा की समृद्धि आश्रित रहती थी–

विशि राजा प्रतिष्ठित (यजुर्वेद २०/९)

यही आदर्श अग्निपुराण में भी प्रतिपादित किया गया है–

राजा प्रकृतिरंजनात (२१८,२–३)

महाकवि कल्हण ने राजा-प्रजा के सम्बन्ध का सुन्दर चित्रण किया है। राजा तृतीय गोनन्द के द्वारा नीलमत पुराणोक्त विधि से धार्मिक कार्य प्रारम्भ कर देने से बौद्धबाधा और हिमबाधा दोनों का शमन हो गया था, इसी का सन्दर्भ देकर महाकवि ने लिखा है–

कालेकाले प्रजापुण्यैः सम्भवन्ति महीभुजः।
भूमण्डलस्य क्रियते दुरोत्सन्नस्य योजनम् ॥ १–१८७ ॥
ये प्रजापीडनपरास्ते विनश्यन्ति सान्वयाः।
नष्टं तु ये योजयेयुस्तेषां वशानुगा श्रियः ॥ १–१८८ ॥

राजा तुञ्जीन ने दुर्भिक्षग्रस्त प्रजा के भीषण विनाश को देखकर अपनी रानी वाक्पुष्टा से कहा था–

तदेष गतिशोपायो जुहोमि ज्वलने तनुम्।
न तु दृष्टुं समर्थोऽस्मि प्रजानां नाशमीदृशम् ॥ २–४१ ॥
धन्यास्ते पृथिवीपालाः सुखं ये निशि शेरते।
पौरान्पुत्रानिव पुरः सर्वतो वीक्ष्य निर्वृतान् ॥ २–४२ ॥

रानी वाक्पुष्टा ने राजा का व्रत बतलाते हुये उत्तर दिया था–

पत्यौ भक्तिव्रतं स्त्रीणामद्रोहो मन्त्रिणां व्रतम्।
प्रजानुपालनऽनन्यमनता भूभृतां व्रतम् ॥ २–४८ ॥

'राजा' शब्द के उपयुक्त अर्थ को सार्थक करने वाला कोई राजा हर्ष के शासनकाल में नहीं था। राजा ने राज्य के सब लोगों को राजोचित वेष धारण करने की स्वतन्त्रता दे दी थी।[1]

१–राजतरङ्गिणी ७–९२४

इस प्रकार उसने अपनी विशाल मनोवृत्ति का परिचय दिया था। राजा हर्ष ने अपने मूर्खतापूर्ण कार्यों से जब कश्मीरमण्डल में अनर्थों की परम्परा प्रसूत कर दी तो वह शोकमग्न होकर निम्नलिखित आर्ष श्लोक का बार-बार मनन कर रहा था—

प्रजापीडनसन्तापात्समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणान्नादग्ध्वा विनिवर्तते ।। ७–१५८२ ।।

और भी—

सपत्नसादहितसायदिवा वह निसादभवेत् ।
द्रविणं क्षोणिपालानां जनतोपद्रवार्जितम् ।। ८–१९५१ ।।

इससे पता चलता है कि राजा की समृद्धि प्रजा की समृद्धि पर आश्रित थी। जिन-जिन राजाओं ने प्रजा को सताया और लूटा उनका दुःखद अन्त हुआ। ऐसे राजाओं में जयापीड, राजा शङ्करवर्मा, राजा कलश, राजा हर्ष आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जिन राजाओं ने प्रजा की समृद्धि में अपनी समृद्धि समझी उनके शासनकालों में सत्ययुग का आविर्भाव-सा हो गया। ऐसे राजाओं में मेघवाहन, प्रवरसेन, रणादित्य, चन्द्रापीड, ललितादित्य, अवन्तिवर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कश्मीरमण्डल के राजे या तो प्रजा द्वारा चुने हुये होते थे या वे परम्परागत होते थे। किसी राजवंश की परम्परा समाप्त होने पर प्रजाजन अपने अभिलषित जन को राज्याधिकार देते थे। ब्राह्मणों की ब्राह्मणपरिषदें राजाओं के चयन में अपना विशिष्ट स्थान रखती थीं। विक्रमादित्यप्रताप प्रतापादित्य, मेघवाहन, दुर्लभवर्धन, यशस्करदेव आदि राजाओं का चयन प्रजाजनों ने ही किया था।

ग्रामों का शासन पञ्चायतें करती थीं। पञ्चायतों के पञ्च जनता द्वारा चुने जाते थे। राज्य की ओर से ग्रामस्कन्द (जमींदार) और ग्रामकायस्थ (पटवारी) नियुक्त किये जाते थे।

शासनकार्य में राजा की सहायता के लिये एक मन्त्रिपरिषद् होती थी। मन्त्रिपरिषद् का एक प्रधान मन्त्री होता था। प्रधान मन्त्री अधिकतर ब्राह्मण होता था।

मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या विभिन्न राजाओं के शासनकालों में भिन्न-भिन्न थी। राज्य की आवश्यकतानुसार उनकी संख्या घटाई-बढ़ाई जा सकती थी। घटाने-बढ़ाने का अधिकार राजा का होता था, क्योंकि वही मन्त्रिपरिषद् का अध्यक्ष होता था। समय पड़ने पर मन्त्री लोग राजाओं को उचित सम्मति देते थे जैसे राजा हर्ष को मन्त्रियों की शिक्षा। कभी-कभी राजा का असाधारण ज्ञान मन्त्रियों के ज्ञान को तिरोहित कर देता था। राजा मेघवाहन अपने मन्त्रियों को शिक्षा दे सकता था। वे (मन्त्री) उसे नैतिक शिक्षा देने की सामर्थ्य न रखते थे। अन्य मन्त्रियों में

विदेशमन्त्री, गृहमन्त्री, अर्थमंत्री, पवविरुद्धयुक्तमन्त्रियों आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

मन्त्रिपरिषद् के अतिरिक्त शासन को सुचारुरूप से चलाने के लिए अनेक विभाग तथा उनके अध्यक्ष थे। इनमें से निम्नलिखित मुख्य थे–

१ धर्माध्यक्ष, ३ कोषाध्यक्ष,
२ धनाध्यक्ष, ४ सेनाध्यक्ष,
५ राजदूत,
६ पुरोहित तथा
७ ज्योतिषी।

इनके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार और भी अनेक विभागीय अध्यक्ष होते थे, जिनके नियन्त्रण में सम्पूर्ण राज्य की व्यवस्था का संचालन सुचारुरूप से किया जाता था।

राजा जलौक ने उपर्युक्त सात अधिकारियों के स्थान पर अष्टादश कर्म-स्थान (कार्यविभाग) स्थापित किये और राजा युधिष्ठिर की भांति अपने राज्य का सुन्दर प्रबन्ध कर लिया।

कश्मीरमण्डल में विभिन्न अधिकारियों द्वारा शासन-व्यवस्था का संचालन होता था। उनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं–

१ धर्माध्यक्ष, १० व्यवस्थापक
२ न्यायाधीश, ११ दिविर
३ धनाध्यक्ष, १२ गजवर,
४ गणनाधिकारी, १३ भाटिक,
५ अश्वनायक १४ गृहकार्याधिकारी,
६ तन्त्ररक्षाधिकारी, १५ स्नपतश,
७ सान्धिविग्रहिक १६ राजानक,
८ प्रतिहार, १७ गजाधिकारी,
९ महाप्रतिहार, १८ पादाग्रपदाधिकारी,
१९ गुप्तचर, २८ द्वाराधीश
२० नगरपाल २९ सेतुपाल,
२१ दण्डनायक, ३० कोशागाररक्षक,
२२ द्वारपति ३१ विदेशमन्त्री,
२३ नगराधिकारी, ३२ धानक,
२४ सर्वाधिकारी, ३३ देवोत्पाटननायक,
२५ सन्तरी, ३४ पुरीपनायक,

२६ पत्रवाहक व
२७ सन्देशवाहक
३५ पटहवादक,
३६ प्रजापीडनाधिकारी,
३७ शस्त्रागाराधिकारी,
३८ ग्रामस्कन्द,
३९ ग्रामकायस्थ आदि ।

राजा ललितादित्य ने पाँच महाविरुदों का नूतन निर्माण किया था, जिन्हें राजवंश के ही लोग करते थे । ये पंचमहाविरुद थे—

१ महाप्रतीहारपीडा,
२ महासांधिविग्रह,
३ महाअश्वशाला,
४ महाभण्डागार तथा
५ महासाधनभाग ।

राजा यशस्करदेव के शासनकाल में ज्योतिषी, वैद्य, गुरु, अमात्य, पुरोहित, वकील, हाकिम एवं लेखक—इन अधिकारियों का उल्लेख किया गया है ।[1]

राज सभा में विट, चेटक, चारण, वन्दी इत्यादि रहा करते थे । सेवक, दासियों, धायों, याष्टिकों आदि का भी उल्लेख किया गया है ।

कभी-कभी राजा के मन्त्री तथा अन्य अधिकारी प्रबल हो जाया करते थे, जिससे कि राजाओं का शासनकाल स्वल्पकालीन हो जाया करता था । रानी सुगन्धादेवी के शासनकाल में राजा को भी अपने वश में रखने तथा अनुग्रह करने में समर्थ तन्त्रियों, पदातियों तथा एकांगों के बड़े-बड़े मंडल बने हुये थे । इनकी शक्ति इतनी प्रबल थी कि उस समय राजे क्षणभंगुर हुआ करते थे ।

दूरस्थित प्रान्तों का शासन राजकुमार अथवा युवराज करते थे । राजा उच्चल ने अपने अनुज सुस्सल को लोहर प्रान्त का शासक बनाया था । इनको मण्डलेश कहा जाता था ।

राज्य सीमाओं पर द्वारपति नियुक्त किये जाते थे । ये राजा के प्रियपात्र हुआ करते थे तथा ये पूर्णविश्वस्त होते थे । राजा हर्ष के राज्य काल में कल्हण का पिता चम्पक दरददेश का द्वारपति था । तदनन्तर उनको महामात्य बनाया गया था ।

कश्मीरमण्डल में शक्तिशाली सामन्तों के अनेक मंडल बने हुये थे । वे राजाओं को उनके शत्रुओं से मिल कर अपदस्थ करते थे । कभी-कभी तो एक ही वंश के राजाओं में भी पारस्परिक विद्रोह का बीज वपन करके द्वैराज्य की स्थिति उत्पन्न कर देते थे । राजा सुस्सल तथा राजा भिक्षाचर के मध्य वैमनस्य को उत्पन्न करके इन्हीं सामन्तों ने द्वैराज्य की स्थिति उपस्थित कर दी थी ।[2] लोहर प्रान्त के शासक

१—राजतरंगिणी, ६/१३, २—वही, ८/१०३७

लोठन तथा मल्लार्जुन के उत्थान-पतनों के लिए ये सामन्त उत्तरदायी थे। इन सामन्तों को तत्कालीन जाति के डामर की संज्ञा से अभिहित किया गया है।[1] इनके दो प्रधान मण्डल थे जिनको मडव राज्य के डामर तथा क्रमराज्य के डामर कहा जाता था।[2]

कश्मीरमण्डल के कुछ राजे बड़े नीतिकुशल तथा सदाचारी शासक थे। उनके शासनकाल में प्रजा ने सुख समृद्धि का उपभोग किया। कुछ राजे बड़े अत्याचारी थे। उनके शासनकाल में कश्मीरमण्डल में दुःख की विविध परम्पराओं का जन्म हुआ। उन्होंने अनेक अत्याचार किये यथा—

१ प्रजाधनापहरण
२ धन का अपव्यय
३ स्वकुलोच्छेद,
४ प्रजापीडन तथा
५ वध।

राजा हर्ष ने देवप्रतिमाओं का विध्वंस कराया और अनेक क्रूरतापूर्ण कार्य किये। फलस्वरूप उसका अन्त अत्यन्त दुःखद हुआ।[3] राजा तुजीन ने दुर्भिक्षग्रस्त प्रजा का पालन किया था जिससे कि अन्त में दुर्भिक्ष के साथ-साथ उसके शोक का भी अन्त हो गया।[4] कुछ राजे जैसे जयापीड आदि कायस्थ मुखापेक्षी थे। कायस्थों ने उसे ब्राह्मणों पर अत्याचार करने को प्रेरित किया, जिससे कि उसे ब्रह्मदण्ड के शाप का भागी होना पड़ा। राजा उच्चल ने कायस्थों का मूलोच्छेद कर डाला, क्योंकि उसे ऐतिहासिक नीति पर अपार श्रद्धा थी।

कश्मीरमण्डल के कुछ राजे अत्यन्त कूटनीतिज्ञ हुए हैं। रानी दिद्दा ने पुष्कल स्वर्णदान से ब्राह्मणों के अनशन को समाप्त करके उन्हें अपनी ओर मिला लिया था। यह सामनीति का उत्कृष्ट उदाहरण है। राजा उच्चल का कायस्थों का मूलोच्छेद दामनीति का सुन्दर निदर्शन है। नीतिज्ञ राजा उच्चल ने सामनीति का उपयोग करके दरदीश्वर को आक्रमण से पराङ्मुख कर दिया था। राजा जयसिंह ने विवाह-सन्धियाँ करके एक नवीन नीति का प्रवर्तन किया था। राज्य के संचालन कार्य पर नियुक्त बुद्धिमान् भीमादेव की दो कल्याणकारी शिक्षाओं को राजा उच्चल मन्त्र की तरह स्मरण रखता था। ये शिक्षायें थीं।

१ लोककल्याण के हेतु राज्य में भ्रमण तथा
२ विप्लव का सविलम्ब दमन।

१—कीथ, 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ १५९।
२—राजतरङ्गिणी, ७/१२४०, ३ वही, ७/१७१४, ४ वही, २/५४।

उसकी शासनशैली अल्पकाल में ही विख्यात हो गई थी, क्योंकि वह प्रजा-पालनकार्य में सतत जागरूक रहता था।

कश्मीरमण्डल के अधिकांश राजे वर्णाश्रमधर्म के पालन कराने में सदैव तत्पर रहते थे। ऐसे राजाओं में राजा जलौक, राजा तृतीय गोनन्द, राजा गोपादित्य, राजा यशस्करदेव आदि थे। राजा यशस्करदेव ने चक्रभानु नामक ब्राह्मण को किसी भीषण-अपराध के लिये धर्मशास्त्रोक्त विधि के अनुसार दण्ड दिया था।

राजा चन्द्रापीड ने एक मान्त्रिक को ब्रह्महत्या का अपराधी पाकर भी ब्राह्मण होने के कारण उसे प्राणदण्ड न दिया था। इन राजाओं के शासनकाल में सत्ययुग की-सी अवतारणा हो गई थी।

कश्मीर के कुछ राजे कौटिलीय अर्थशास्त्र की नीति पर श्रद्धा रखते थे। राजा यशस्करदेव की राज्य व्यवस्था प्रशंसनीय थी। राजा उच्चल की दण्डनीति सराहनीय थी।

महाकवि कल्हण ने दण्डविधान पर अपने विचार प्रकट किये हैं। उसने आगे लिखा है–

छिद्रान्तराणि सुलभानि सदैव हन्त पातालरन्ध्रसरणेरिव दण्डनीते ।
वह्नीभवन्भ्रमरमन्तरसप्रविष्टा यात्यप्रतक्यं नियमात्पतनं भवेद्वा ॥८–२९६३

कश्मीरमण्डल के राजाओं की अहिंसा तथा न्याय की अनेक कथायें राजतरङ्गिणी में लेखनीबद्ध की गई हैं बौद्धधर्म के प्रभाव से भागवत धर्म में अहिंसा का सिद्धान्त समादृत होने लगा था। राजा मेघवाहन, राजा चन्द्रापीड, राजा ललितादित्य, राजा यशस्करदेव की न्यायकथायें अत्यन्त मार्मिक तथा हृदयग्राही हैं।

कश्मीरमण्डल में अनेक कुप्रथाओं का प्रारम्भ अधिकार ईसा की छठवी शताब्दी के अन्त से हुआ। इनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है–

१ राजा प्रवरसेन ने वितस्ता नदी पर एक विशाल पुल निर्माण कराया। उसी समय से संसार में नावों द्वारा सेतुनिर्माण प्रथा प्रचलित हुई।

२ अनगलेखा के व्यभिचार ने स्त्रियों में व्यभिचार की परम्परा का सूत्रपात किया।

३ राजा चन्द्रापीड के आभिचारिकी क्रिया द्वारा वध से राजपुत्रों के आभिचारिकी क्रिया के द्वारा वध की प्रथा का प्रारम्भ हुआ।

४ कायस्थ अधिकारियों ने राजा जयापीड को प्रजापीडन के लिए प्रेरित किया, जिससे कि राजा लोभी हो गया। तभी से कश्मीर के राजे कायस्थमुखापेक्षी बन गये।

५ पापी और चाण्डाल भूमट के द्वारा राजा शम्भुवर्धन का वध हुआ।

पर बहुत बड़े कर लगा दिये और उनकी बिक्री की आय को स्वयं बलपूर्वक लेने लगा। उसने नये-नये अधिकारियों को नियुक्त करके चौंसठ देव-मन्दिरों का हस्तगत कर लिया। उनके ग्रामों का अपहरण कर लिया। इसी प्रकार राज्य कर्मचारियों के वार्षिक वेतन का तृतीयांश तौल-माप में कमी करके अत्यधिक मूल्य में अन्न-कम्बल आदि के रूप में देने लगा। बेगार के स्थान पर कर लेने की प्रथा का प्रारम्भ तभी से हुआ। इस कर-प्रथा का नाम रूढभारोढि था। इस प्रथा के कुल तेरह प्रकार थे। इसके अतिरिक्त ग्रामस्कन्द (जमींदार) और ग्रामकायस्थ (पटवारी) आदि कर्मचारियों के मासिक वेतन पर विविध दुःखदायी करों का भार लाद कर उसने ग्रामीण जनता को अतिशय निर्धन बना दिया। फिर उसने तौल-माप में कमी बेशी करके ग्रामदण्ड आदि नये-नये करों के द्वारा गृह-विभाग के खर्च के लिए धन सचय करना आरम्भ कर दिया। इस विभाग में पाँच दिविर और छठवां गजव नियुक्त हुआ, उसने गजसवाहकर भी लगाया था।

राजा जयापीड कायस्थों की प्रेरणा से इतना लोभी हो गया था कि उसके अत्याचारों से कृषकों की सारी कमाई राज्यसात् कर ली गई। लोभ के कारण नष्ट बुद्धि उस राजा को लूट में प्राप्त धन का स्वल्प भाग राज्यकोष में देकर शेष स्वयं हड़प लेने वाले कायस्थ अधिकारी हितचिन्तक दृष्टिगोचर होते थे। उसने तुलमूल्य नामक ग्राम ब्राह्मणों से छीन लिया। उसने ब्राह्मणों को प्राप्त अग्रहार का अपहरण कर लिया और अनेक ब्राह्मणों की अपहृत भूमि उसने न लौटायी।

राजा हर्ष ने लोभ के वशीभूत होकर देवमन्दिरों की सम्पत्ति का अपहरण कर लिया था। उस लोभी राजा ने पुराने राजाओं के द्वारा अर्पित सभी मंदिरों की आश्चर्यजनक एवं कल्पनातीत धनराशि लूट ली थी। फिर देवताओं की धातुनिर्मित मूर्तियों का भी उसने उत्पाटन कर दिया। उसके अर्थमन्त्री गौरक ने राजा की आज्ञा से देवमन्दिरों की सेवा-पूजा के लिये अर्पित ग्रामों का अपहरण किया।

राजा अनन्तदेव शाहीराजा के पुत्र रुद्रपाल को प्रतिदिन डेढ लाख दीनार देता था। राजा शंकरवर्मा भारिक लवट को दो हजार दीनार प्रतिदिन के हिसाब से वेतन देता था। राजा हर्ष ने कनक नामक गायक को एक लाख स्वर्ण दीनार पारितोषिकरूप में दिये थे।

कुछ राजे आय-व्यय का सावधानी के साथ देख-रेख करते थे। राजा कलश वैश्यों की भाँति गणना करने में चतुर था। अच्छे कार्य के लिये वह मुक्तहस्त से व्यय करता था। रत्नों का क्रय करते समय वह विधिवत् उनका स्वरूप देखता था। कोई भी जौहरी उसे ठग नहीं सकता था।

कुछ राजे अत्यन्त निर्बल होते थे। उनको वश में रखने वाले मन्त्री आदि

उनकी व्यय-व्यवस्था को देख-रेख करते थे। उत्पल ने राजा अजितापीड की स्वतन्त्र व्यय-व्यवस्था कर दी थी। राजा चक्रवर्मा दूसरे राजा से अधिक धन देने का विश्वास दिलाकर तन्त्रियों की कृपा से राज्यासन का अधिकारी बना था।

महाकवि कल्हण ने जनता को सताकर प्राप्त किये धन के विषय में स्पष्ट लिखा है कि ऐसा धन या तो शत्रु भोगते हैं, या अधिकारी हड़प लेते हैं अथवा अग्नि भस्म कर देती है। इस प्रकार का धन राजा जयापीड, राजा पंगु, राजा अनन्तदेव, राजा सुस्सल राजा हर्ष आदि ने संचित किया था।

राजा चन्द्रापीड अवन्तिवर्मा आदि के न्यायोपार्जित सम्पत्ति पर कभी भी आँच न आई।

न्यायव्यवस्था

कश्मीरमण्डल की न्यायव्यवस्था प्राचीन पौराणिक सिद्धान्तों की अनुवर्तिनी थी। कुछ राजाओं को छोड़कर प्रायः समस्त राजा अत्यन्त न्याय प्रिय थे। यहाँ के निवासी परलोक से डरते थे शत्रुओं से नहीं। पुण्यबल से ही कश्मीर पर विजय प्राप्त की जा सकती थी, शस्त्रबल से नहीं।

न्याय का उद्देश्य मानव की हिंसावृत्ति को रोकना होता है। अनेक राजाओं ने अपने शासनकाल में सम्पूर्ण राज्य में जीवहिंसा बन्द करा दी थी। राजा मेघवाहन ने प्राणिमात्र पर दया करने वाले बोधिसत्वों की महिमा को अपने गम्भीर तथा उदात्त चरित्र से तिरोहित कर दिया था। उसने कसाई आदि हिंसक कर्म से जीविकोपार्जन करने वाले लोगों को राज्यकोष से पुष्कल धन देकर पवित्र वृत्ति द्वारा जीविकार्जन करने योग्य बना दिया। साक्षात् जिनदेव के समान अहिंसक उस राजा के यज्ञ में पशुबलि के स्थान पर पिष्टपशु तथा घृतपशु से बलिदान का काम चलाया जाने लगा। उसकी अहिंसा सम्बन्धी न्याय कथायें अत्यन्त विश्रुत थी। राजा चन्द्रापीड की न्यायव्यवस्था राजा रामचन्द्र की न्यायव्यवस्था के समकक्ष थी। उसने अपने कार्यों से सतयुग की सी अवतारणा अपने राज्यकाल में कर दी थी।

राजा ललितादित्य की न्याय व्यवस्था कौटिलीय न्यायव्यवस्था के समान थी। उसका विचार था कि यदि राजा भी कामुकों के समान लोभी और प्रजापीडक बन कर अन्याय करने लगें तो यह समझना चाहिये कि वह प्रजा के दुर्भाग्य का उदय-काल है।

राजा यशस्करदेव की न्यायव्यवस्था भी अत्यन्त विश्रुत थी। और अवसरों पर धर्म और अधर्म के सूक्ष्म भेद को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखकर तथ्य का पता लगाते हुये राजा यशस्कर ने कलियुग में भी सत्ययुग का उदय कर दिया था।

राजा हर्षदेव ने प्रार्थियों की प्रार्थना सुनने के लिये अपने महल के चारों ओर चारों द्वारों पर बड़े-बड़े घण्टे बँधवा दिये थे। उनकी ध्वनि सुनकर ही वह

प्रार्थिया से मिलने को तैयार हो जाता था । उसने प्राचीन व्यवस्थाओं का सुचारुरूप से सचालन करने के लिए अपने पिता के समय के अनुभवी मन्त्रियो को सब अधिकार सौंपे थे ।

न्यायव्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था । राजा के बाद उच्चतम अधिकारी न्यायाधीश होता था, जिसे धर्माध्यक्ष भी कहा जाता था । न्याय के लिये न्यायालय अथवा धर्माधिकरण होते थे ।

पैतृक सम्पत्ति, ऋण का भुगतान न करना, अपमान, धोखेबाजी, व्यभिचार, वध आदि विभिन्न कारणों से वादियों तथा प्रतिवादियों मे मुकदमे चलते थे ।

मुकदमो मे साक्षियो की गवाही ली जाती थी । प्राचीन धर्मशास्त्र न्यायाधीशों का पथ-प्रदर्शन करते थे । प्राय अपराधी को पुत्रादि की शपथ खानी पडती थी और प्राणों की बाजी (पण) लगा कर कोई वाद अथवा प्रतिवाद प्रस्तुत किया जाता था ।

न्यायालय मे निष्पक्ष निर्णय की महत्ता सर्वोपरि मानी जाती थी । कोई-कोई राजे स्वय भेष आदि बदल कर राज्य मे भ्रमण करते थे, अथवा गुप्तचरो की सहायता से सत्यता का पता लगाते थे ।

राजा उच्चल लोक-कल्याण के हेतु प्रात काल घर से निकल पडता था और सूर्यास्त तक राज्य की स्थिति देखता हुआ भ्रमण करता रहता था । राजद्रोहियो की सम्पत्ति हरण करके राज्यसात् हो जाती थी । तुग के वध के अनन्तर राजा सग्रामराज ने उसका घर और उसकी समग्र सम्पत्ति जब्त करके राज्य मे मिला लिया था ।

धर्मशास्त्रोक्त नीति के अनुसार ब्राह्मणों को बडे से बडे अपराध के लिए मृत्युदण्ड न दिया जाता था । परन्तु अन्य जाति के व्यक्तियों को शूलारोपण करा के मृत्युदण्ड दिया जाता था । राजा हर्षदेव ने अपने अपकारी व्यक्तियों को शूली पर चढ़वा कर मरवा डाला । इस प्रकार उसने नोनक मन्त्री, उसके धार्तेय भ्राता, विश्वावट्ट आदि को मरवा दिया था । मृत्युदण्ड के लिये राज्य की ओर से घातक नियुक्त रहते थे ।

देश की सुरक्षा के निमित्त राजा एक शक्तिशाली सेना रखता था । कश्मीरमण्डल की सैनिक व्यवस्था न्याय व्यवस्था की भाँति अत्यन्त उच्चकोटि की थी । सेना के अधिकारियो मे सेनापति, कम्पनेश, दण्डनायक सेनाध्यक्ष, कम्पनापति का अनेक बार उल्लेख किया गया है, परन्तु ये सब सेनापति के पर्यायवाची शब्द ज्ञात होते हैं । शान्ति एव युद्ध के अधिकारी के रूप मे सन्धिविग्रहिक शब्द का उल्लेख है ।

सेना मे पदाति, अश्व तथा हाथी हुआ करते थे । राजा शकरवर्मा नौ लाख पैदल सेना, एक लाख घोडे और तीन सौ हाथियो की विशाल वाहिनी को लेकर गुर्जर प्रान्त जीतने गया था ।

सेनाओं में युद्ध करने वाले वीर क्षत्रिय युद्ध में मरण यश को सर्वोपरि स्थान प्रदान करते थे।

महाकवि कल्हण ने सच्चे क्षत्रियों की वीरता स्वाभिमान तथा कीर्तिलाभ के विषय में अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।

कश्मीर मण्डल के विजयेच्छुक राजे अपनी विशाल सेना के द्वारा दिग्विजय करते थे। दिग्विजय करने वाले राजाओं में नव जलौक मिहिरकुल मेघवाहन, ललितादित्य, जयापीड, शंकरवर्मा आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

महाकवि कल्हण ने विभिन्न राजाओं द्वारा दिग्विजय किये गये सुदूर देशों के नामों का उल्लेख किया है। सेना की सहायता से राजे लोग अपने राज्य को निष्कण्टक बना देते थे।

राजा अवन्तिवर्मा ने रणभूमि में कई बार अपने भाई-भतीजों को परास्त करके राज्य को निष्कण्टक बनाया था। राजा अवन्तिवर्मा ने उन्हें कभी पनपने नहीं दिया। राजा शंकरवर्मा ने दामादों का परास्त करके राज्य को निष्कण्टक बना दिया था।[1] राजा कुवलयापीड ने चाचिनी तथा अपने भ्राता वज्रादित्य के प्रभाव को समूल नष्ट करके अपने पराक्रम से राज्य को निष्कण्टक बना दिया था।[2]

राजा सच्चल ने अपने अनुज सुस्सल को लोहर प्रान्त का शासक बना कर भेज दिया था जिससे उसका राज्य कण्टकरहित हो गया था।[3] राजा जयसिंह का अनन्य भक्त मन्त्री धन्य था। उसकी सहायता से राजा के वैरी-मल्लकोष्ठ, भर जय्य, लड्ड चन्द्र आदि-जीवन्मृतक तुल्य तथा शान्त हो गए। धन्य ने राजा के कण्टकों का शोधन कर दिया था।[4]

महाकवि कल्हण ने अनेक प्रकार के युद्धों का उल्लेख करके अपने विशाल अनुभव का परिचय दिया। ये युद्ध निम्नलिखित हैं–

१ महाभटाटोप (७–१७४)
२ कूटयुद्ध (८–५९७) = गोरिल्लायुद्ध
३ खण्डयुद्ध (८–६५३)
४ तुमुलयुद्ध (८–७१२) = आजि
५ शात विप्लव (८–७८१) = शीतयुद्ध

युद्ध में साम, दाम, दण्ड, भेद आदि का समयानुकूल प्रयोग किया जाता था। इनमें कभी-कभी ब्राह्मण भी भाग लेते थे। कल्याणराज नामक ब्राह्मण सैनिक शास्त्र का परम विद्वान् एवं ज्ञाता था। नगराज तथा यशराज नामक ब्राह्मण

१–राजतरंगिणी, ५/१३६, २–वही, ४/३७६, ३–वही, ८/७,८, ४–वही, ८/३३१५, ३३२६

व्यायाम कुशल योद्धा थे। राजा मुस्सन के पदातियों के संग्रह के लिए जब अतुलनीय धन व्यय किया जाने लगा तो शिल्पियों (कारीगरों) तथा शाकटिकों (गाड़ीवालों) ने भी शस्त्र ग्रहण कर लिया था।

युद्ध में अग्निदाह, लूटमार प्रस्तरप्रक्षेप, तोड़-फोड़ तथा वध आदि का प्रयोग करके शत्रु पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता था। युद्ध के समय सैनिकों की विशेषरूप से भर्ती प्रारम्भ की जाती थी। सैनिकों को समय पर वेतन दिया जाता था। उनको प्रवासधन (भत्ता) भी दिया जाता था। युद्ध से विजय प्राप्त करके लौटने पर सेना का यथोचित सम्मान किया जाता था। यह सम्मान दान, मान, सम्भाषण तथा अवलोकन से किया जाता था।

युद्ध के समय सेनाएँ शिविरों (छावनियों) में रहती थीं। वे विचित्र प्रकार की व्यूह-रचना में सन्नद्ध की जाती थीं। समय पड़ने पर राजा अपराधियों को अभयदान अथवा क्षमादान देकर अपनी सेवा में ले लेता था। वह व्याजसंधियाँ, विवाह संधियाँ करके शत्रुओं के विरोध का शमन कर देता था। राज्य में दुर्गों का बड़ा महत्त्व था। दुर्ग कई प्रकार के होते थे। उनमें बगुले के मुख के समान मुख वाले एक दुर्ग का उल्लेख राजतरङ्गिणी में आया है।

युद्ध में अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया जाता था, जैसे वाण, आग्नेय वाण, औषधियुक्त या विषयुक्त वाण, तलवार, दाधारी तलवार, कटार (शस्त्रिका), यन्त्र (बन्दूक), शूलायुध (बल्लम) आदि। युद्ध में शरीर रक्षा के हेतु लौहकवच का प्रयोग किया जाता था। इनके अतिरिक्त छुरिका, क्षेपणीय अस्त्र, यान्त्रिक युद्ध सामग्री और भाँति-भाँति के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग भी किया जाता था। वाणवर्षा, प्रस्तर वर्षा, तोड़-फोड़ आदि अनेक उपाय शत्रु को पराजित करने अथवा भगा देने के लिये किये जाते थे।

सेनापति के अतिरिक्त राजा स्वयं सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता था। वह युद्ध के समय स्वयं नेतृत्व भी करता था। युद्ध करने से पहले गुप्तचरों व दूतों आदि के द्वारा शत्रुराज्य की परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान कर लिया जाता था।

कश्मीरमण्डल के विजयी राजे बहुत कम विजित राज्यों को अपने राज्य में मिलाते थे। वे उपहार आदि लेकर उन्हें राज्य करने देते थे। वे समय-समय पर अपने साथी राजाओं की सेना, धन आदि से सहायता करते थे। नौसेना के द्वारा वे समुद्रस्थित द्वीपों आदि पर भी विजय प्राप्त करते थे।

पंचम अध्याय

राजतरंगिणी तथा इतिहास

राजतरङ्गिणी एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। महाकवि कल्हण ने ४२२४ लौकिक वर्ष में उसकी रचना प्रारम्भ की और ४२२५ लौकिक वर्ष में उसे समाप्त कर दिया।[1]

इस महाकाव्य में महाकवि ने एक निष्पक्ष इतिहासकार का कर्तव्य निभाया है। उसमें उन्होंने कहीं भी कविसुलभ चाटुकारिता को प्रश्रय नहीं दिया है। उन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही इस ग्रन्थ के प्रणयन के कारणों को स्पष्ट कर दिया है–

> वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः ।
> येनायाति यशःकायः स्थैर्यं स्वस्य परस्य च ॥ १–३ ॥
> कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः ।
> कविप्रजापतीँस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥ १–४ ॥
> न पश्येत्सर्वसंवेद्यान्भावान्प्रतिभया यदि ।
> तदन्यद्दिव्यदृष्टित्वे किमिव ज्ञापकं कवेः ॥ १–५ ॥
> कथादैर्ध्यानुरोधेन वैचित्र्येऽप्यप्रपञ्चिते ।
> तदत्र किंचिदस्त्येव वस्तु यत्प्रीतये सताम् ॥ १–६ ॥
> श्लाघ्यः स एव गुणवान्रागद्वेषबहिष्कृता ।
> भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥ १–७ ॥

अपनी ग्रन्थ रचना का प्रयोजन बताते हुए महाकवि ने स्पष्ट लिखा है कि "पूर्णतः निर्दोष और सत्य इतिहास को प्रकट करने के लिए ही मैं यह उद्योग कर रहा हूँ"–

> दाक्ष्यं कियदिदं तस्मादस्मिन्भूतार्थवर्णने ।
> सर्वप्रकारं स्खलिते योजनाय ममोद्यमः ॥ १–१० ॥

उन्होंने लिखा है कि पहले के इतिहासग्रन्थ बहुत विस्तृत थे। उनको संक्षिप्त करने के लिये सुव्रत ने अन्य ग्रन्थ की रचना, जिससे वे प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ लुप्त हो गये।

१–राजतरङ्गिणी ८/३४०४

कवि सुव्रत की रचना कठोर विद्वत्तापूर्ण होने से लोगों को वास्तविक इतिहास का ज्ञान प्राप्त न करा सकी । कवि क्षेमेन्द्रकृत 'नृपावलि' नामक इतिहासग्रन्थ काव्य की दृष्टि से एक उत्तम रचना है, किन्तु अनवधानतावश उसमें इतनी त्रुटियाँ हो गयी हैं कि उसका कोई अंश निर्दोष नहीं रह गया है । कविप्रवर कल्हण ने प्राचीन विद्वानों द्वारा रचित राजकथा विषयक ग्यारह ग्रन्थों का तथा नीलमुनि रचित नीलमत-पुराण का अध्ययन किया था । प्राचीन राजाओं द्वारा निर्मित देव-मन्दिरों, नगरों, ताम्रपत्रों, आज्ञापत्रों, प्रशस्तिपत्रों एवं अन्यान्य शास्त्रों का मनन-मन्थन करने के कारण महाकवि का सारा भ्रम दूर हो चुका था । उन्होंने लिखा है—

> इय नृपाणामुल्लासे ह्रासे वा देशकालयोः ।
> भैषज्यभूतसम्वादिकथा युक्तोपयुज्यते ॥ १–२१ ॥
> सङ्क्रान्तप्राक्तनानन्तव्यवहारः सुचेतसः ।
> कस्येदृशो न सन्दर्भो यदि वा हृदयङ्गमः ॥ १–२२ ॥

सभी प्राणियों के जीवन की क्षणभंगुरता को सोचकर कवि ने शान्त रस को ही सब रसों में प्रधान स्थान दिया है और पाठकों को सम्बोधित करके उसने लिखा है—

> तदमन्दरसस्यन्दसुन्दरेयं निपीयताम् ।
> श्रोत्रशुक्तिपुटै स्पष्टमङ्ग राजतरंगिणी ॥ १–२४ ॥

विल्सन, बूलर, स्टीन आदि कतिपय इतिहासप्रेमी विद्वानों का कहना है कि "महाकवि कल्हण अपने इतिहासप्रणयनकार्य में पूर्ण सफल रहे हैं । उन्होंने विभिन्न कश्मीर नरेशों के उत्थान-पतन की गाथा को सन् तथा तिथिसमेत लिखकर भारतीय इतिहास का बहुत बड़ा उपकार किया है । उनके इस उत्प्रयत्न से विस्मृतिगर्त में पड़े हुये बहुतेरे महापुरुषों के जीवनकाल का निर्णय करने में बड़ी सहायता मिलेगी । उसकी यह कृति देखकर हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि कल्हण बड़ा ही चतुर कलाकार था । वह मानव स्वभाव का अद्भुत पारखी था । वह अपने देश की नैतिक, भौतिक एवं आर्थिक परिस्थिति से भली भाँति परिचित था । प्राचीन इतिहास के अन्वेषण में उसकी सुतीक्ष्ण प्रतिभा विलक्षण कार्य करती थी । वह स्वाभिमानी काव्य-शिल्पी था । उसने यह ऐतिहासिक महाकाव्य किसी राजा से पुरस्कार प्राप्त करने के निमित्त नहीं लिखा था, अपितु ऐतिहासिक तथ्य विश्व के समक्ष रखने के उद्देश्य से ही उसने यह भगीरथ प्रयत्न किया और इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त की ।"[1]

१–राजतरङ्गिणी, यत्किञ्चित्, पृष्ठ ३–४ ।

महाकवि कल्हण ने एक पक्षपातशून्य न्यायाधीश के समान ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए किंचित् भी संकोच नहीं किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना में जिन विभिन्न ग्रन्थों की सहायता ली थी, उनका निस्संकोच नामनिर्देश किया है। प्रसंगानुसार उन्होंने रामायण और महाभारत से भी सहायता ली थी। उन्होंने तत्कालीन दन्तकथाओं एवं जनश्रुतियों का भी उपयोग किया है, परन्तु उनकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ नहीं लिखा है। अपने समय से पूर्व का इतिहास उन्होंने अपने पिता-पितामह आदि पूर्वजों से सुनकर अथवा अन्य ग्रंथों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, सनदों सिक्कों आदि की सहायता से लिखा है। उन्होंने अपने समय के इतिहास का प्रत्यक्षद्रष्टा होने के कारण बहुत ही अच्छे ढंग से तथा विस्तारपूर्वक लिखा है।

महाकवि ने कश्मीरमण्डल के वृहत् इतिहास का महाभारतकाल से लेकर ११५० ई० तक प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उन्होंने लगभग ३६०० वर्षों का कश्मीर का विशाल इतिहास प्रणीत किया है। इतने बड़े इतिहास में हो सकता है कि कुछ कमियाँ विद्यमान हों तथापि महाकवि ने वास्तविक स्थिति तथा पक्षपात-शून्यता को पर्याप्त रूप से अपनाया है। कालक्रमपूर्ण घटना वर्णन तथा घटनाओं का सांगोपांग चित्रण महाकवि कल्हण को एक विवेचनशील इतिहासकार के पद पर प्रतिष्ठित कर देता है। उन्होंने कश्मीरमण्डल पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों का याथातथ्य वर्णन किया है। तत्कालीन राजाओं के गुण-दोष, मन्त्रियों का कार्य-कौशल एवं दूषण राजसेवकों की कृतघ्नता तथा स्वामिभक्ति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण उन्होंने किया है। निन्दा और स्तुति दोनों का निष्पक्ष भाव से तथा बड़ी सच्चाई से अंकित करना उन्हीं का कार्य था। अपने पिता महामात्य चम्पक के आश्रयदाता राजा हर्षदेव के गुण-दोषों का उद्घाटन उन्होंने एक निष्पक्ष इतिहासकार की भाँति किया है। सप्तम तथा अष्टम तरंगों के कथाभाग में कल्हण ने जो सावधानी दिखलाई है, वह उनके चातुर्य तथा सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का स्पष्ट निदर्शन है।

महाकवि कल्हण उस चम्पक महामन्त्री के पुत्र थे, जिसने सन् १०८९ से ११०१ ई० तक महाराज हर्षदेव की सेवा की थी। बाल्यकाल से ही कल्हण ने पिता के सम्पर्क में रहकर राजा हर्षदेव के कार्यकलाप तथा उत्थान-पतन की गाथा को निकट से अध्ययन किया था। यही कारण है कि सप्तम तथा अष्टम तरङ्गों में केवल बारह राजाओं का सन् १००२ ई० से सन् ११५० तक का लगभग डेढ़ सौ वर्षों का इतिहास लेखनीबद्ध किया गया है, जबकि प्रारम्भ के छः तरङ्गों में २४४८ ईसा पूर्व से ११०३ ई० तक का १३१ राजाओं का लगभग ३४५० वर्षों का इतिहास उपनिबद्ध किया गया है। महाकवि ने अपने समय की घटनाओं का

सांगोपांग तथा विस्तृत वर्णन किया है। पहले छै तरङ्गो मे कुल श्लोकों की संख्या २६४५ है, जबकि अन्तिम दो तरङ्गो मे श्लोको की संख्या ५१८१ है। सभी तरङ्गों की कालगणना मे अभूतपूर्व अविच्छिन्नता दृष्टव्य है। कालक्रमपूर्ण घटना वर्णन राजतरङ्गिणी का वैशिष्ट्य है। घटना-वर्णन की प्रधानता मे तो यह ग्रन्थ अद्वितीय है। ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण, सत्यदर्शन, उपदेशग्रहण, विभिन्न-चरितो तथा प्रकृति नटी के लीलाविलासो के वर्णनों आदि ने इस ग्रन्थ को सर्वाङ्ग सुन्दर बना दिया है।[1]

१–घटनावर्णन की प्रधानता, कालक्रमपूर्ण घटनावर्णन, सत्यदर्शन, उपदेशग्रहण आदि विषयों पर सप्तम अध्याय दृष्टव्य है।

षष्ठ अध्याय

राजतरंगिणी की भाषा, शैली तथा अलंकार

महाकवि कल्हण ने अपने ग्रंथ राजतरङ्गिणी में इतिहास तथा काव्य का सुन्दर समन्वय किया है। भारतवर्ष में इस प्रकार के ग्रंथों का प्रणयन बहुत प्राचीन समय से होता रहा है। उस समय इतिहास ग्रन्थों का समावेश काव्य ग्रन्थों में ही किया जाता था। महाकवि कल्हण ने भी महाकाव्योपयुक्त शैली में राजतरंगिणी का प्रणयन किया है। यही कारण है कि महाकवि कल्हण ने यत्र-तत्र अलङ्कारों का सन्निवेश करके अपनी ऐतिहासिक कृति में काव्यात्मकता को समुचित स्थान दिया है।

विल्सन, बूलर, स्टीन आदि कतिपय पाश्चात्य इतिहासप्रेमी विद्वानों का यह कथन सत्य ही है कि महाकवि कल्हण ने अपने ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर अलङ्कार-बहुल भाषा का उपयोग किया है। इसे एक सर्वांगसुन्दर महाकाव्य का रूप देने के लिये कल्हण ने इसमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि बहुत से अलङ्कारों का समावेश किया है। भाव, भाषा और घटनावैचित्र्य में तो सारा ग्रंथ भरा पड़ा है। यहाँ तक कि अन्तरात्मा के भावों को अभिव्यक्त करते समय कवि ने ग्रन्थ की दुरूहता को भी लगभग समाप्त किया था।[1]

महाकवि कल्हण ने ऐतिहासिक सत्यता की अभिव्यञ्जक प्रसादगुणोपेत भाषा के साथ-साथ महाकाव्य की गरिमा की व्यञ्जक नैतिकता से ओत प्रोत अलङ्कार-बहुल भाषा का सुन्दर प्रयोग किया है। कहीं कहीं इस प्रकार के प्रयोगों में किंचित् दुरूहता का आभास मिलता है, परन्तु उनमें भाषा की रचना सौष्ठव तथा विचारों की गौरव वैशद्य इतनी प्रचुर मात्रा में समन्वित है कि काव्य पारखी को अप्रतिम आनन्द की अनुभूति होती है। कवि-कर्म की प्रशंसा करते हुए महाकवि ने लिखा है–[2]

> 'भुजवनतरुच्छाया यया निषेव्य महौजसा
> जलधिरशना मदिन्यासीदसावकुतोभया ।
> स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा विना यदनुग्रह
> प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कविकर्मणे ॥

अथवा

१–राजतरङ्गिणी, पाण्डेय रामतेज शास्त्री के द्वारा सम्पादित व अनूदित–भूमिका–पृष्ठ ४ (प्रथम संस्करण–१९६०)

२–राजतरंगिणी, १/४६

येऽभ्यासनिभकुम्भशायिनपदा येऽपि श्रिय लेभिरे
येषामप्यवसन्पुरा युवतयो गेहेष्वहश्चन्द्रिका ।
तान्लोकोयमवैति लोकतिलकान्स्वप्नेष्यजातानिव
भ्रात सत्कविकृत्य किं स्तुतिशतैरन्ध जगत्त्वा विना ।।[1]

ललितकलासम्बन्धी हृदयावर्जक वस्तुओ तथा सुभाषित आदि के सरल भावों के आस्वादन से अनभिज्ञ राजाओं एव साधारण जनो को लक्ष्य करके कवि अत्यन्त सुन्दर अलङ्कारो के द्वारा अपने भाव व्यक्त करता है–[2]

"अपश्यदभिर्मशास्वादान्भावास्वादुविवेकिभि ।
किं ज्ञेयमशनादन्यत्क्ष्मापैरन्धैरिवोऽक्षभि ।।"

और भी

आरूढस्य चिता कृतानुमरणोद्योगप्रियालिङ्गन
पुण्डेक्षुद्रवपानमुरवणमहामोहप्रसुप्तस्मृते ।
वीतासोरवतसमाश्यक्तयामादश्च यादृग्भवेद्
भावाना सुभग स्वभावमहिमा निश्चेतसस्तादृश ।।

महाकवि कल्हण की राजतरङ्गिणी मे अनेकानेक नायको के उत्थान-पतन की गाथायें निहित हैं। उनके अनुशीलन-अध्ययन से एक विचित्र प्रकार का अनुभव होता है। महाकवि ने अपने ग्रन्थ मे कश्मीर-मण्डल के महाभारतकाल से लेकर ईसा की १२वीं शती के मध्य तक के अनेक कालो के जन-जीवन के व्यवहारो[3], रीति-नीतियो, धर्म-कर्मों, ऐहिक सुख-दुःखो, शासन-प्रणालियो, अनेकानेक विचारधाराओं, राजनैतिक उत्थान-पतनो आदि की सरस स्रोतस्विनी प्रवाहित की है। उन्होने प्राणियो की क्षण-भगुरता का हृदयगम करके शान्तरस का ही सब रसो मे प्रधान स्थान प्रदान किया है। इसीलिये अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही सहृदय सज्जनों को सम्बोधित करते हुये महाकवि ने लिखा है[4]–

"क्षणभङ्गिनि जन्तूना स्फुरिते परिचिन्तिते ।
मूर्धाभिषेक शान्तस्य रसस्यात्र विचार्यताम् ।।
तदमन्दरसस्यन्दसुन्दरेयं निपीयताम् ।
श्रोत्रशुक्तिपुटै स्पष्टमङ्ग राजतरङ्गिणी ।।"

शान्तरस की महत्ता को बढ़ाने के मुख्य हेतु अध्यात्मकता को लक्षित करके महाकवि ने लिखा है कि[5]–

"अध्यात्मरव प्रशममहिमोल्लासन हन्त हेतुर्भावाना तु
ध्रुवकपरता मादव क्रूरता वा ।

१–राजतरङ्गिणी, १/४७, २–वही, ४/५००–५०१, ३–वही, १/२२, ४–वही, १/२३–२४, ५–वही, ८/३०३०

स्पृष्ट पादैरमृतमहग स्यात्कठोर हिमाशोर्यांति
ग्रावाप्यहर रभसादार्द्रता चन्द्रकान्त ॥"

महाकवि कल्हण ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य में कश्मीरमण्डल के विशाल इतिहास शान्तरस तथा मनोरम अलङ्कार विधान की सुन्दर त्रिवेणी की अजस्र धारा प्रवाहित की है। महाकवि ने शान्तरस को उच्चतम स्थान प्रदान किया है, क्योंकि वह संसार की असारता तथा घटना वैचित्र्य से भली भाँति परिचित थे। उन्होंने अपने पूज्यपाद पिता श्री चम्पक को राजा हर्षदेव के प्रधानमन्त्री के रूप में देखा था। पिता के सम्पर्क में रहकर कवि ने राजा हर्ष के पतन-उत्थान एवं उत्थान पतन के घटनाचक्रों का निकट से अध्ययन किया था। उन्होंने इस राजा के उत्थान-पतन का निष्पक्ष इतिहासकार की भाँति वर्णन किया है परन्तु उन्होंने किंचिन्मात्र भी कवि सुलभ चाटुकारिता को प्रश्रय नहीं दिया है। राजा हर्ष का ही नहीं, अन्य सभी राजाओं के गुण दोषों का स्पष्ट एवं निष्पक्ष चित्रण करके उन्होंने एक सच्चे इतिहासकार के कर्तव्य का पालन किया है।

महाकवि कल्हण ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य को सच्चाई के साथ लिखा एवं प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया। उन्होंने देख लिया था कि पहले के इतिहास-ग्रन्थ पूर्ण निर्दोष एवं सरल न थे। वे अत्यन्त विस्तृत थे।[1] वे इतिहास ग्रन्थ इतनी कठोर-विद्वत्ता से पूर्ण थे कि वे जनसाधारण को वास्तविक इतिहास का ज्ञान प्राप्त कराने में असमर्थ थे।[2] उन इतिहास-ग्रन्थों में विभिन्न राजाओं के शासनकाल में देश-काल की उन्नति एवं अवनति के विषय में लोगों को भ्रम उत्पन्न हो गया था, जिसे दूर करने के लिये महाकवि ने अपने ग्रन्थ राज-तरंगिणी का प्रणयन किया।[3] उनका ग्रन्थ सच्चे इतिहास को प्रस्तुत करने का एक श्लाघ्य प्रयत्न है।

महाकवि कल्हण ने अपने ग्रन्थ राजतरङ्गिणी में अनेक राजाओं तथा महापुरुषों के अद्भुत चरित्रों का वर्णन किया है तथा उनके जीवन से सम्बन्धित अविश्वास-जनक घटनाओं पर भी प्रकाश डाला है। इस प्रकार के वर्णनों में राजा अशोक के पुत्र राजा जलौक[4], राजा तुञ्जीन और रानी वाक्पुष्टा[5], मन्त्री सन्धिमित्र तथा उसका गुरु ईशान[6], राजा मेघवाहन[7], राजा मातृगुप्त तथा राजा प्रवरसेन, राजा चन्द्रापीड, राजा ललितादित्य, रसशास्त्री चङ्कुण राजा जयापीड, महात्मा सुय्य, राजा यशस्कर, राजा अनन्तदेव, राजा हर्षदेव, राजा जयसिंह आदि के वृत्तान्त उल्लेखनीय हैं। महाकवि ने लिखा है कि उनको ऐसा वर्णन करने में लज्जा का अनुभव हो रहा है कि कहीं उनकी बात पर लोग अविश्वास न करने लग जावें, क्योंकि

१–राजतरङ्गिणी, १/११, २–वही, १/१२, ३–वही, १/२१, ४–वही, १/१०८–१५२, ५–वही, २/११–६१, ६–वही, २/८२–११३, ७–वही, ३/२–९६

आर्षप्रणाली में इतिहास लिखने वाले किसी भी कवि की रचना श्रोताओं के हृदय को स्पर्श नहीं करती। इस प्रकार कवि ने अपना इतिहास आर्ष प्रणाली में भी लिखा है—

> "इत्याद्यद्यतनस्यापि चरितं तस्य भूपतेः।
> पृथग्जनेष्वसंभाव्यं वर्णयन्तस्त्रपामहे ॥ ३–९४ ॥
> अथवा रचनानिर्विशेषमार्गेण वर्त्मना।
> प्रस्थिता नानुरुन्धन्ति श्रोतृचित्तानुवर्तनम् ॥" ३–९५ ॥

महाकवि कल्हण ने ऐतिहासिक तथ्य को दृष्टिगत करके अपने महाकाव्य का प्रणयन किया है। इसीलिए उनकी भाषा शैली में कृत्रिमता के लिए अधिक स्थान नहीं है। उनकी भाषा में तरङ्गिणी की भाँति प्रवाह एवं स्वाभाविकता है। प्रारम्भ से अन्त तक पाठक अथवा श्रोता की रुचि एवं जिज्ञासा की अविच्छिन्नता किसी भी ऐतिहासिक रचना की बहुत बड़ी कसौटी है जिसमें राजतरङ्गिणी खरी उतरती है।

जहाँ तक चमत्कारिक रचना अथवा अलङ्कार वैचित्र्य का सम्बन्ध है, महाकवि ने स्वयं लिखा है[1] कि—

> "कथादैर्घ्यानुरोधेन वैचित्र्येऽप्यप्रपञ्चिते।
> तदत्र किंचिदस्त्येव वस्तु यत्प्रीतये सताम् ॥ ६ ॥
> श्लाघ्यः स एव गुणवान्रागद्वेषबहिष्कृता।
> भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥ ७ ॥
> पूर्वैर्बद्धं कथावस्तु मयि भूयो निबध्नति।
> प्रयोजनमनाकर्ण्य वैमुख्यं नोचितं सताम् ॥ ८ ॥
> दृष्टं दृष्टं नृपोदन्तं बद्ध्वा प्रमयमीयुषाम्।
> अर्वाक्कालभवैर्वार्ता यत्प्रबन्धेषु पूर्यते ॥ ९ ॥
> दाक्ष्यं कियदिदं तस्मादस्मिन्भूतार्थवर्णने।
> सर्वप्रकारं स्खलिते योजनाय ममोद्यमः ॥" १० ॥

ऐतिहासिक घटनाओं को महाकवि कल्हण ने तिथि-सम्वत् तथा प्रमाण सहित लेखनीबद्ध किया है। किन्हीं-किन्हीं स्थलों में महाकवि की कालगणना भ्रमपूर्ण प्रतीत होती है[2] और उनके द्वारा वर्णित कुछ घटनायें अन्ध-विश्वास तथा रूढ़िग्रस्त जनश्रुतियों पर आधारित ज्ञात होती हैं। ९वीं शती ईस्वी के पूर्व का इतिहास परवर्ती राजवंशों की भाँति विस्तृत और प्रशस्त नहीं है। उसमें अधूरापन

१–राजतरङ्गिणी, १/६–१०।

२–श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री की 'प्राचीन भारत की झलक', पृष्ठ १६०।

तथा धुंधलापन दृष्टिगोचर होता है, परन्तु ९वीं शती से १२वीं शती के मध्य तक का इतिहास सुस्पष्ट, सविस्तृत तथा सच्चे घटनाक्रम से सम्बन्धित है। कवि की निष्पक्षता, स्पष्टवादिता तथा सूक्ष्मनिरीक्षण शक्ति उसे एक विवेकशील इतिहासकार के पद पर अधिष्ठित कर देती है। राजा हर्षदेव के गुण दोषों का महाकवि ने निस्संकोच चित्रण किया है जैसे—

'आगम्या नापरीरर्या न स्मार्या त्याज्या च मानमात् ।
परराजश्वश्रा   स्वसारः   स्थानपतिनो ॥" ८७३॥

अथवा

"ग्रामे पुरेऽथ नगरे प्रासादो न स कश्चन ।
हर्षराजतुरुष्केण न यो निष्प्रतिमीकृतः ॥" ७-१०९५॥

महाकवि कल्हण ने अपने अभिप्राय विचारों की गहनता और सूक्ष्मता का चित्रण करने में अपूर्व कौशल दिखलाया है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक सभी पहलुओं पर सतर्क दृष्टि रखते हुए उन्होंने विशद वर्णन प्रस्तुत किये हैं। सन् १००३ ई० (४०७९ लौकिक वर्ष) से ११४९ ई० (४२२५ लौकिक वर्ष) के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक राजा के व्यक्तिगत तथा राजकीय जीवन की समग्र घटनाओं का सजीव तथा मर्मस्पर्शी चित्रण उपस्थित किया है। प्रत्येक राजा की नीति एवं उस नीति का प्रजाजन पर प्रभाव का उल्लेख भी उपस्थित किया है। काश्मीर में समय समय पर होने वाली विभिन्न क्रान्तियों के विशद वर्णन के चित्र भी उन्होंने खींचे हैं।

गोनन्द वंश का उत्थान और पतन तथा विभिन्न राजवंशों जैसे विक्रमादित्य का वंश, कर्कोटक नागवंश, उत्पल वंश, [illegible] वंश, यशस्कर वंश, सातवाहन वंशोद्भूत उच्चराज तथा शान्तिराज के वंशों आदि के आद्योपान्त वर्णन, इन राजवंशों के विभिन्न घटनाचक्रों, धार्मिक पर्व उत्सव समारम्भों एवं अवसरों के सजीव चित्रण राजतरंगिणी को ऐतिहासिक महाकाव्यों के मध्य मूर्धन्य स्थान प्रदान करते हैं। ये समस्त गाथाएँ अत्यन्त मनोहारिणी तथा मार्मिक कवि-कल्पना से ओतप्रोत हैं।

जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि ऐतिहासिक तथ्यों से ओतप्रोत होने पर भी राजतरंगिणी में काव्य गुणों का पर्याप्त सद्भाव है। यद्यपि बाणभट्ट का सा गद्य गुम्फन, उत्कृष्टता व बन्ध-सौष्ठव इस ग्रन्थ में नहीं आ पाया है जैसा कि स्वाभाविक ही था, कई दृष्टियों से उसे काव्य ग्रन्थ के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है। उसमें मनोहारी कल्पना, रस-परिपाक, दृश्यों एवं घटनाचक्रों का सजीव वर्णन, सुन्दर एवं ओजपूर्ण सम्वादों का निवेश, स्वाभाविक अलंकारविधान, मार्मिक उक्तियों तथा विविध मनोभावों की योजना, प्रबन्ध-पटुता

तथा सुन्दर शब्दों तथा वाक्यों की सघटना का जहाँ-तहाँ सुन्दर समावेश हुआ है। उनके द्वारा रचित ऐसे कथानक उनकी कवित्व शक्ति का उद्घाटन करते हैं। उनमें कल्पनाओं की कमनीयता अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़ी है। ऐसे कथानकों में अन्ध युधिष्ठिर का वनाभिमुख पलायन, सुस्सल का राजधानी में प्रवेश, भोज की हिमाच्छादित पर्वतीय प्रदेशों की यात्रा, राजा अनन्तदेव की अन्त्येष्टि, रानी सूर्यमती का अग्निप्रवेश, राजा जयापीड एवं ब्राह्मणों के मध्य वार्तालाप तथा ब्रह्मघात के राजा का अन्त, राजा हर्ष का एकाकीपन, आश्रयहीनता तथा हृदयविदारक अवसान आदि उल्लेखनीय हैं।

शान्तरस का परिपाक तो इस ग्रंथ की सर्वोपरि विशेषता है। इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

राजतरङ्गिणी विभिन्न दृश्यों तथा घटनावलियों की मनोरम मञ्जूषा है। ग्रंथ का प्रत्येक पृष्ठ किसी न किसी दृश्य अथवा घटना को प्रस्तुत करता है। अन्तिम दो तरंगों में दृश्यों अथवा घटनाओं का अविच्छिन्न प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। एक के बाद एक दृश्य अथवा घटना चल-चित्र के दृश्यों की भाँति साकार बनकर सामने आती है और पाठकों को आनन्दविभोर बना देती है। इन दृश्यों तथा घटनाओं को अलंकारों से समन्वित करके महाकवि कल्हण ने उनमें मनोरंजक तत्व का समावेश कर दिया है। पाठकों की कुतूहल वृद्धि के साथ-साथ उनकी रुचि की अविच्छिन्नता इस ग्रंथ का वैशिष्ट्य है। विक्रम की प्रशंसा, कश्मीरमण्डल की स्थापना, राजा गोनन्द और बलराम का युद्ध, रानी यशोमती का राज्याभिषेक, राजा अशोक द्वारा स्तूप, नगर, प्राकार, प्रासादादि का निर्माण, राजा जलौक के मानवेतर कार्य, सुश्रवा नाग का कोप, राजा मिहिरकुल की नृशंसता तथा अनाचार, राजा छिंदि का सदेह स्वर्गारोहण तथा राजा अन्ध-युधिष्ठिर का पलायन प्रथम तरंग की विशेष घटनायें हैं।

राजा तुजीन के शासनकाल का दुर्भिक्ष व राजा द्वारा प्रजात्राण, मन्त्री सन्धिमति का पुनरुज्जीवन, राज्याभिषेक तथा उसके गुरु ईशान का शिष्यप्रेम, राजा आर्यराज का राज्यपरित्याग प्रकृति चित्रण आदि के वर्णन द्वितीय तरंग की प्रमुख घटनायें हैं। राजा मेघवाहन के निर्माण कार्य, अहिंसा, दिग्विजय, दया आदि की मानवेतर गाथायें, मातृगुप्त की राजा हर्ष विक्रमादित्य के प्रति अनन्य भक्ति एवं कश्मीर के राजसिंहासन की प्राप्ति, राजा प्रवरसेन की निस्पृहता, भ्रमरवासिनी देवी का वरदान तथा राजा रणादित्य का कठोर तप, अनंगलेखा का दुराचार आदि की मनोहर कथायें एवं वर्णन तृतीय तरंग की उल्लेखनीय घटनायें हैं।

राजा प्रतापादित्य का वणिक-पत्नी नरेन्द्रप्रभा के प्रति प्रेम-बन्धन, राजा चन्द्रापीड की न्यायकथायें एवं आभिचारिकी क्रिया प्रयोग से उसका मरण, राजा

ललितादित्य की दिग्विजय, विद्वत्-प्रियता, दान-दाक्षिण्य, मन्दिरविहारग्रामस्तूप नगरमूर्ति आदि का निर्माण एवं पुण्य-प्रभाव तथा दानादि की कथायें, राजा जयापीड की दिग्विजय तथा उसके श्यालक जज्ज का विद्रोह तथा राज्यापहरण, राजा जयापीड का गौडदेश में कमला नर्तकी के साथ विवाह तथा सिंह का विनाश और पुनः राज्यप्राप्ति उसका विहार मठ मन्दिरनगरादि का निर्माण एवं दिग्विजय, उसकी दुःसाहस की कथायें, उसके स्वभावपरिवर्तन तथा ब्रह्मदण्ड से विनाश की गाथायें राजा विप्पट जयापीड के मातुलों का महायुद्ध तथा राजा का वध आदि की घटनायें चतुर्थ तरंग की प्रमुख घटनायें हैं।

राजा अवन्तिवर्मा का विद्वत्प्रेम, विभिन्न निर्माण कार्य, उसके शासनकाल का जलप्लावन, धन्यडामर की कथा, महात्मा सुय्य की कार्य-कुशलता एवं उसके द्वारा भूमि का उद्धार, राजा शंकर वर्मा का प्रजापीडन व कायस्थप्रेम, राजमाता सुगन्धा की दुश्चरित्रता, तन्त्रियों एकांगियों तथा एकांगों द्वारा विभिन्न राजाओं को राज्याधिकार देना, राजा चक्रवर्मा द्वारा हंसी तथा नागलता नामक डोम नर्तकियों पर आसक्ति एवं उनके साथ सहवास राजा का डामरों के द्वारा वध, उन्मत्त वध का अन्त तथा ब्राह्मणों द्वारा यशस्कर का राज्याभिषेक आदि घटनायें पंचम तरंग की प्रमुख घटनायें हैं।

राजा यशस्कर की न्यायकथायें तथा प्रजाधनहरण, राजा क्षेमगुप्त की दुश्चरित्रता, उसकी रानी दिद्दा के द्वारा पौत्रों का विनाश, रानी दिद्दा का शासन व दुराचार आदि की कथायें षष्ठ तरंग की विशेषरूप से उल्लेखनीय घटनायें हैं।

सप्तम तथा अष्टम तरंगों में सातवाहन वंश के राजाओं के शासनकालों का वर्णन है। इन तरंगों में दृश्यों तथा घटनाओं का प्राचुर्य है। इनमें कश्मीरमंडल के सन् १००३ ई० से लेकर ११४९ ई० तक के इतिहास की झाँकी मिलती है। इनमें कश्मीर के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक जीवन की सजीव गाथा निहित है। दृश्यों तथा घटनाओं के बाहुल्य ने इन तरंगों को अत्यन्त मनोहारी बना दिया है। तुंग का उत्थान व पतन तुरुष्क सेनापति हम्मीर का आक्रमण, तुंग का वध, श्रीलेखा का दुराचार, राजा अनन्तदेव व रानी सूर्यमती के पारस्परिक सम्बन्ध, महामंत्री हलधर का स्वर्गवास, राजा कलश के दुराचार, राजा अनन्तदेव का राजधानी-परित्याग, राजा अनन्तदेव व कलश का विरोध, राजा अनन्तदेव व रानी सूर्यमती के क्रोधावेश में कथोपकथन, राजा अनन्तदेव द्वारा आत्महत्या व रानी सूर्यमती का अग्निप्रवेश व शाप, हर्षदेव का बन्धन व मुक्ति, हर्ष का राज्याभिषेक व सत्कृत्य तथा अनाचार, राजा हर्षदेव का वध, राजा उच्चल का राज्याभिषेक, जनकचन्द्र तथा भीमादेव का युद्ध, कायस्थों का मूलोच्छेद, राजा उच्चल की न्यायकथायें, राजा उच्चल का वध, रड्ड का राज्याधिकार, सल्हण का आगमन व

राजधानी में प्रवेश, सुस्सल का शासन व उसका पतन व भिक्षाचर का शासन, अनेक प्रकार के युद्ध व विप्लव, सुस्सल का पुनरागमन, अग्निदाह व शरणार्थियों का विनाश, भिक्षाचर का मरण, सल्हण और लोठन से राजा सुस्सल का विरोध, महामन्त्री लक्ष्मक की दुर्दशा, भोज का पलायन व राजा जयसिंह के पास उसका आगमन तथा सत्कार, राजा जयसिंह व भोज का पारस्परिक व्यवहार आदि अनेक वर्णनों व घटनाओं का संघटन इन सप्तम तथा अष्टम तरंगों की विशेष घटनायें हैं। इन अनेक दृश्यों तथा घटनाओं की योजना ने राजतरङ्गिणी में उपन्यास की भाँति मनोरंजकता उत्पन्न कर दी है। एक के पश्चात् एक दृश्य चलचित्र की भाँति पाठकों अथवा श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित हो जाता है और अपनी मनोज्ञता से उन्हें आप्यायित एवं आत्मविभोर बना देता है। विभिन्न दृश्य व घटनाचक्र महाकवि कल्हण की ऐतिहासिक वर्णनापरक कवित्वशक्ति का उद्घाटन करते हैं।

राजतरङ्गिणी में महाकवि कल्हण ने सम्वाद शैली को भी प्रस्तुत किया है। उसमें सुन्दर तथा ओजपूर्ण सम्वादों का समावेश किया गया है। उनके द्वारा उत्तरोत्तर कुतूहल वृद्धि तथा स्वाभाविकता की रक्षा हुई है। ये सम्वाद इतने सुसगठित, सुसम्बद्ध और सुव्यवस्थित हैं कि इनसे केवल भिन्नरूपता के ही चित्रण का नहीं, अपितु महाकवि कल्हण की नाटकीयशक्ति का भी उद्घाटन होता है। सूरमूल्य के ब्राह्मणों व राजा जयापीड का वार्तालाप व ब्रह्मदण्ड से राजा का विनाश, राजा अनन्तदेव तथा रानी सूर्यमती के कथोपकथन, राजा हर्षदेव का अपने राजनैतिक कार्यकलापों का मन्त्रियों के समक्ष समर्थन, राजा उच्चल का राजसिंहासन के लिये अपना अधिकार समर्थन, राजा भिक्षाचर के पतन पर सैनिकों तथा डामरों के आलोचनात्मक वार्तालाप आदि इस उपर्युक्त तथ्य की यथार्थता प्रमाणित करते हैं। अष्टम तरंग में राजा भोज की मनोव्यथा तथा अलङ्कार महाकवि के मनोवैज्ञानिक अनुभव का एक उत्कृष्ट निदर्शन है। ऐसे स्थल अनेक हैं जो महाकवि की सूक्ष्म दृष्टि एवं उदात्तानुभूति के परिचायक हैं। ये स्थल या तो महाकवि के सामान्य वर्णनों में दर्शनीय हैं अथवा विभिन्न राजाओं की व्यवस्थाओं के कथनोपकथन में दृष्टव्य हैं। सम्वादशैली के कतिपय उदाहरण अधोलिखित हैं—

(राजा अनन्तदेव व रानी सूर्यमती का कथोपकथन)

"तदा जातु रहः पुष्पतल्पाङ्गे शयाने रयते ।
उवाचानुत्सपूर्वं तामेव स पदप यच ॥ ४२२ ॥
अभिमानो यश शौर्यं राज्यभोगो मनस्विनाम् ।
मया जाया विधेयेन हन्त किं किं न हारितम् ॥ ४२३ ॥
मिथ्योपकरणं नारीर्गणयन्ति नृणां जना ।
परिणामे तु नारीणां पीडोपकरणं नरा ॥ ४२४ ॥

द्वेषो मेपारप्रसक्ताभिर्विरक्ताभिरसूयया ।
के नाम नात्र याभिर्न कुराजस्यानियोऽहता ॥४२५॥
रूप काश्चिद्रत काश्चित्प्रज्ञा काश्चिच्च यामणे ।
पुरुषं काश्चिदगु काश्चिद्भर्तृणा जहुरङ्गना ॥४२६॥
हरन्ति ग्रावभिरिव क्ष्मा पुत्रैरङ्गनाव्रजे ।
मता पयोधरोत्सङ्गात्तरङ्गिण्य इवाङ्गना ॥४२७॥
पयन्ते चेतनामम कि जीर्णे रौद्रशैरिति ।
पोषयन्ति सुतान्भर्तृन्शोषयन्ति तु याषित ॥४२८॥
उत्सिक्तभाषित भर्तृयापिता जितभर्तृका ।
जानन्त्यन्त्याध्रिनयुक्तशिरस्ताडनतनिश्चम् ॥४३९॥
ब्रत सा सुदृढ प्रौढिससकारपरुष वच ।
प्राकृतप्रमदेवोच्चैरियुवाच तदा पतिम ॥४४०॥
गात्रीसानमसा मन्दा जातभाग्यविपर्यय ।
वृथा वृद्ध वद कि वाक्यमिति मूढा न वेत्ययम् ॥४४१॥
स्नातवाभिसतस्य यस्यास्य नामूत्प्रावरण पुरा ।
लाको जानात्ययं कि न तेन मा प्राप्य हारितम् ॥४४२॥
स्वकुलस्योसमुचित यदिह चिम मभायगा ।
प्रियत कि न वातोऽय यत्प्रावशिवनसेवन ॥४४३॥
अरमण्या गतवया दशान्पुत्रे गतारिन ।
परयापि त्यक्त इत्यस्मात्परिवाद्धि म भयम् ॥४४४॥
कुन्दापादिवृत्ता गर्भोपालम्भनिर्भरै ।
वचोभिव्यथितस्तस्यास्तस्थौ तूष्णी यतानप ॥४४५॥
(उच्चल या खशराज सग्रामपाल स कथन[1]—)
स विवित्तकृत धाम्नि खशधीश समन्वितम् ।
सान्त्वयन्त महत्तजा यो पदमाशराऽब्रवीत् ॥१२८१॥
पूर्व दार्वाभिसारे-मूदभारद्वाजो नरो नृप ।
नराहननामास्य सूनु फुल्लमजीजनत् ॥१२८२॥
स सातवाहन तस्माच्च दाऽभूत्तसुत सुतौ ।
गोपालसिंहराजाख्यौ चन्द्रराजो प्यवाप्तवान् ॥१२८३॥
वन्शाद्यदेवाया जातामताथा वयम् ।
कोयमित्यादि तन्मन्दे अमेऽस्मिन्कथ्यते कथम् ॥१२८७॥

१–राजतरङ्गिणी, सप्तम तरग ।

पृथिव्या वीरभोग्याया श्रमो वा अवोपयुज्यते ।
वीरस्य च सहायोऽस्तु क स्वबाहुद्वयात्पर ॥१२८८॥
दिष्ट्या तदनुकम्प्याना मूर्ध्नि हस्तमिवास्पृशन् ।
काश्मीरिकाणा भूपाना नाभूव कुत्रपासन ॥१२८९॥
तस्मादद्वयस्य मे शक्तिमित्युक्त्वा निर्गतस्तत ।
विजयाय स पत्नीना शतेनानुगतोऽचलत् ॥१२९०॥

महाकवि कल्हण ने स्थान-स्थान पर कथानकों के प्रवाह मे भिन्नरूपता लाने के लिये मनोहारी उपमाओ, रूपकों, उत्प्रेक्षाओ, उदाहरणो, विरोधादि अलकारो का यथेष्ट आश्रय लिया है। उचित स्थलों पर वह शब्द चमत्कार की अप्रतिम आभा का दिग्दर्शन कराते हैं। श्लोकों की सादगी एव सरलता के साथ-साथ उन्होने अलकार-बहुल पदों का समावेश किया है। महाकवि की शैली महाकवि बाणभट्ट की शैली की भाति पाचाली रीति का मनोरम निदर्शन है। उसमे गौडी तथा वैदर्भी रीतियों का, ओज और कान्ति गुणों का सुन्दर चित्रण है। भोज ने लिखा है[1]–

"समस्त पचषपदामोज कान्तिसमन्विताम् ।
मधुरा सुकुमारा च पाचालीं कवयो विदु ॥"

अथवा

"गौडी डम्बरबद्धा स्याद्वैदर्भी ललितक्रमा ।
पाचाली मिश्रभावेन लाटी तु मृदुभि पदै ॥"

इस प्रकार गौडी रीति की समास बहुलता तथा ओज गुण के साथ वैदर्भी रीति का लालित्य तथा माधुर्य गुण का हृदयग्राही गुम्फन महाकवि कल्हण की राजतरगिणी मे मिलता है। बाणभट्ट की शैली का प्रकर्ष निम्नलिखित स्थलों मे दर्शनीय है–मन्त्री सधिमति के राजा बनने पर[2]–

"अहरहृदय तस्य शृगारहितविभ्रमा ।
नितम्बिन्यो वनभुव शमिना न तु योषित ॥१२१॥
वनप्रसूनसम्पर्कपुण्यगन्धैस्तपस्विनाम् ।
कर्पूरधूपसुरभि करै स्पृष्ट स पिप्रिये ॥१२२॥
भूतेशवधमानेशविजयेशानपश्यन ।
नियमो राजकार्येषु तस्याभूत्प्रतिवासरम् ॥१२३॥
हरायतनसोपानक्षालनाम्भ कणान्वितै ।
सस्पृष्ट पवनै सोऽभूदानन्दास्पन्दविग्रह ॥१२४॥

१–साहित्यदर्पण (विश्वनाथ कविराजकृत), २–राजतरङ्गिणी, २/१२१–१२४ ।

अथवा भ्रमरवासिनी देवी का वर्णन करते हुए[1]–

भास्वद्बिम्बाधरा कृष्णकेशी सितकराननाम् ।
हरिमध्या शिवाकारा सर्व देवमयीमिव ॥४१६॥
ता विभाव्यानवद्यां निजन यौवनोर्जिताम् ।
निर्व्याजारितकामेन स कामेन निवेशयाम ॥४१७॥
दधती रूपमाधुर्यपूर्वच्छन्नामधृष्याम् ।
अप्सरा प्रत्यभात्तस्य मा हि चित्ते न देवता ॥"४१८॥

अथवा राजा भिक्षाचर का वर्णन करते हुए[2]–

निराशेषस्त्रादनीखण्डकुलस्थविग्रह ।
मृगेन्द्र इव साकम्य भयानूढावह ॥८४३॥
वीरपट्टाम्बरश्लिष्टनिर्णोद्रे चित्ते तते ।
अनद्धे शोभिन पृष्ठे जयश्रीरभ्यसूयत ॥८४४॥

सुरेश्वरी की तपोभूमि का वर्णन[3] पाठकों को बरबस महाकवि बाणभट्ट की कादम्बरी के पूर्व भाग में वर्णित भगवान जाबालि की पावन तपोभूमि[4] का स्मरण कराता है। इसी प्रकार भिक्षाचर की पुनः राज्य प्राप्ति की असफलता को लक्षित करके कवि, महाकवि कालिदास की निम्नलिखित पंक्तियों[5] का भाव जैसा का तैसा प्रस्तुत करता हुआ प्रतीत होता है–

"गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥"

राजतरङ्गिणी में लिखा[6] है कि–

"कार्यमायाति वैमुख्यं जिगीषोर्विधुरे विधौ ।
प्रस्थितस्य पुरोवातं रथस्येव ध्वजांशुकम् ॥"

अलङ्कारों का समुचित प्रयोग करके महाकवि कल्हण ने अपने ग्रन्थ के सौन्दर्य में अभिवृद्धि की है। कवि की सानुप्रास पदावली विदग्धों के हृदयों को भी आकृष्ट कर लेती है। इस प्रकार की पदावली के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं[7]–

"अलोलकीर्तिस्तानदुकूलरचोज्ज्वलाम् ।
बभार यद्भुजस्तम्भो जयश्रीलासमर्जिताम् ॥६४॥
तस्याभूदद्भुतोदग्रभक्तिनिभूषिता ।
राज्ञः सविभ्रमानिम सश्री मतिमता वर ॥६५॥

१–राजतरङ्गिणी, ३/४१६–४१८, २–वही ८/८४३–८४४, ३–वही, ८/३३६९–३३७०, ४–बाणभट्टकृत कादम्बरी, पृष्ठ ३८–४०,
५–कवि कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अङ्क–श्लोक ३०।
६–राजतरङ्गिणी, ८/१५९० ७–वही, २/६४–६५।

शब्द का प्रयोग १००० बार से भी अधिक हुआ है। महाकवि द्वारा प्रयुक्त उपमाएँ तथा उदाहरण उसकी अप्रतिम कल्पना-प्रसूति, उसकी व्यापक अनुभूति तथा उसकी विवेचनात्मक सूक्ष्म दृष्टि का उद्घाटन करती हैं।

महाकवि कल्हण की सुन्दर अलङ्कार-योजना ने उनके ऐतिहासिक महाकाव्य के विभिन्न वर्णनों को अमर बना दिया है। इसी सुन्दर अलङ्कारविधान के कारण यह ऐतिहासिक महाकाव्य सर्वाङ्ग सुन्दर बन गया है। कहीं-कहीं ये वर्णन प्रकृति नटी के विविध लीला-विलासों का, कहीं-कहीं राजनैतिक षड्यन्त्रों, विभीषिकाओं तथा क्रान्तियों का और कहीं-कहीं सामान्य घटनाचक्रों का चित्र प्रस्तुत करके कल्पना को साकार बना देते हैं और कथानक के अजस्र प्रवाह को द्रुतगति प्रदान करते हैं। ऐतिहासिक महाकाव्य के लक्ष्यशिखर पर पहुँचने के लिए उपर्युक्त मनोहारी वर्णन सुरम्य सोपान हैं। इन वर्णनों में लगभग २५ वर्णन विशाल एवं अत्यन्त हृदयहारी हैं। लगभग १०० लघु वर्णनों ने इस ऐतिहासिक महाकाव्य के कलेवर को समृद्ध किया है।

मार्मिक उक्तियाँ तो महाकवि कल्हण के हृदयहार की कड़ियाँ सी यत्र-तत्र बिखरी सी पड़ी हैं। राजतरङ्गिणी इन मार्मिक उक्तियों का शब्दकोश ही है। यथा–

"वन्द्य कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुण ।" १–३ ।।

रागान्धाना कुलस्त्रपा । (१–२५५)

धाना धर्मोऽधिकारिणाम् । (२–९५)

निसर्गसरला नारी । (३–८१५)

वज्र न भिद्यते कैश्चिद्भिनत्ययामणीस्तु तत । (४–५१)

वाग्मिना कस्य सामर्थ्यं परिपर्यायितु वच । (८–२६१)

विचित्रा भाग्यवृत्तय । (५–२६२)

सर्वकाल ब्राह्मणानामहो धैर्यमकुण्ठितम् । (४–६३१)

दुस्त्यजा भोगवासना । (६–२८५)

मृत्यता निष्परिभवा को भुङ्क्ते नृपमन्दिरे ? (७–२२४)

\+ \+ \+

सुखमेकान्तत कुत (७–२२६)

\+ \+ \+

नाभिमानपरित्याग कर्तुं शक्यो मुनेरपि । (७–२३८)

\+ \+ \+

स्थिरा कस्य विभूतय । (७–८३३)

\+ \+ \+

जन्तूना क प्रभावपु निश्चय ? (८–८३०)

\+ \+ \+

जायते क्षीणभाग्याना का नाम न विपर्यय ? (८–१२५७)

\+ + +

ख्याति पुण्यैर्विना कुत ? (८–२४८९)

\+ + +

स्त्रिया मित्रमुखा द्विष । (८–२४६५)

\+ + +

प्रातिलोम्य जितवता पारगन्तु न पार्यते । (८–३०१०)

\+ + +

विश्रम्भ कि विराधिनाम् (८–३०९९)

\+ + +

प्रेतेव नरेन्द्रश्रीर्जातिरन्ध्रापकारिणी । (८–१९०)

महाकवि कल्हण ने अपने ग्रथ राजतरङ्गिणी म सुन्दर शब्दो एव वाक्यो का गठन किया है। उनकी शब्द समृद्धि प्रशस्य है। शब्दो एव वाक्यांशों की प्रसन्न, स्निग्ध एव अलङ्कृत योजना मनोमुग्धकारी है। छोटे-छोटे पदो के बीच समासो का मनोरम विन्यास मुक्ताओ से पिरोई हुई माला की भाँति निखर उठा है। महाकवि ने समीकृत वाक्यो का अच्छा प्रयोग किया है। ऐसे वाक्यो की श्रृंखला पाठको अथवा श्रोताओ की स्मरणशक्ति को सहायता पहुँचाती है और एक-से वाक्याशो की आवृत्ति मन को प्रभावित करती है। ऐसे वाक्यो से आनन्द तथा विस्मय की सृष्टि होती है। उदाहरण के लिये कुछ श्लोक नीचे दिये जा रहे हैं—

नून स तेजसैरेव ससर्जे परमाणुभि ।
कृतोऽन्यथाऽभूत्प्रसवे दुष्प्रेक्ष्यो महतामपि ॥ ७/८७८ ॥
न मर्त्येषु न देवेषु तद्वेषा दृश्यते क्वचित् ।
दानवेन्द्रेषु स प्राप्त परमुत्प्रेक्ष्यते यदि ॥ (७–८७९)

तथा

अवकाश सुवृत्ताना हृदयान्त र्यापिताम् ।
इतीव विहितौ धात्रा सुवृत्तौ तदवटि कुचौ ॥ ६–७५ ॥

अथवा

सा लालिताऽपि राज्ञा यत् लता ललितलोचना ।
चण्डालयाभिधेनागाद्याभिनीषु समाभवत् ॥ ६–७७ ॥

अथवा

हास्यावहोऽन्यनिहता विक्रमोऽनपास्यो
दुर्गन्धिरन्यतिजडोऽपि गृहीतवाक्य ।
पूर्वानुभावजनिता भवति प्रभावाद्
यस्य स्तुमहामतिसस्तदमप्रतक्यम् ॥ ८–२३५६ ॥

ए० बी० कीथ महोदय[1] ने महाकवि कल्हण की घटना चित्रण करने में कल्पिरवशक्ति उनके कथानकों की सादगी एवं प्रभावोत्पादक वर्णनाशक्ति, उनके कथोपकथनों की नाटकीय अभिव्यञ्जना-शक्ति आदि का उल्लेख किया है। साथ ही साथ उन्होने महाकवि के द्वारा प्रयुक्त रूपकों में दुरूहता की भी बात कही है। उन्होंने महाकवि के द्वारा प्रयुक्त ऐसे शब्दो का भी उल्लेख किया है जिनका अर्थ अब भी स्पष्ट नहीं है और जिनके प्रयोग के लिए कवि न कोई कारण भी नहीं दिया है। ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१ 'कम्पन' का अर्थ महाकवि ने सेना' अथवा' सेनापतित्व' लगाया है।

२ 'द्वार' का प्रयोग 'सीमान्त चौकी' अथवा 'सीमान्त-अधिपतित्व' के लिए किया गया है।

३ 'पादाग्र' का अथ 'उच्च राजस्व कार्यालय' से लिया गया है।

४ 'पार्षद' का अथ 'पुरोहितों का सघ' किया गया है।

कीथ महोदय के अनुसार महाकवि कल्हण की कृति मे एक और कठिनाई आती है। वह है—एक ही व्यक्ति के नाम का भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयोग। जैसे, लाष्ठक, लोठक तथा लोठन एक ही व्यक्ति के नाम हैं। इसी प्रकार, व्यक्तियों को उनके नामों से नहीं, उनके पदो के द्वारा अभिहित किया गया है। यथा, प्रतीहार लक्ष्मक के लिए 'प्रतीहार', शाहिराजा त्रिलोचनपाल के लिये 'शाहि', मण्डलेश्वर आनन्द के लिए 'मण्डलेश्वर' आदि।

इसी प्रकार राजाओं व अधिकारियो के अपने अधिकार पदों से विमुक्त होने पर भी पुराने पदों के द्वारा ही उन्हें सम्बोधित किया गया है। यथा, राजा सुस्सल के राज्य का अपहरण होने पर भी उसे 'राजा सुस्सल' ही अन्त तक कहा गया है। यही बात राजा भिक्षाचर के लिए भी घटित होती है। इस प्रकार कीथ महोदय ने उपयुक्त जिन तथ्यो का निरूपण किया है, उनमे से अधिकाश तथ्य ठीक ही हैं।

१—कीथ 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर', पृष्ठ १६६—१७०।

महाकवि कल्हण के काव्य की विशेषताएँ

महाकवि कल्हण ने अपने ग्रंथ राजतरंगिणी के प्रारम्भ में ही अपनी काव्य-रचना के प्रयोजनों को स्पष्ट कर दिया है । यथा[1]–

वन्द्य कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुण ।
येनायाति यश काय स्थैर्य स्वस्य परस्य च ॥ ३ ॥
कोऽन्य कालमतिक्रान्त नेतु प्रत्यक्षतां क्षम ।
कविप्रजापती स्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिन ॥ ४ ॥
न पश्येत् सर्वसंवेद्यान्भावान्प्रतिभया यदि ।
तदन्यद्दिव्यदृष्टित्वे किमिव ज्ञापक कवे ॥ ५ ॥
कथादैर्घ्यानुरोधेन वैचित्र्येऽप्यप्रपञ्चिते ।
तदत्र किञ्चिदस्त्येव वस्तु यत्प्रीतये सताम् ॥ ६ ॥
श्लाघ्य स एव गुणवान्रागद्वेषबहिष्कृता ।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥ ७ ॥
पूर्वैर्बद्ध कथावस्तु मयि भूयो निबध्नति ।
प्रयोजनमनाकर्ण्य वैमुख्य नोचित सताम् ॥ ८ ॥
दृष्ट दृष्ट नृपोदन्त बद्ध्वा प्रमयमीयुषाम् ।
अर्वाक्कालभवैर्वार्ता यत्प्रबन्धेषु पूर्यते ॥ ९ ॥
दाक्ष्य कियदिद तस्मादस्मिन्भूतार्थवर्णने ।
सर्वप्रकार स्खलिते योजनाय ममोद्यम ॥ १० ॥
विस्तीर्णा प्रथम ग्रन्था स्मृत्यै संक्षिपतो वच ।
सुव्रतस्य प्रबन्धेन छिन्ना राजकथाश्रया ॥ ११ ॥
या प्रयाता प्रगल्भत्वं साऽपि वाच्यप्रकाशने ।
पाटव दुष्टवैदुष्यतीव्रा सुव्रतभारती ॥ १२ ॥
केनाप्यनवधानेन कविकर्मणि सत्यपि ।
अंशोऽपि नास्ति निर्दोष क्षेमेन्द्रस्य नृपावलौ ॥ १३ ॥
दृग्गोचर पूर्वसूरिग्रन्था राजकथाश्रया ।
मम त्वेकादश गता मत नीलमुनेरपि ॥ १४ ॥

---

1 कल्हणकृत राजतरङ्गिणी, प्रथम तरङ्ग, श्लोक ३ से १५ तक ।

दर्दश्च पूर्वभूभर्तृप्रतिष्ठावस्तु शासनैः ।
प्रशस्तिपट्टैः शास्त्रैश्च शान्तोऽशेषभ्रमक्लमः ॥ १५ ॥

ये श्लोक महाकवि की कृति की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं, जिनमें मुख्य ये हैं—

१ घटना चित्रण की प्रधानता (विविध कथानकों का समावेश)
२ कालक्रमपूर्ण घटना वर्णन,
३ देश, काल, दशा का निष्पक्ष वर्णन,
४ उपदेशग्रहण तथा
५ सत्य-दर्शन ।

इनके अतिरिक्त महाकवि ने चरित्र-चित्रणों तथा प्रकृति-चित्रणों से अपने महाकाव्य का सर्वाङ्ग-सुन्दर बना दिया है । बीच-बीच में भाग्य एवं पूर्व-कर्मों की फलवता पर महाकवि ने यथेष्ठ प्रकाश डाला है । इस प्रकार पुनर्जन्मवाद पर महाकवि की गहरी आस्था थी । दैव की महिमा पर कल्हण का अटूट विश्वास था और प्रत्येक अद्भुत घटना में वह विधाता या दैव के प्रभाव को ही प्रमुख कारण मानते थे । इन सब तत्वों का समावेश करने से महाकवि की वर्णना-शक्ति, सूक्ष्म-निरीक्षण दृष्टि एवं संस्कृत साहित्य के सर्वाङ्गीण ज्ञान का परिचय मिलता है ।

घटना-चित्रण की प्रधानता

विभिन्न घटनाओं का विशद चित्रण महाकवि कल्हण के ऐतिहासिक काव्य राजतरङ्गिणी की प्रमुख विशेषता है । उन्होंने लगभग २५ विशाल घटना-चक्रों के मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किये हैं । साथ ही लगभग १०० लघु घटनाओं का चित्रण करके उन्होंने अपने ग्रन्थ के कलेवर को समृद्ध किया है । कथा-विस्तार के भय से कवि ने विविध रचनाओं के समावेश के लोभ का संवरण किया है[1]। फिर भी सहृदय जनों के लिए सुखदायी कुछ कथानक स्थान-स्थान पर अवश्य मिलते हैं । कवि ने वर्णनात्मक शैली का आश्रय लेकर विभिन्न घटनाचक्रों को मुक्ताओं की लड़ियों की भाँति पिरो दिया है ।

कश्मीर-मण्डल की स्थापना एवं रमणीकता[2], बलराम तथा गोनन्द प्रथम का भयानक युद्ध, रानी यशोमती राज्याभिषेक, राजा जलौक के मानवेतर अद्भुत बौद्धों का उत्थान व पतन, राजा गोनन्द तृतीय के द्वारा नीलमतपुराणोक्त विधि से धार्मिक कार्यों का प्रारम्भ, राजा किन्नर की विषय-सम्पटता, सुश्रवानाग का कोप

१–राजतरङ्गिणी, १–६
२–वही, १–४२

एव नरपुर का विनाश, राजा सिद्ध की अनन्य शिवभक्ति एव सदेह कैलाशवास[1], राजा मिहिरकुल के भयकर अत्याचार राजा अन्ध युधिष्ठर का धनोन्माद तथा प्रबल शत्रु राजाओ के आक्रमण से भयभीत होकर उसका पलायन आदि घटनाओ का चित्रण पहले तरग मे दृष्टव्य है।

दूसरे तरग मे राजा तुजीन व उनकी रानी वाक्पुष्टा के समय का भीषण हिमपात व दुर्भिक्ष और उनके अभूतपूर्व त्याग-दाक्षिण्य की कथा मत्री सन्धिमति का पुनर्जीवन व राज्यप्राप्ति, उसका राज्य त्याग[2] आदि के मनोमुग्धकारी चित्रण पाठकों तथा श्रोताओ के मन-मानस को आप्यायित तथा विमुग्ध कर देते हैं।

तदनन्तर राजा मेघवाहन के शासनकाल की स्वर्गोपम समृद्धि, उसकी दया की अलौकिक कथायें, उसकी दिग्विजय, उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य तथा कविमातृगुप्त की कथा, मातृगुप्त के द्वारा कश्मीरमण्डल का शासन, राजा प्रवरसेन के अभूतपूर्व निर्माण कार्य, अलौकिक कार्यकलाप, राजा रणादित्य के पूर्व-जन्म की कथा, भ्रमरवासिनी देवी[3] एव उनके स्थान का सजीव चित्रण, राजपुत्री अनगलेखा की अनैतिकता आदि का चित्रण राजतरंगिणी के तीसरे तरंग की रमणीक घटनायें है।

कर्कोटक नागवशज राजा दुर्लभवर्धन की प्रेम-कथा व प्रेम प्राप्ति, राजा चन्द्रापीड की न्याय-कथाएँ एव सत्य-युगसन्निभशासन की अवतारणा, राजा ललितादित्य की सार्वभौमविजय[4], असख्य निर्माणकार्य व विद्वत्प्रियता, रस-शास्त्री चकुण की रासायनिक सिद्धता, राजा के अलौकिक कार्य, राजा जयापीड का शासन, देश-निर्वासन प्रत्यावर्तन तथा राज्य प्राप्ति उसके दु साहस की गाथाएँ, उसका ब्राह्मणो

१–सिद्ध सिद्ध सदेहोऽयमिति शङ्कर सुरादिवि ।
प्राघोषयस्ताडयन्त पटह सप्त वासरान ।। १–२८५ ।।

२–उज्झित स्वेच्छया तच्च प्रयत्ननापि नाशकत् ।
त रचीकारयितु कश्चित्फणी दमिव कञ्चुकम् ।। २–१६० ।।
अर्घालिंगमुपादाय सोऽथ प्रायादुदड्मुख ।
धौतवासा निरुष्णीष पद्भ्यामेव प्रजेश्वर ।। २–१६१ ।।

३–ददृश पुनरश्यालकमावासे चिरासितोम ।
स्थिता पुष्करिणीतीरे श्यामा पुष्करलोचनाम् ।। ३–४१३ ।।
गृहीतहारमुक्तार्घा बद्ध्वा पीनस्तनाञ्जलिम् ।
महार्हैं कानिकुसुमैर्यो वनेनार्चितङ्गकाम् ।। (३–४१४)

४–राजा श्री ललितादित्य सार्वभौमस्ततोऽभवत् ।
प्रादेशिकेश्वरस्रष्टुर्विधेर्बुद्धेरगोचर ।। (४–१२६)

पर अत्याचार तथा इट्टिन-ब्राह्मण द्वारा ब्रह्मदण्ड पतन का शाप तथा राजा का विनाश[1], राजा चिप्पट जयापीड का अभिचारक्रिया द्वारा वध तथा उसके मातुलो मे राज्याधिकार के लिए महायुद्ध आदि के मनाहारी चित्रण चतुथ तरङ्ग की घटनाओं मे दृष्टव्य हैं।

उत्पल वशज राजा अवन्तिवर्मा के महान् निर्माण-काय, उसके समय के जल-प्लावन तथा दुर्भिक्ष[2], महात्मा सुय्य के द्वारा भूमि का जल से उद्धार, राजा शकरवमा की दिग्विजय, लोभ के वशीभूत होकर उसके द्वारा प्रजा-पीडन व धनापहरण, एक चाण्डाल द्वारा छोडे हुये बाण के आघात से राजा का करुण अवसान, राजाओं को वशीभूत करने वाले तथा इच्छानुसार राजाओ को राज्य देने में समथ तन्त्रियो, पदातियों एव एकागो के ऐक्यबद्ध विशाल मडल, अनेक राजाओ की बुद्बुदो के समान क्षणभगुरता[3], श्रीढक्कनिवासी सग्राम डामर तथा राजा चक्रवर्मा के कथोपकथन, राजा चक्रवर्मा की चण्डाली हसी पर आसक्ति तथा उसके अनेक अनैतिक कार्यकलाप, अन्त मे डामरो के द्वारा राजा चक्रवर्मा का वध, राजा उन्मत्त अवन्तिवमा के नृशसतापूण काय, उत्पल वश का विनाश तथा ब्राह्मणो द्वारा कामदेवतनय यशस्कर का राज्याभिषेक[4] आदि घटनाओ के विशद वणन पचम तरग की कमनीय घटनावलियों मे प्रमुख है—

राजा यशस्कर की न्यायकथायें, राजा क्षेमगुप्त के दुराचार एव व्यभिचार, रानी दिद्दा द्वारा पौत्रो का विनाश[5], राज्याधिकार, मुख्यमन्त्री नरवाहन के

१—ब्रह्मदण्डकृत दण्ड मुक्त्वा दण्डधराधिप ।
अकाण्डदण्डस्रष्टाऽस्य यमो दण्डधरान्तिकम् ।। ४–६५६ ।।

२—दीन्नाराणा दशशती पञ्चाशत्यधिकाऽभवत् ।
धान्यखारीक्रये हेतुर्देशे दुर्भिक्षविप्लते ।। ५।७१ ।।

३—प्रापुश्चिरमवस्थान पार्थिवा न तदा क्वचित् ।
धारासम्पातसम्भूता बुद्बुदा इव दुर्दिने ।। ५–२७९ ।।

४—कथाप्यपिच्छेद क्षिप्र विप्रैरेव यशस्कर ।
क्ष्माधृतिप्रौढसामर्थ्ये सानुमानिव तोयदै ।। ५–४७७ ।।

५—वर्षे एकान्नपचाशे नीत पक्षे सिते क्षयम् ।
स मार्गशीर्षद्वादश्यामभाग्यप्रभा तया ।। ६–३११ ।।
पौत्रस्त्रिभुवनो नाम मार्गशीर्षे सितेऽहनि ।
पञ्चमेऽप्येकपचाशे, वर्षे तद्वत्तया हत ।। ६–३१२ ।।
अथ मृत्युपदे राज्यनाम्नि स्वैर निवेशित ।
क्रूरया चरम पौत्रो भीमगुप्ताभिधस्तया ।। ६–३१३ ।।

उत्थान व पतन, रानी के द्वारा भ्रातृपुत्र संग्रामराज का युवराजपद पर अभिषेक आदि घटनाओं का चित्रण षष्ठ तरंग का वैशिष्ट्य है।

सातवाहन वंश का शासन घटना चित्रण की प्रधानता से ओतप्रोत है। तुंग का राजकलश से वैर, तुरुष्क सेनापति हम्मीर के साथ राजसेना का युद्ध तथा तुंग की पराजय तुंग का पुत्र सहित वध, दुर्बुद्धि पाथ के दुष्कर्म, राजा अनन्तदेव तथा उसकी रानी सूर्यमती के पारस्परिक सम्बन्ध राजा की स्त्रीविधेयता, मन्त्री हलधर का स्वर्गवास[1], राजा का राजधानी परित्याग तथा विजयेश्वर क्षेत्र में निवास, राजा कलश द्वारा अनन्तदेव पर आक्रमण, कलश द्वारा विजयेश्वर क्षेत्र का अग्निदाह, राजा अनन्तदेव तथा रानी सूर्यमती का क्रोधावेश में कथोपकथन, राजा अनन्तदेव द्वारा आत्म हनन, रानी सूर्यमती का शाप व अग्निप्रवेश, हर्षदेव का कारागार व मुक्ति राजा कलश के अत्याचार व आत्महत्या, हर्षदेव का राज्यारोहण[2], उसके महान् निर्माणकार्य, दानदाक्षिण्य, विद्वत्प्रियता, नवीन मंत्रियों द्वारा राजा हर्ष की बुद्धि में परिवर्तन एवं उसके दुष्कर्म, राजा हर्ष के अनेक वधकार्य व मन्दिरावृत्त कार्य और प्रतिमाओं का भंग, उसके व्यभिचार कर्म, प्रजापीडन, देवमंदिरों का धनापहरण, उच्चल तथा सुस्सल के द्वारा राजा का विरोध, राजा के द्वारा कुलोच्छेद[3], कश्मीरमण्डल में दुःखों की परम्परायें, लूटमार, चोरी, महामारी, जलप्लावन, धनजन विनाश, सभी जीवनोपयोगी वस्तुओं की महार्घता, डामरों का वध एवं उच्छेद, अनेक षडयन्त्र आदि रोमांचक घटनाओं का चित्रण अत्यन्त मार्मिक तथा हृदयवेधक है। राजा हर्ष के शासनकाल की भयंकर घटनाओं का वर्णन करते हुए राजा के अत्याचारों का इस प्रकार चित्रण किया गया है—

> ग्रामे पुरेऽथ नगरे प्रासादो न स कश्चन।
> हर्षराजतुरुष्केण न यो निष्प्रतिमीकृतः ॥ ७–१०९५ ॥

तथा

> मण्डले राजदण्डेन क्षीणेनेव परिक्षते।
> क्षारपातोपमाऽन्यापि प्राभूद्दुःखपरम्परा ॥ ७–१२१६ ॥

१–अनन्तभूभुजो राज्ये तत्तत्स्खलितसङ्कटे।
आलवालष्टिप्रतिमो ययौ हलधरः क्षयम् ॥ ७–२६८ ॥

२–राजतरङ्गिणी, ७/८६७–८७३

३–वृद्धिमानीलया राज्ञा पुत्रपौत्रयोस्ततः।
ज्यायान्प्रमिमये लोग्वाराख्यो मूढदण्डैः कुतश्चिदा ॥ ७–१०६८ ॥
स्फुलिङ्गमिव सम्भाव्य तेजोविस्फूर्जितं शिशुम्।
जघान जयमल्लं च तद्द्विजयमल्लजम् ॥ ७–१०६९ ॥

कालान्तर में ब्राह्मणो ने उच्चल को योग्य समझ कर उसका हिरण्यपुर में राज्याभिषेक कर दिया। तदनन्तर राजा हर्ष का मन्त्रियो से वार्तालाप अत्यन्त सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया गया है। फिर उच्चल के पिता मल्लराज का वध[1], अनेक स्त्रियो का अग्निप्रवेश, सुस्सल द्वारा अग्निदाह[2], हर्ष पुत्र भोज का पलायन, राजा हर्ष की दुर्दशा तथा एकाकीपन, भोज का मरण, अन्त मे विश्वासघात से राजा हर्ष का वध आदि का बड़ा ही रोचक वर्णन सप्तम तरग मे प्रस्तुत किया गया है।

अष्टम तरग मे उच्चल की राज्यप्राप्ति, जनकचन्द्र व भीमादेव का युद्ध, डामरो का पलायन, कायस्थो का मूलोच्छेद[3], राजा उच्चल की न्याय की कथायें, राजा मे दूषणो का प्रारम्भ, सुस्सल तनय जयसिंह का जन्म, यशस्करवशज रड्ड, छुड्ड, व्यड्डादि की कथा, राजा उच्चल का वध, रड्ड की राज्यप्राप्ति व वध[4] सल्हण का राज्याभिषेक, सुस्सल का आगमन, राजा सल्हण का बन्धन, व सुस्सल का राज्याधिकार, गर्गचन्द्र का उत्थान व पतन राजा हर्ष के पौत्र भिक्षाचर का उदय, सर्वाधिकारी गौरक की कृपणता व धन सचय गर्गचन्द्र का वध, राजमन्त्रियो की उदासीनता और नवीन मन्त्रियो की नियुक्ति[5], सुस्सल का पतन, भिक्षाचर का उत्थान, राजा सुस्सल का पलायन, भिक्षाचर का चरित्र-चित्रण[6], उसकी भोग-वासना, आसक्ति, निरकुशता एव अव्यवस्था, सुस्सल का पुनरागमन[7], शरणार्थियो का अग्निदाह[8], द्वैराज्य एव कश्मीरमण्डल की शोचनीय दशा, डामरो द्वारा गृहदाह, लूटपाट, विप्लवादि का वर्णन, भिक्षाचर का पलायन, सुस्सल का वध, राजा जयसिंह का उत्थान, भिक्षाचर का वध[9], लोहरप्रान्त मे लोठन का राज्याभिषेक महामन्त्री लक्ष्मक का अपमान, लोठन का पतन व मल्लार्जुन का राज्याभिषेक, मल्लार्जुन का पतन, सुज्जि का उत्थान व पतन तथा वध, सन् ११३३ का विप्लव, राजा जयसिंह के धार्मिक व अनेक निर्माण कार्य, कश्मीर के अनेक राजनीतिक सघर्ष, युवराज भोज का अन्तर्द्वन्द्व व मनोव्यथा[10], भोज की राजा से सन्धि व राजा के पास निवास[11] आदि की मनोरम कथाओ का हृदयकारी वर्णन महाकवि कल्हण

१–राजतरगिणी, ७–१४७१ से १४८४ तक

२–आद्ववि पुरवगामा प्रज्वलन्नोघरहितना ।
अधावद्विजयक्षेत्र सोऽप्येदुरय सुस्सल ॥ ७–१४९८ ॥

३–सेतेतिहासिनी नीति श्रद्धयानेन सवदा ।
येन सपठता श्लोक कायस्थोन्मूलन क्रमम् ॥ ८–८७ ॥

४–राजतरगिणी, ८/३४२–३४८, ५–वही, ८/६२७–६३८, ६–वही, ८/८४३–८४९, ७–वही, ८/९४६–९५८, ८–वही ८/९७३–९९४, ९–वही, ८/१७५६–१७६४, १०–वही, ८/३०२९–३०३८, ११–वही, ८/३२५४–३२५७

ने किया है। ये सब कथायें महाकवि की घटनाचित्रण की विशेष रुचि के प्रबल प्रमाण हैं। ये कथायें इतनी मनोरंजक तथा हृदयस्पर्श हैं कि वे पाठकों अथवा श्रोताओं की जिज्ञासा को अनवरत जागरूक बनाये रहती हैं।

कालक्रमपूर्ण-घटना वर्णन

महाकवि कल्हण ने अपने ग्रन्थ राजतरङ्गिणी में कालक्रमपूर्ण-घटना वर्णन प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने महाभारतकाल से लेकर राजा जयसिंह (सिंहदेव) के शासनकाल के २१वें वर्ष तक अर्थात् ४२२५वें लौकिक वर्ष (११४९–५० ई०) का कालक्रमपूर्ण इतिहास लेखनीबद्ध किया है। उन्होंने लिखा है कि कलियुग में कश्मीर-मंडल में कौरव-पाण्डव के समकालीन तृतीय गोनन्द तक ५२ राजे हो चुके थे। *कलियुग में उन बावन राजाओं ने १२६६ वर्ष तक कश्मीर देश पर शासन किया।* कश्मीर के राज्यासन को अलंकृत करने वाले राजाओं का शासनकाल तथा भुक्त कलि का समय दोनों बराबर है। कलि के ६५३ वर्ष बीत जाने पर कौरव-पाण्डव हुये थे। इस समय शक-काल के २४वें लौकिक वर्ष में १०७० वर्ष बीत चुके हैं।

तीसरे गोनन्द के समय से लेकर आज तक प्रायः २३३० वर्ष बीते हैं। अब उन बावन राजाओं के शासनकाल का १२६६वाँ वर्ष है। युधिष्ठिर का शक-काल २५२६ माना जाता है। महाकवि कल्हण महाभारत युद्ध को द्वापर युग के अन्त में न मानकर उसे कलिकाल के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर मानते हैं। गणना करने पर निम्नलिखित तथ्यों का उद्घाटन होता है–

१ गत कलि =	६५३ वर्ष
२ बावन राजाओं का शासनकाल =	१२६६ वर्ष
३ तीसरे गोनन्द से अब तक अर्थात् (कल्हण के समय तक) =	२३३० वर्ष
कुल योग =	४२४९ वर्ष

अथवा

१ गत कलि =	६५३ वर्ष
२ युधिष्ठिर शक-काल पू० =	२५२६ वर्ष
३ शक-काल अब तक = (अर्थात् कल्हण के समय तक)	१०७० वर्ष
कुल योग =	४२४९ वर्ष

कलि वर्ष का प्रारम्भ ३१०१ ई० पू० माना जाता है।[2] इस प्रकार कल्हण

१–कल्हणकृत राजतरङ्गिणी, १/४९, २–देखो, इसी ग्रंथ में "कल्हण के ग्रंथ व उनकी तिथि" वाले द्वितीय अध्याय में।

का समय ४२४९–३१०१ = ११४८ ई० आता है। इस प्रकार महाकवि कल्हण ने ६५३ वर्ष गत कलि से ११४८ ई० तक का कालक्रमपूर्ण इतिहास अपने ग्रंथ में प्रस्तुत किया है।

कल्हण ने प्रथम तरङ्ग में गोनन्द तृतीय से अन्ध युधिष्ठिर तक के इक्कीस राजाओं का शासनकाल १०१४ वर्ष ९ दिन दिखलाया है।[1] अन्ध युधिष्ठिर के पलायन करने पर राज्य मन्त्रियों ने राजा विक्रमादित्य के वंशज प्रतापादित्य को देशान्तर से लाकर राज सिंहासन पर आसीन किया।

दूसरे तरङ्ग में राजा विक्रमादित्य के वंशज राजा प्रतापादित्य से लेकर मन्त्री सन्धिमति (आर्यराज) तक ६ राजाओं के १९२ वर्ष के शासनकाल का वर्णन दिया हुआ है।[2]

तदनन्तर अन्ध युधिष्ठिर के प्रपौत्र गोपादित्य के पुत्र मेघवाहन को गान्धार देश से लाकर राजा बनाया गया। तीसरे तरङ्ग में मेघवाहन से लेकर बालादित्य तक दस राजाओं का ५८९ वर्ष ६ मास १ दिन के शासनकाल का कालक्रमपूर्ण वर्णन दिया गया है।

फिर राजा बालादित्य सन्तानरहित होने के कारण उसका जामाता दुर्लभ-वर्धन कश्मीर का शासक बना। दुर्लभवर्धन से लेकर राजा चिप्पट जयापीड तक १४ शासकों ने कश्मीर मंडल पर शासन किया। चिप्पट जयापीड के पश्चात् अजिता-पीड, अनङ्गापीड तथा उत्पलापीड तीन राजे और हुये। इस प्रकार चौथे तरङ्ग में १७ शासकों के २६० वर्ष, ६ मास व १० दिन के शासनकाल का वर्णन है।[3] महा-कवि कल्हण ने चिप्पट जयापीड की मृत्यु का सप्तर्षिक सम्वत् ३८८१वां वर्ष लिखा है[4], अर्थात् राजा चिप्पट जयापीड की मृत्यु सन् ३८८१–३०७६ = ८०५ ई० में हुई। उसने १२ वर्ष शासन किया।[5] इस प्रकार उसका शासनकाल ७९३ ई० से ८०५ ई० तक आता है। उसके बाद आने वाले तीन राजाओं का शासनकाल निम्नलिखित है–

१ अजितापीड–	८०५–८३१ ई०
२ अनङ्गापीड–	८३३–८३६ ई०
३ उत्पलापीड–	८३६–८५५ ई०

१–चतुर्दशाधिकं वर्षसहस्रं नव वासराः।
मासाश्च विगता अस्मिन्नेकविंशतिराजसु ॥

२–शतद्वये वत्सराणामष्टाभिः परिवर्जिते ।
अस्मिन्द्वितीये व्याख्याता षट् प्रख्यातगुणानृपाः ॥

३–समाशतद्वये षष्ट्युते मासेषु षट्सु च ।
निर्दशाहेषु कार्कोटवंशे सप्तदशाभवन् ॥

४–राजतरंगिणी, ४/७०३, ५–वही, ४/६८७

अर्थात् चतुर्थ तरंग के राजाओं के शासनकाल का अन्त ८५५ ई० में हुआ।

तदनन्तर चिप्पट जयापीड के मातुल उत्पल के पौत्र अवन्तिवर्मा को कश्मीर का शासक बनाया गया। वह सन् ८५५ ई० में राजसिंहासन पर आसीन हुआ। अवन्तिवर्मा से शूरवर्मा तक बारह राजाओं ने राज्य किया। इनका वर्णन महाकवि कल्हण ने पंचम तरंग में किया है। इनका कुल शासनकाल ८३ वर्ष ४ मास है[1], जो (८५५ + ८४) ९३९ ई० तक आता है।

उत्पलवंश का अन्त होने पर ब्राह्मणों ने विशाचपुर निवासी वीरदेव के पौत्र यशस्करदेव को राज्याभिषिक्त कर दिया।[2] वह ९३९ ई० में गद्दी पर बैठा।

तदनन्तर षष्ठ तरंग में वर्णित राजा यशस्करदेव से लेकर रानी दिद्दा तक १० शासकों ने कश्मीर मंडल पर शासन किया। उनका शासनकाल ६४ वर्ष ८ मास, १५ दिन का है[3] और वह (९३९ + ६४ =) १००३ ई० तक आता है। रानी दिद्दा ने अपने पौत्रों की जीवनलीला समाप्त ही करा दी[4] थी और स्वयं राज्याधिकारिणी बन गई थी। उसने सातवाहन वंशज अपने भ्रातृपुत्र संग्रामराज को युवराजपद पर अभिषिक्त किया था, अतएव रानी के देहान्त के पश्चात् सन् १००३ ई० में संग्रामराज सिंहासनारूढ हुआ।[5]

सप्तम तरंग में राजा संग्रामराज से लेकर राजा हर्षदेव तक छः राजाओं के ९८ वर्ष के शासनकाल का वर्णन दिया गया है।[6] इस प्रकार यह शासनकाल (१००३ + ९८ =) ११०१ ई० तक आता है।

अष्टम तरंग में सातवाहन वंशज मल्लराज के पुत्र उच्चल से लेकर सुस्सल तनय सिंहदेव (जयसिंह) तक छः राजाओं के ४८ वर्ष के शासनकाल का विशद चित्रण प्रस्तुत किया गया है।[7] इस प्रकार यह शासनकाल सन् (११०१ + ४८ =) ११४९ ई० तक आता है। महाकवि कल्हण ने इसी वर्ष तक (४२२५ लौकिक

१–त्र्यशीतिरब्दा समाशीतौ मासेषु च चतुष्टयम्।
कल्यपालाष्टक रक्ष्याहृतस्तोसचिवा अपि॥

२–वही, ५/४६९–४७३।

३–अत्र वर्षचतुष्षष्टौ मासेष्वष्टे दिनेषु च।
अष्टस्वभूवन्भूपाला दश भूभोगभोगिन॥

४–राजतरङ्गिणी, ६/३११–३१३, ५–वही, ६/३६५।

६–समाप्ठानवताब्दस्या व्यवहोनाया महीभुज।
षड्श्रीदयराजस्य वंशे जाता प्रकीर्तिता॥

७–सुन सुस्सलभूभर्तु सप्रश्रयप्रतिमक्षम।
नन्दय मेदिनीमास्ते जयसिंहो महीपति॥ ८–३४४८॥

वर्ष–३०७६ = ११४९ ई०) का वर्णन अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है–

समार्चविशती राज्यावाप्ते प्राग्भूभुजो गता ।
तावत्येवाप्नराज्यस्य पञ्चविंशनिवत्सरे ।। ८–३४०४ ।।

इस प्रकार महाकवि कल्हण ने कलि के ६५३ वर्ष व्यतीत होने अर्थात् महाभारत युद्ध से प्रारम्भ करके सन् ११४९ ई० तक का कालक्रमपूर्ण घटना वर्णन करके ऐतिहासिक महाकाव्य की अभूतपूर्व कृति प्रस्तुत की है। सभी घटनाओं का वर्णन महाकवि कल्हण ने कालक्रम को दृष्टिगत रखकर किया है। कहीं-कहीं काल-गणना कृत्रिम दीखती है। ग्रन्थ के आरम्भ के तीन तरङ्गों मे अर्थात् ईस्वी सन् की सातवीं शताब्दी के आरम्भ तक काल-गणना अविश्वसनीय-सी लगती है।

राजा रणादित्य का शासनकाल ३०० वर्षों का लिखकर कवि ने इतिहास के जिज्ञासुओं को भ्रम मे डाल दिया है। वास्तव मे यह सब महाकवि कल्हण की दन्तकथाओं पर आस्था रखने का ही परिणाम कहा जा सकता है। कालक्रमपूर्ण घटनाओं का चित्रण करने मे महाकवि कल्हण अद्वितीय हैं। इसमे तो बाणभट्ट, पद्मगुप्त अथवा बिल्हण भी उनकी तुलना मे नहीं आते।[1] लगभग ३६०० वर्षों के कश्मीर मडल के इतिहास की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित करके कल्हण ने अपने परवर्ती महाकाव्यकारों, इतिहासकारों एव कथाकारों का बड़ा उपकार किया है।

निष्पक्षदेशकाल दशा वर्णन

महाकवि कल्हण ने अपने ग्रन्थ राजतरङ्गिणी के प्रारम्भ मे ही अपने ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रणयन का प्रयोजन स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि–

श्लाघ्य स एव गुणवानागद्वेषवहिष्कृता ।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ।। १–७ ।।

+ +

१–देखिए–दास गुप्ता व डे, 'ऐ हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ ३५७।

"It will be seen that the scope of kalhana's work is comprehensive, but its accomplishment is uneven If the earlier part of his chronicle is defective and unreliable and if his chronology is based upon groundless assumptions, he does not move in the high clouds of romance and legend when he comes nearer his own time but attains a standard of vividness and accuracy like which there is nothing anywhere in sanskrit literature, nothing in his predecessors Bana, PadmaGupta or Bilhans"

पूर्वैर्बद्ध कथावस्तु मयि भूयो निबध्नति ।
प्रयोजनमनाकर्ण्य वैमुख्यं नोचितं सताम् ॥ १-८ ॥
दृष्टं दृष्टं नृपोदन्तं बद्ध्वा प्रमयमीयुषाम् ।
अर्वाक्कालभवैर्वार्ता यत्प्रबन्धेषु पूर्यते ॥ १-९ ॥

महाकवि ने कवि सुलभ चाटुकारिता को अपने ग्रन्थ में प्रश्रय नहीं दिया है। उन्होंने एक निष्पक्ष इतिहासकार का कर्त्तव्य पूर्णरूपेण निभाया है। जिस राजा में जो गुण थे उनका उन्होंने जी खोलकर वर्णन किया और जो अवगुण थे, उनको डंके की चोट पर जन-साधारण के समक्ष प्रकट कर दिया। सो भी सप्रमाण और तिथि-सम्वत् समेत।

महाकवि ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य में स्पष्टवादिता का पूर्ण परिचय दिया है। उन्होंने देश, काल की सामाजिक स्थिति तत्कालीन राजाओं के गुण-दोष, मन्त्रियों के कार्यकौशल तथा दूषण राजसेवकों की कृतघ्नता तथा स्वामिभक्ति का बड़ा ही सुन्दर खाका खींचा है। मित्र और शत्रु दोनों को अत्यन्त निष्पक्ष भाव से तथा सच्चाई के साथ अंकित किया गया है। अपने समय के इतिहास को तो महाकवि ने न्यायाधीश की तरह पक्षपात शून्य होकर देखा है और उस समय के राजाओं के दूषणों तथा उनके विपक्षियों के गुणों का विशद् चित्रण कवि ने किया है।

सप्तम तथा अष्टम तरंग के कथा-भाग में कल्हण ने जिस सावधानी का परिचय दिया है, वह उसके वर्णनपाटव तथा सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का अप्रतिम निदर्शन है। महाकवि की स्पष्टवादिता तथा पक्षपात शून्यता उसे एक विवेचनशील इतिहासकार के पद पर अधिष्ठित कर देती है।

कल्हण ने परम प्रतापी नरेश अशोक तथा परम विजयी एवं वीरश्रेष्ठ राजा जलौक का हृदयग्राही वर्णन किया है।

राजा नियर की लम्पटता तथा फलस्वरूप सुश्रवानाग के कोप से नरपुर के विनाश का विशद चित्रण खींचकर कल्हण ने अपनी निष्पक्षता का प्रमाण दिया है। तदनन्तर राजा तुजीन तथा रानी वाक्पुष्टा द्वारा दुर्भिक्षग्रस्तों की अभूतपूर्व रक्षा, राजपुत्री अनंगलेखा के व्यभिचार की गाथा, राजा मिहिरकुल की नृशंसता राजा कुवलयापीड का असाधारण सिद्धिलाभ, जज्ज का स्वामि-द्रोह एवं वध, राजा जयापीड के प्रारम्भ के उत्कृष्ट निर्माणकार्य एवं बाद के क्रूरतापूर्ण अत्याचार तथा ब्रह्मदण्ड पतन के शाप से उसका विनाश, राजा ललिता-पीड की कामुकता, राजा पंगु, पार्थ आदि राजाओं की क्षण-भंगुरता, राजा चक्रवर्मा की चण्डाली हंसी पर आसक्ति एवं उसके लज्जाजनक कार्य, नृप के अनुजीवियों का राज-सैनिकों के साथ युद्ध करके मरण, राजा हरिराज की वन्दनीयता, राजा

कलश की उच्छृङ्खलता एवं कामुकता, विज्ज की राजा कलश के प्रति स्वामिभक्ति, रानी सहजा की पति-भक्ति, राजा हर्ष के महत्त्वपूर्ण तथा दुष्टतापूर्ण कार्यकलाप, उसके मन्त्रियों की धूर्तता एवं अयोग्यता, राजा की कुलोच्छिन्नता, प्रतिमाविध्वंस एवं बलात् धनापहरण, उसके मूर्खतापूर्ण कार्यों से कश्मीरमण्डल में कष्टपरम्पराओं का सूत्रपात, राजा हर्ष का एकाकीपन तथा क्रन्दनतापूर्ण वध, राजा उच्चल पर रड्डादि का आक्रमण तथा सोमपाल व शृंगार की राजभक्ति, राजा भिक्षाचर की भोगसामग्रियों में अनुरक्ति, राजा सुस्सल का वध, राजा जयसिंह की राजनीति चातुरी आदि का निष्पक्ष वर्णन प्रस्तुत करके महाकवि कल्हण ने अपनी स्पष्टवादिता का स्पष्ट परिचय दिया है। उसने अपनी आँखों के समक्ष घटित होने वाली घटनाओं का तो और भी निष्पक्षतापूर्वक वर्णन किया है। यही कारण है कि ऐसी ऐतिहासिक दृष्टि तथा विवेचनात्मक रचना-चातुरी ने महाकवि को सच्चे कलाकार के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है। राजा हर्षदेव के शासनकाल के विषय में कवि का कथन है कि—

यथाकथंचिद्व्युत्क्रान्ता बह्व्य पृथिवीभृत ।
प्रतीनिविषमो मार्ग कष्टमापतितोऽधुना ॥ ७–८६८ ॥
सर्वोत्साहोदयक्षेत्रं सर्वानुल्लासदूतिका ।
सर्वव्यवस्थाजननी सर्वनीतिव्यपोहकृत् ॥ ७–८६९ ॥
उद्रिक्तशासनस्फूर्तिरुद्रिक्ताज्ञाक्षयक्षिति ।
उद्रिक्तत्यागसम्पत्तिरुद्रिक्तहरणाग्रहा ॥ ७–८७० ॥
कारुण्योत्सेकसुभगा हिंसोत्सेकभयंकरी ।
सत्कर्मोत्सेकललिता पापोत्सेककलङ्किता ॥ ७–८७१ ॥
स्पृहणीया च वर्ज्या च वन्द्या निन्द्या च सर्वतः ।
निश्चोद्या चोपहास्या च काम्या शोच्या च धीमताम् ॥ ७–८७२ ॥
आशास्या चापनीर्या च स्मार्या त्याज्या च मानसात् ।
हर्षराजाभ्या चर्चा कथा व्यावर्णयिष्यते ॥ ७–८७३ ॥

महाराज हर्षदेव की प्रशंसा करते हुये कवि लिखता है—

नूनं स तैजसैरेव ससृजे परमाणुभि ।
कुतोऽन्यथाभूत्प्रसवे दुष्प्रेक्ष्यो महतामपि ॥ ७–८७४ ॥
न मर्त्येषु न देवेषु तद्रूपो दृश्यते क्वचित् ।
दानवेन्द्रेषु स प्राज्ञैः परमुत्प्रेक्ष्यते यदि ॥ ७–८७५ ॥
सिंहद्वारे नरपतेर्नानाजनसमाश्रिते ।
सर्वदेशभ्यो श्रागमासप्रानीकृता इव ॥ ७–८८२ ॥

स्वसेवकाननादाय रक्षन्सस्याव्यतिक्रमम् ।
पित्र्येभ्य एव मन्त्रिभ्य सोऽधिकारान्समर्पयत् ॥ ७–८८६ ॥

राजा उच्चल के दूषणों का भी कवि ने निर्भीकतापूर्वक उद्घाटन किया है–

स तादृशोऽपि राजेन्द्र चन्द्रमा सन्कलाभवत् ।
मात्सर्याविष्टवैवश्यादोषोल्कावपभीषण ॥ ८–१६२ ॥
औदार्यशौर्यधैर्यगुणतारुण्यमत्सर ।
बभूव सन्यातीताना मानप्राणहरो नृणाम ॥ ८–१६३ ॥
अन्योन्यद्वैषमुत्पाद्य सख्यातीता महाभटा ।
युद्धयद्वासुना तेन द्वन्द्वयुद्धेषु पातिता ॥ ८–१६९ ॥
स नाभूदुत्सव कश्चित्तस्य यत्र नराग्रणे ।
भूमिर्न सिक्ता रक्तेन हाहाकारा न चोद्ययौ ॥ ८–१७१ ॥

राजा उच्चल के वध के अनन्तर कश्मीरमण्डल के राजा रड्ड का वर्णन करते हुये कवि की उक्ति है–

वक्रोऽथ सासिकवचो रड्ड शोणितमण्डित ।
श्मशानाश्मनि वेताल इव सिंहासने पदम ॥ ८–३४२ ॥
समुन्नं इव विच्छौघ अकालजलदोदय ।
स दोषैवद्धमूलानामायाना तत्र दिद्युते ॥ ८–३४३ ॥
निशां प्रहरमात्रश्च राज्य कृत्वा स लब्धवान ।
द्रोहट्टच्छट्टस राजाख्या गति कुट्टनिमाभगात ॥ ८–३५६ ॥
यशस्करकुले जन्म दोर्घ्रभिस्तै प्रमाणितम ।
क्षणभङ्गुयमजद्राज्य यस्माद्वराटिदेववत ॥ ३५७ ॥

राजा सल्हण के शासनकाल की दुर्व्यवस्था का चित्रण करते हुये महाकवि कल्हण ने लिखा है–

न मन्त्रो न च विक्रान्तिन कौटिल्य न चार्जवम् ।
न दातृता न लुब्धत्व तस्यो द्रिक्त किमप्यभूत् ॥ ८–४१७ ॥
तद्राज्ये राजधान्यान्तमध्योऽ्यपि मलिम्लुच ।
लोक मुमूर्षुरन्याव्यसचारस्य कथैव का ॥ ८–४१८ ॥

राजा सुस्सल के राज्य ग्रहण करने पर कवि प्रजा के मनोभाव का वर्णन करते हुये लिखता है–

तेन सिंहासने न्यस्ते भास्वतेव नभस्तले ।
क्षणादेवाखिलो लोक क्षोभमब्धिरिवात्यजत् ॥ ८–४८१ ॥
विनोशयस्त्र सन्द्रोहावेक्षणक्षोभन सदा ।
व्याघलोके व्यास वक्त्रो मृगराज इवाभवत् ॥ ८–४८२ ॥

उसके चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध मे कवि का उल्लेख है—

कालविरसमयत्यागी प्रगल्भ प्रतिभानवान् ।
इङ्गितज्ञो दीर्घदृष्टि स एवान्यो न कोऽप्यभूत् ।। ८–४८६ ।।
अधिक कोपि कोप्यून कोपि तस्य समो गुण ।
दोषोऽथ वा पूर्वजस्य स्वभावैर्नयेऽप्यदृश्यत ।। ८–४८७ ।।

राजा सुस्सल के दूषणो का उद्घाटन करते हुए कवि का उल्लेख दृष्टव्य है कि—

दु सहातङ्कदूतेन लोभेन क्षोभितस्तत ।
अदण्डयच्च वा स्तव्यानतयच्चाल्पता व्ययम् ।। ८–६३६ ।।

सुस्सल ने क्रोधावेश मे अनेक अनैतिकतापूर्ण कार्य किये । उसने नवीन मन्त्रियों को नियुक्त किया । राजकार्य की अनभिज्ञता होने से उन मन्त्रियो ने सारा कोष रिक्त कर डाला और राज्य पर अचानक भीषण अर्थसंकट आ उपस्थित हुआ । राजा के व्यवहार से उसके विश्वस्त सैनिक भी तटस्थ हो गये । उसने ब्राह्मणो को भी आतंकित कर दिया—

आतङ्कोर्येजितैर्विप्रै कृतप्रायै पुरे पुरे ।
वह्नौ हुताग्निभिर्घोरा कुकीलिरपद्यत ।। ८–६५८ ।।

राजा सुस्सल ने डामरो से क्रुद्ध होकर उनका वध करवा दिया । उसने राजा हर्षदेव की विनाशकारी नीतियो का अनुसरण किया—

येनैवानीतिमार्गेण हारित हर्षभूभुजा ।
निन्दन्नप्यादधे त स राज्ये व्यवहरन्स्वयम् ।। ८–६८१ ।।

राजा का विश्वास नष्ट हो चुका था । वह अपने बान्धवों को भी विद्रोही समझने लगा था । राजा के सेवको ने राजा पर आक्रमण करके उसे लूट लिया । तदनन्तर राजा सुस्सल के पलायन तथा भिक्षाचर के राज्य ग्रहण का जीता-जागता चित्र अंकित किया गया है । राजा भिक्षाचर के उत्थान व पतन का निष्पक्ष चित्रण महाकवि कल्हण ने किया है ।

राजा भिक्षाचर तो नाममात्र का राजा था । वस्तुत राज्यलक्ष्मी सर्वाधिकारी बिम्ब की चेरी थी ।

मुग्धे राज्ञि प्रमतेषु मन्त्रिगर्वेषु दस्युषु ।
उत्थानोपहृत राज्य नवावेऽपि बभूव तत् ।। ८–८६६ ।।
स्त्रीभिर्नवनवाभिश्च भोज्यै प्राज्यैश्च रञ्जित ।
भिक्षुर्न क्षिप्ट कर्तव्य सुखानुभवमोहित ।। ८–८६७ ।।
तथा

भिक्षाचर प्रयाते तु त्रिग्वे विगलिताङ्कुश ।
न कारामव्यवस्थाना मूढ स्थानमजायत ।। ८–८८८ ।।

तदनन्तर राजा सुस्सल के पुरागमन तथा वध, राजा जयसिंह के राज्याधिकार, भिक्षाचर की वीरता एवं मरण का निष्पक्ष वर्णन महाकवि ने किया है–

को वराको मद्विधानां सोऽग्रे पवमहीभुजाम् ।
उदासीनासङ्करयेन ते त्वस्याग्रे न किंचन ।। ८–१७७० ।।
श्रीसुधाररदरयशश्शशाङ्कादिप्रकाशने ।
दुष्टविप्रस्वभावोऽन्नियथाश्य पार्थिवस्तया ।। ८–१७८० ।।
नम्र तथाद्भुत भाव दर्शयन्भुवनादभुतम् ।
परिच्छेदानुभावत्व न वेषामपि गच्छति ।। ८–१७८१ ।।

महाकवि ने राजा जयसिंह के निरभिमान, दया, औदार्य, धैर्य, भेदनीति आदि का वर्णन निष्पक्ष रूप से किया है। राजा के निर्माणकार्यों[1] का भी कवि ने स्पष्ट चित्रण किया है। उस राजा ने कश्मीर मण्डल को निष्कंटक एवं सुखी बना दिया–

इत्थ पृथ्वीपति कृत्वा कण्टकपातनम् ।
अपेतविघ्न सौजन्यनिघ्ना व्यधित मण्डलम ।। ८–२३८४ ।।
काले श्रीललितादित्यावन्तिवमादिभूभुजाम् ।
सिद्ध न यत्प्रतिष्ठादि निष्ठा तदधुना गतम् ।। ८–२४०० ।।

स्वय ब्राह्मण होते हुये भी महाकवि कल्हण ने ब्राह्मणों की उचित प्रशसा के साथ-साथ उनके दूषणों पर भी दृष्टिपात किया है। यह तथ्य महाकवि की निष्पक्षता का प्रबल प्रमाण है।

ब्राह्मणों की प्रशसा करते हुए कवि की उक्ति है कि—

मनुमान्धातृरामाद्या बभूवु प्रवरा नदा ।
अन्वभावि नदऽग्रेपि ब्राह्मणेन विमानना ।। ४–६४१ ।।
सेन्द्र स्वर्गं सशैला क्ष्मा सनापेन्द्र रसातलम ।
निर्दग्धु हि क्षणेनैव विप्रा शक्ता प्रतापिता ।। ४–६४२ ।।

दुष्ट ब्राह्मणों की नीचता का वर्णन करते हुए कवि का उल्लेख है–

प्रायोपवेशकुशला शक्ताम्स्वन्ते न कुत्रचित् ।
मिथ्यासम्भावनाभूमिर्भूपाना ब्रह्मबान्धव ।। ७–१६११ ।।

ए० बी० कीथ लिखते हैं[2]–

१–राजतरङ्गिणी ८/२३८९, २३९०, २३९६, २४१५ २४१६।
२–ए० बी० कीथ, "ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर", पृष्ठ १६८ तथा कल्हणकृत राजतरङ्गिणी, प्रथम तरङ्ग, ७वां श्लोक ।

We need not doubt that Kalhana endeavoured to attain his own ideal—'that noble minded poet alone merits praise whose word like the sentence of a judge keeps free from love or hatred in recording the past'

उपदेश ग्रहण की कला

महाकवि कल्हण उपदेश ग्रहण की कला के चतुर पारखी थे। स्थान-स्थान पर विभिन्न प्रकार के सुन्दर उपदेशों से सवलित करके कवि ने अपने ग्रंथ की मनोज्ञता का सम्वर्द्धन किया है। इसलिये ग्रंथ के प्रारम्भ में ही उन्होंने लिखा है कि—

मनोज्ञप्राक्तनानन्तव्यवहार सुचेतस ।
कस्येदृशो न सन्दर्भो यदि वा हृदयंगम ॥ १–२२ ॥

अर्थात् 'सुन्दर रीति से वर्णित प्राचीन काल के अनेक व्यवहारों से परिपूर्ण यह ग्रंथ किस सहृदय प्राणी के लिये आनन्ददायक न होगा ?'

वस्तुत ऐतिहासिक वर्णनों में इन उपदेशों का समावेश करके महाकवि ने अपने श्रोताओं अथवा पाठकों की रुचि को अविच्छिन्नता तथा उनके मनोरंजन का अजस्रता प्रदान की है। उनकी प्रबन्ध-पटुता इतनी उत्कृष्ट थी कि विभिन्न ऐतिहासिक वृत्तों में विभिन्न स्थलों पर उन्होंने विभिन्न उपदेशों का उचित रूप से सन्निवेश करके उन्हें उन वृत्तों का अभिन्न अंग बना दिया है।

महाकवि की दृष्टि बड़ी पैनी थी। प्रकृति और समाज की छोटी-से-छोटी घटनाओं से उन्होंने उपदेश ग्रहण किये हैं। यही कारण है कि उनके ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ में उपदेशों का निष्यन्द प्रवाहित हुआ है। राजतरंगिणी वास्तव में उपदेशों का एक अक्षय कोश है।

ए० बी० कीथ का कथन है[1]—

"The influence of the epic combines with that of poetics to produce the second mark of Kalhana's chronicle, its didactic tendency Stress is even laid on the impermanence of power and riches the transient character of all earthly fame and glory and the retribution which reaches doers of evil in this era future life The deeds of kings and ministers are reviewed and censured or *commanded by the rules of the Dharmasastra or Nitisastra* but always with a distinct moral bids In this we certainly see the influence of the Mahabharat in its vast didactic portions and its general tendency to inculcate morality but we cannot say

१—कीथ, 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ १६५

whether it was original in Kalhana or had already been noted in the works of one or more of his predecessors"

दासगुप्ता व डे का कथन है[1]—

"The didactic tendency may have been imbibed from the epics but Kalhana's motive in selecting as his text the theme of earthly fame and glory and his comparatively little interest in mundane events for their own Sake must have also been the result of his particular experience of men and things"

महाकवि कल्हण का समय कश्मीरमण्डल की राजनीतिक उथल पुथल एव क्रान्ति का समय था। महाकवि के भावुकतापूर्ण मस्तिष्क पर उसके आस-पास होने वाले द्रुतगामी परिवर्तनों का बडा प्रभाव पडा। राजा हर्षदेव उच्चल तथा सुस्सल की दु खान्त ऐतिहासिक घटनाओं ने उसकी कोमल कवि-सुलभ कल्पना-भित्ति पर अनेक प्रकार के गम्भीर चित्र अकित कर दिये थे तभी तो महाकवि ने अपनी रचना मे शान्तरस को मूर्द्धन्य स्थान प्रदान किया है—

क्षणभगिनी जन्तूना स्फुरिते परिचिन्तिते ।
मूर्धाभिषेक शान्तस्य रसस्यात्र विचार्यताम ।। १–२३ ।।
तदम न्दरसस्यन्दसुन्दरेय निपीयताम् ।
श्रोत्रशुक्तिपुटै स्पष्टमङ्ग राजतरगिणी ।। १–२४ ।।

इस प्रकार महाभारत आदि महाकाव्यो एव महाकवि की सम-कालीन परिवर्तनशील घटनाओ ने महाकवि की रचना मे उपदेशात्मक प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव किया। उसकी उपदेश-ग्रहण की कला का यही रहस्य है।

महाकवि की इस कला के कतिपय उदाहरण नीचे द्रष्टव्य हैं—विशाल ब्राह्मण गे सुश्रवा नाग कहता है—

अभिमानवता ब्रह्मन् युक्तायुक्तविवेकिनाम ।
युज्यतेऽवश्यभाव्याना दु खानामप्रकाशनम् ।। १–२२६ ।।

अपनी पत्नी अनगलेखा व व्यभिचारा से क्रुद्ध दुर्लभवर्धन की विवेकशीलता की सराहना करते हुये कवि की उक्ति है—

नमस्तस्मै तत काऽग्या गण्यते वशिना धुरि ।
जीयन्ते येन पर्याप्ता ईर्ष्याविषविषूचिका ।। ३–५१२ ।।

राजा ललितादित्य दूत द्वारा अपना आदेश मन्त्रियो को भेजकर कहते हैं—

विनिर्गताना स्वभुव सरिता सलिलाकर ।
न निर्व्याजजिगीषूणा दृश्यते सवधि क्वचित् ।। ४–३४३ ।।

१–दासगुप्ता व डे 'ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर' पृष्ठ ३५८

लिखते हैं¹ कि–

He (Kalhana) studied also coins and inspected buildings, while he was clearly a master of the topography of the valley

सतीसर सरोवर, वितस्तानदी, पापसूदनतीर्थ, भेड़पर्वत, नन्दिक्षेत्र के शिवालय, चक्रधर, विजयेश, केशव एवं ईशान आदि देवालय, गान्धार व कान्यकुब्ज देश, लोलोर नगर, लेदरी नदी, जालोर, शमाङ्ग व सलाशनार नामक अग्रहार, शुष्कलेत्र, वितस्तात्र नामक स्थानों के स्तूप, श्रीनगर, श्री विजयेश्वर नामक शकर भगवान, नन्दीश तथा सोदरतीर्थ, गुह नामक सेतु, हुष्कपुर, जुष्कपुर तथा कनिष्कपुर नगर, बटेश्वर नामक शिवलिंग, नरपुर नगर, रमण्याटवी, जामातृ सरोवर, हिरण्याक्ष नगर, खोल, खागिक, शाहाडियाम, स्कन्दपुर, शमांग, ससमुख आदि ग्रामों का प्रथम तरङ्ग मे, दुर्गावती, भगवान् तुंगेश्वर का मन्दिर, कलिका नगरी, कलीमुष व रामुष नामक अग्रहार, वावपुष्टाटवी, सादराग्मुतीर्थ आदि का द्वितीय तरङ्ग मे, मयुष्ट ग्राम, मेघमठ, अमृतभवन नामक विहार, नडवन, इन्द्र-देवीभवन नामक एक चौमहला विहार एवं स्तूप, रत्नाकर शिखर, उज्जयिनी नगरी, काम्बुक घाटी, शूरपुर, विन्ध्यपर्वत, नर्मदानदी, मातृगुप्तस्वामी नामक विशाल मन्दिर मे मधुसूदन भगवान की स्थापना, काशीधाम, 'जयस्वामी' नामक विष्णुप्रतिमा, जयेन्द्रविहार, मोराकभव नामक भव्यभवन, इष्टिकापथ चन्द्रभागा नदी, श्वेतद्वीप, कालम्बय जनपद आदि का तृतीय तरङ्ग में, धनगभवन विहार, चन्द्रग्राम, रोहित देश अन्तर्वेद, गाधिपुर, कान्यकुब्ज, कलिंग, गौडदेश, कर्नाटक देश, द्वारिकापुरी, मलयपर्वत, काम्भोज, तुखार, दरददेश, प्राग्ज्योतिषपुर, स्त्रीराज्य, सुनिश्चितपुर, परिहासपुर व दर्पितपुर नामक नगर, चकुणविहार, प्लक्षप्रस्रवण (नैमिषारण्य) तीर्थ, श्रीपर्वततीर्थ, कल्याणपुर नगर, जयपुर, महानदी, उत्पलनगर, पद्मपुर आदि का चतुर्थ तरङ्ग में, शूरेश्वरी क्षेत्र मे अर्धनारीनटेश्वर का विशाल प्रासाद, शूरमठ, अवन्तिपुर नगर, मण्डवग्राम, यशदरग्राम, त्रिगतदेश, दार्वाभिसार देश, पचसत्र-प्रदेश, उद्भाण्डपुर, शकरपुर नगर, परिहासपुर, शाहिराज्य आदि का पचम तरङ्ग मे, श्रीजयेन्द्रविहार, वराहक्षेत्र, दामोदरारण्य सरयान्, शिमिका आदि भीषणवन, गगानदी, पर्णोत्सव प्रांत व काष्ठवाट ग्राम, भट्टारक मठ, उत्तर-पापग्राम, कवणपुर नगर, वितस्तासिन्धु सगमस्थान, पर्णोत्स प्रान्त के अन्तगत वहिवास ग्राम, राजपुरी आदि का षष्ठ तरङ्ग मे उल्लेख किया गया है।

सप्तम तथा अष्टम तरगो मे तो विभिन्न स्थानों आदि के उल्लेख महाकवि की कश्मीर मडल की भौगोलिक स्थिति के सत्यदर्शन एवं विशद चित्रण के परि-

---

१–कीथ–'ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ १६२।

चायक हैं। इन अन्तिम दो तरगो मे तो ऐसे उल्लेखो की बडी सख्या महाकवि के सत्यदर्शन की अप्रतिम निदर्शन है। ऐसे उल्लेखो मे भीमतिका ग्राम, दिद्दामठ, तौषीनदी, दार्वाभिसार प्रान्त, श्रीरणेश्वर मन्दिर, जयाकरगज, सोठिकामठ एव तिलोत्तमामठ, सोहरप्रान्त, शामास्थन ग्राम, शमासाप्रन्त, सुभटामठ त्रिगतदेश, वल्लापुर, उरसानगरी, क्रमराज्य, ओवनागाम, विजयेश्वर, क्षेत्र, सेल्यपुर, भागिन प्रदेश, टक्कदेश, तुरुष्कदेश चम्पा, राष्ट्रदेश तथा स्यन्नपुर, पम्पा सरोवर अवनाह ग्राम, तारमूलक प्रात, सोहराथस, कलशपुर, जयंतुरकोट, प्रद्युम्न तीर्थ आदि का सप्तम तरग मे तथा मडवराज्य, वराहवार्तास्थान, कालिजर देश, मालवा प्रदेश, दक्षिणापथ, वहेंटवक्र व क्रमसेश्वरग्राम, वर्तुल देश, कुरु देश, जयन्तदेश, शमगासा स्थान, वदेसरस व स्याप स्थानविपलाटा, सुरेश्वरी सरोवर व तपोभूमि, रानवाटिका स्थान, प्रतापपुर क्रमराज्य, कलिस्थलीग्राम, मनीमुपग्राम, चक्रधर स्थान, राजस्थान, गम्भीरासिन्धु-सगम, विपलाटा, गोपपवत, श्रीकल्याणपुर, तारमूलक, अव्युग्रपुर, सूयाश्रम, समुद्रयारा स्थान, मुहराष्ट्र, पाचिग्राम, सुय्यपुर आदि के वणन अन्तिम अर्थात अष्टम तरग में दृष्टव्य हैं। ये वणन महाकवि की सत्यदशन-प्रियता के द्योतक हैं।

चरित्र-चित्रण

महाकवि कल्हण चरित्र-चित्रण करने मे सिद्धहस्त है। अपने ग्रथ राजतरगिणी मे विभिन्न राजाओ, महापुरषो अथवा साधारण जना का चरित्र-चित्रण करके महाकवि ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह मानव स्वभाव का विवेचन करने मे अद्वितीय हैं। उनके चरित्र-चित्रण यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं। चरित्र-चित्रणो मे उनकी परख, पटुता तथा विवेचनात्मक शक्ति का उदघाटन होता है। विविध घटनाओ के सागोपाग वणनो के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के पात्रो के यथास्थान चित्रण मणि-काचन-सयोग की सी मनोज्ञता प्रदान करते हैं। इन चरित्र चित्रणो में से कतिपय चित्रण लघु होते हुए भी अत्यन्त मार्मिक हैं, जैसे—

जयाभवल्लवो नाम भूपालो भूमिभूषणम्।
वेल्लद्दशोदुकूलाया प्रीतिपपात जयश्रिय ॥ १—८४ ॥
यस्य सेना निनादेन जगदोन्निद्रदायिना।
निर्यिरे वैरिणश्चित्र दीर्घनिद्राविधेयताम ॥ १—८५ ॥
तेन षोडशभिर्लक्षैर्विहीनामश्मवेश्मनाम्।
कोटि निष्पाद्य नगर लोनोर निरमीयत ॥ १—८६ ॥
दत्वाप्रहार तेदर्या तेजार द्विनपर्ष दे।
स धामनिन्यशौर्यश्रीरारुरोह महाभुज ॥ १—८७ ॥

भट्टारक मठ के मठाधीश तथा उसके शिष्य का चरित्र-चित्रण नीचे दिया गया है—

भट्टारकमठाधीश सामुव्योमशिवो जटी ।
खुर्खुटस्याधिकरणे गृहीत नियतव्रत ॥ ७–२९८ ॥
गन्धगान्धर्विकानामम्मनाम्न स्वार्चनसेवकात् ।
अवन्तिपुरज हस्तग्राहवा द्विजचेतक्म् ॥ ७–२९९ ॥

इसी प्रकार के अन्य लघु चरित्र-चित्रणों में जिनकी सख्या १०० से भी अधिक है, निम्नलिखित मुख्य हैं—

१ राजा ललितादित्य की काम वासना[1],
२ बिडालवणिक् तान्त्रिक का ढोंग आदि[2],
३ जमक नामक चारण[3],
४ मठाधीश व्योमशिव का शिष्य मदन[4],
५ चन्द्रराज की माता गज्जा[5],
६ राजा हर्ष[6],
७ रानी जयमती[7],
८ क्षेमदेव के पुत्र का चरित्र[8],
९ राजा रड्ड[9],
१० राजा भिक्षाचर[10],
११ रानी मेघमजरी[11],
१२ राजा जयसिंह[12],
१३ महामन्त्री लक्ष्मक[13],
१४ युवराज भोज[14] आदि ।

उपर्युक्त लघु चरित्र-चित्रणो के हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत किये गये हैं। इन चित्रणों से विभिन्न व्यक्तियो के चरित्रो का उद्घाटन ही नही होता, अपितु महाकवि कल्हण की सूक्ष्म व पैनी दृष्टि उसकी विवेचनात्मक सूझ-बूझ, उसकी वर्णनाशक्ति, उसकी प्रबन्ध पटुता तथा उसकी गम्भीर अनुभूति का भी परिचय

१–राजतरङ्गिणी, ४/६६०–६७८, २–वही, ७/२७९–२८३, ३–वही, ७/२८५–२९२ ४–वही, ७/२९८–३०२, ५–वही, ७/१३८०–१३८४, ६–वही, ७/१५५७–१५६३, ७–वही, ८/८२–८४, ८–वही, ८/२६४–२६८, ९–वही, ८/३४२–३५६, १०–वही, ८/८४३–८५० तथा १७४३–१७५०, ११–वही, ८/१२१८–१२२३, १२–वही, ८/१५५७–१५६६ तथा २६३०–२६३९, १३–वही, ८/१८८७–१८९८, १४–वही, ८/३२०८–३२१२ तथा ८/३२५८–३२७६

मिलता है। सभी प्रकार के व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण महाकवि ने अत्यन्त निष्पक्ष-भाव से किया है। एक उदाहरण नीचे द्रष्टव्य है—

वात्सल्येनान्वितं प्रेम गौरवेण प्रियं वचः ।
औचित्येन च दाक्षिण्यं सापत्न्यमिव या दधे ॥ ८–१२१८ ॥
तस्योपकरणीभूतविभूतिर्गृहिणी प्रिया ।
तस्मिन्काले महादेवी विपेदे मेघमञ्जरी ॥ ८–२२१९ ॥

वृहद् चरित्र चित्रणों में निम्नलिखित मुख्य हैं—

उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य तथा कवि मातृगुप्त का चरित्र-चित्रण, राजा रणादित्य व उसकी पत्नी रणारम्भा के पूर्व जन्म का चरित्रवर्णन, राजा प्रतापादित्य, महात्मा सुय्य का चरित्र उद्धार, राजा चक्रवर्मा, राजा चन्द्रगुप्त, राजा कलश राजा हर्षदेव, राजा उच्चल मायस्य, राजा सुस्सल, राजा जयसिंह आदि के चरित्र-चित्रण महाकवि के सूक्ष्म निरीक्षण, विभिन्न परिस्थितियों के पर्याप्त ज्ञान, विवेकपूर्ण बुद्धि तथा मानवस्वभाव की पूर्ण अभिज्ञता के परिचायक हैं।

महाकवि के एकमात्र उपलब्ध इस ग्रन्थ (राजतरङ्गिणी) में चरित्र-चित्रणों की एक लम्बी परम्परा है। एक के बाद दूसरे व्यक्ति के चरित्र-चित्रण का तारतम्य कहीं भी विच्छिन्न नहीं हुआ है। इससे ग्रन्थ की रोचकता में वृद्धि हुई है।

महाकवि कल्हण ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य में शुद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों के चरित्रों का भी उद्घाटन किया है। उन्होंने राजा अशोक, हुष्क, जुष्क कनिष्क, मिहिरकुल, तोरमाण, शकों के मूलोच्छेदक उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य, कवि मातृगुप्त, कान्यकुब्ज नरेश, यशोवर्मा आदि का विस्तृत परिचय के साथ वर्णन किया है। इसी प्रकार मण्ठ कवि वाक्पतिराज, भवभूति, क्षीरस्वामी, वामन, मुक्ताकण, शिवस्वामिन्, आनन्दवर्धन, रत्नाकर, वैयाकरण रामट, कवि भल्लट आदि विद्वानों का भी किंचित् वर्णन संकेतशैली में किया गया है।

बुद्ध धर्म के प्रसिद्ध भिक्षुओं तथा षडर्हद्वन निवासी प्रकाण्ड बौद्ध विद्वान् नागार्जुन के उल्लेख के साथ साथ चान्द्र व्याकरण के रचनाकार प्रसिद्ध हिन्दू धर्म के विद्वान् चन्द्राचार्य तथा दूसरे विद्वान् काश्यपगोत्रीय चन्द्रदेव का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

वैसे तो राजतरङ्गिणी एक ऐतिहासिक महाकाव्य होने के नाते कश्मीर मण्डल के ऐतिहासिक वर्णनों, घटनाओं तथा व्यक्तियों को प्रस्तुत करता ही है, परन्तु इन उपर्युक्त शुद्ध ऐतिहासिक चरित्र-चित्रणों का उद्घाटन करके महाकवि ने अपने ग्रन्थ की ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता को और भी अकाट्य एवं

विश्वसनीय बना दिया है। राजा मिहिरकुल की भीषणता का चित्रण किया जा रहा है—

> अथ म्लेच्छगणाकीर्णे मण्डले चण्डचेष्टित ।
> तस्यात्मजोऽभून्मिहिरकुल कालोपमो नृप ॥ १–२८९ ॥
> दक्षिणा खान्तकामाशां स्पर्धया जेतुमुद्यता ।
> यस्मिन्पादुरहरिद्भाराव्यमिवान्तकम् ॥ १–२९० ॥
> सानिध्य यस्य सैन्यान्तर्हन्यमानाग्रनोरसुकान् ।
> अजामन्गृध्रकाकादी दृष्ट्वाग्रे धावतो जना ॥ १–२९१ ॥

बौद्धभिक्षुओं के उत्थान और पतन का चित्रण किया गया है—

> प्राज्ये राज्यक्षणे तेषां प्राय कश्मीरमण्डलम् ।
> भोज्यमास्ते स्म बौद्धाना प्रव्रज्योर्जिततेजसाम् ॥ १–१७१ ॥
> तदा भगवत शाक्यसिंहस्य परनिर्वृते ।
> अस्मिन्महीलोकधातौ सार्धं वर्षशत अगात् ॥ १–१७२ ॥
> बोधिसत्वश्च देशे स्मिन्नेको भूमीश्वरो भवत् ।
> स च नागार्जुन श्रीमान्षडर्हद्वनसंश्रयी ॥ १–१७३ ॥

प्रकृतिवर्णन

महाकवि कल्हण ने अपने इस ऐतिहासिक महाकाव्य में विभिन्न स्थलो पर मनोरम प्रकृतिवर्णनों की योजना की है। ये प्रकृति-वर्णन स्वर्गसन्निभ कश्मीरमंडल के विभिन्न प्रकृतिनटी के लीलाविलासों से महाकवि का निकट सम्बन्ध तथा परिचय प्रकट करते हैं। हमारे चरितनायक कल्हण कश्मीर के विभिन्न नदी तटो, तीर्थों, पर्वतों, स्नानागारों, वनों, वृक्षों आदि से पूर्णतया अभिज्ञ थे। विभिन्न वन मार्गों, स्थानों, ग्रामों, नगरो, राजमार्गों आदि का भी उनको पूर्ण ज्ञान था। विभिन्न प्रान्तों, क्षेत्रों, मठो, विहारों एवं मन्दिरों की भौगोलिक स्थिति से वे पूर्णतया परिचित थे। कश्मीरमंडल के अनेकानेक स्थानों की भौगोलिक स्थिति के ज्ञान में वह अपना कोई सानी नहीं रखते तभी तो ए० बी० कीथ महोदय लिखते हैं—

कश्मीरमंडल की सर्वसम्पत्प्रसविनीभूमि तथा स्वर्गोपम प्राकृतिक छटा ने महाकवि के मनस्पटल पर अमिट छाप डाल रखी थी। उन्होंने लिखा है—

> सोष्मस्नानगृहा शीते स्वस्थनीरास्पदा स्ये ।
> यादोविरहिता यत्रनिम्नगा निरुपद्रवा ॥ १–४० ॥
> विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुङ्कुम सहिम पय ।
> द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम् ॥ १–४२ ॥
> त्रिलोक्या रत्नसू श्लाघ्या तस्यां धनपतेर्हरित् ।
> तत्र गौरीगुरु शैलो यत्तस्मिन्नपि मण्डलम् ॥ १–४३ ॥

महाकवि ने अपनी अलौकिक काव्यकला चातुरी से मानवीय कार्य कलापों तथा मनोभावों का प्राकृतिक व्यापारों से सामञ्जस्य स्थापित किया है। इससे ज्ञात होता है कि महाकवि कल्हण मानवीय प्रकृति के ही सच्चे चित्रकार न थे, बल्कि प्रकृति के भी प्रवीण चितेरे थे। उन्होंने प्रकृति का निरीक्षण बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से किया है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी—

राज्याच्च्युतस्य बहुशः परिवाररामाक्रान्दादि तस्य पितरा प्रजगोपजहनु ।
उर्वीरुहा विगलितस्य नगेन्द्रशृङ्गाद्वल्लीफलादि रमसादिव गण्डशैला ॥

(१-३६८)

रम्यैः शैलपथैर्जनभ्रमवशाच्छाया स्थित शाखिनाम् ।
आसीनप्रजनायितेन सुमहद्दुःख विसस्मार स ॥
दूरापातर पुष्कर्तं श्रुतिपथप्राप्तैं प्रबुद्धस्वदृद् ।
दृष्ट्वा निर्झरवारिभिः सह मन श्वभ्रे निमज्जदिव ॥ १-३६९ ॥
पर्यन्तादिततटान्तिकेषु सुचिरं दूरीभवन्मण्डलं ।
ग्रामान् पश्यन् जहर्षु नृपतदारणु पुष्पान्लीन् ॥
क्षोणीपृष्ठनिरीक्षणलतितमतुङ्ग स्वनीडस्थितैं ।
सारस गिरिकन्दरासु पतता वृन्दैरपि क्रन्दितम् ॥ १-३७० ॥

राजा अन्ध युधिष्ठिर के पलायन करने पर यह मनोरम प्रकृति वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

अथ वासरसीमनि द्रुमाग्र पुटक घटोदरसम्भृताम्बुपूरम ।
वसतिमिच्छु वासरागमान शुचिरङ्गदानदर्पिताच्चलतरयाम् ॥ २-१६६ ॥
वनकरिरसितैं पदे पदे स प्रतिभटता पटहध्वनदयाने ।
अमनुत रटितैरिव रक्तरेटा परिगणिता गमनाम्बुमुखस्त्रियामाम् ॥ २-१६८ ॥

यह प्रकृति वर्णन राजा सन्धिमति (आर्यराज) के राज्यत्याग करके वनगमन करने के समय का है।

राजा हर्षदेव के सैनिकों को मधुमती नदी ने उदरस्थ कर लिया। उसका सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यथा—

धावत पायमिस्त्रैंस्तैं साक्रन्दाश्च सैनिकान् ।
पृष्ठतस्तरिदूर्मीर्षा मार्गेऽप्रतिस्थितादसा ॥ ७-११९२ ॥
शौर्यं स हृतमात्रं मान्जयच्छैव भेटकं ।
सशेवसवमङ्गार्य सलिलसन्तुरगमैं ॥ ७-११९३ ॥
सौवर्णं सरयाङ्गेन रातनैमंतिमैरपि ।
मर्णेनव अनयकैरामस्नुमती सरित् ॥ ७-११९४ ॥

राजा हर्ष की विपत्तियों का वर्णन करते हुये कवि लिखता है—

तत प्रावर्तत स्यक्तु वारि वारिमुवा गण ।
क्षमामिव क्षालयितु द्रोहमस्पर्शेन दूषिताम् ॥ ७-१६३२ ॥
भूमिजना वृष्टिपातस्थमिया दु सहायिता ।
वैरिभीतिरिति प्राभृतिक कि तस्य न दु खदम् ॥ ७-१६३३ ॥

इसी तरह अन्य अनेक प्रकृति वर्णनो के स्थल राजतरङ्गिणी मे दृष्टव्य हैं। उनमे से निम्नलिखित मुख्य हैं—

महात्मा सुय्य तथा उनके अलौकिक कार्यकलाप, डामरों द्वारा अग्निदाह, युवराज भोज की यात्रा, सुरेश्वरी की तपोभूमि आदि।

यह बात अवश्य है कि महाकवि कल्हण के मानवीय प्रकृति के चित्रणो की सख्या प्रकृतिचित्रणो की सख्या से कही अधिक है। महाकवि ने ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की है जिसमें ऐतिहासिक तथ्यो का उद्घाटन उन्होने किया है। ये ऐतिहासिक तथ्य व्यक्तियो तथा घटनाओ से अधिक सम्बद्ध होते है न कि प्रकृति चित्रणो से। स्वाभाविक रूपेण आये हुये प्रकृति चित्रण महाकवि ने लेखनीबद्ध किये हैं सो भी सीमित श्लोकों मे। उनके प्रकृतिचित्रण शायद ही बीस से अधिक श्लोको मे उपनिबद्ध किये गये हो। अनेक स्थलो मे तो केवल दो-चार श्लोकों में ही ऐसे चित्रण दृष्टव्य हैं। दूसरी ओर राजाओ और व्यक्तियों, घटनाओ तथा तथ्यों के चित्रण मे तो महाकवि की काव्यप्रतिभा का बाँध सा टूट गया है। उनम महाकवि की कला-चातुरी निखर उठी है। उनम से कोई-कोई चित्रण तो १०० अथवा १५० से भी अधिक श्लोकों मे विशदरूप स लेखनीबद्ध किये गये हैं।

विशेष ध्यान देने की बात यह है कि इस प्रकार के विशद वर्णन कविप्रवर कल्हण ने भवभूति की भाँति प्राय वर्णनात्मक शैली में ही किये हैं।

भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद, कर्मफल तथा पुण्यफल

महाकवि ने अपने ग्रथ राजतरगिणी मे यत्र-तत्र भाग्य, विधाता, दैव, भवितव्यता, होनहार, प्रारब्ध, विधि, नियति, भावी, पूर्वजन्म, जन्म-जन्मान्तर, कर्मफल, पुरुषार्थ, पुण्य, पुण्यबल, पुण्यफल, पूर्वसचितपुण्य आदि का उल्लेख किया है।

ऐसा ज्ञात होता है कि महाकवि का दैव की महिमा पर अटूट विश्वास था। यही कारण है कि वह प्रत्येक अद्भुत घटना मे विधाता के प्रभाव को ही प्रधान कारण मानते हैं। हर्षदेव जैसे तेजस्वी ऐश्वर्यशाली, राजनीतिमर्मज्ञ तथा गुणी राजा का अन्त मे अत्यन्त दु खमय तथा नैराश्यपूर्ण जीवन व्यतीत करके अपने सेवकों के द्वारा मरना पड़ा। महाकवि की दृष्टि में इसका कारण दैव की प्रतिकूलता ही थी। इसी को लक्ष्य करके महाकवि ने लिखा है—

भाग्याम्बुवाहतडितस्तरला श्रियस्ता स्त्वावसानविरलप्रसभोग्रतरवम् ।
तत्रापि नैषवत मोहहताश्रयाना यान्ति प्रयातिविभवानुभवाभिमान ॥

(तरग ७, श्लोक १७२९)

महाकवि की दृष्टि में विधाता की अचिन्त्य शक्ति का प्रतिरोध करने की क्षमता संसार के किसी भी प्राणी में नहीं है, इसका प्रमाण राजा सन्धिमति के गुरु ईशान के विविध तर्कों से मिलता है—

अचिन्त्यश्च सम्भावा यथैनद्भविष्यति ।
उवाच च विधेः शक्तिमचिन्त्यां कलमविवरम् ॥ २९२ ॥

+ + +

सततमप्यतिरस्कृत पारतन्त्र्यानुराधारमज्जा सर्वं न्यवर्तित
हठोऽमूलनाय प्रयत्नात् ।

दिद्दारानी का तुंग नामक महिषपालक पर तत्क्षण मोहित हो जाना भावी के बल पर ही सम्भव था—

पचभिर्भ्रातृभि सार्धं महिषिप्रहितास्तिरे ।
देव्या दृगाचरं यातः हृत्यावजको भवा ॥ ६–३२० ॥

+ +

रक्ष प्रवेशिता दूत्या स भाव्यवनतायुवा ।
समुत्कमूरिजारायाः अपि तस्याः प्रियोऽभवत् ॥ ६–३२१ ॥

राजा जयापीड की दम्भनिष्ठुरता के कारण उसका पतन, विधाता की अलौकिक कार्यचातुरी से यशस्करदेव का राज्याभिषेक, दैव की अनुकूलता से तुग का अभ्युदय, हलधर के गुप्तवध में भाग्य की चपलता राजा कलश के भाग्योदय के कारण उसके सत्कार्य, विधाता के विलक्षण विधान से हर्षदेव की बन्धनमुक्ति, विधिविधान से राजा सप्रामपाल के द्वारा उच्चल का सत्कार, भाग्य-विधान से उचित सम्मति देने वाले भोगसेन से सुइड का द्वेष, दैव तथा नियति की वक्रता से राजा उच्चल का वध, विधाता की इच्छा-प्रबलता से गगचन्द्र व राजा सुस्सल के बीच वैरभाव, वामविधाता के द्वारा भिक्षाचर का पतन, भावी व भवितव्यता की अनुल्लंघनीयता से मल्लार्जुन का बन्धन, नियति की अनिवार्यता से महाप्रतीहार लक्ष्मक की असामयिक मृत्यु आदि अनेक प्रसंगों से महाकवि की भाग्य अथवा दैव के गम्भीर आस्था का परिचय मिलता है।

इसी प्रकार हमारे चरितनायक कल्हण का पूर्वजन्म में अथवा जन्म जन्मान्तर में सुदृढ़ विश्वास था। रवि मातृगुप्त को उसके पूर्व-जन्म के कर्मों के अनुसार ही कश्मीर मंडल का राजा बनाया गया था। यथा—

कर्मभि स्वैरवाप्तस्य जन्मन पितरौ यथा ।
राजा तथा न्य राज्यस्य प्रवृत्तावेव कारणम् ॥ ३–२४४ ॥

पूर्वजन्म में राजा रणादित्य एक जुआरी था। उसने अमोघदर्शना भ्रमरवासिनी देवी से सहवास का वरदान मांगा था। यह केवल पूर्व जन्म के कर्मों

का ही फल था–

पूर्वमेव हि जन्तूना योऽधिवासो निलीयते ।
तिलानामिव तेषा स पर्यन्तेऽपि न शीर्यते ।। ३–८२६ ।।

देवी ने द्यूतकार का निश्चय दृढ जानकर वरदान दिया कि उसके दूसरे जन्म मे ऐसा ही होगा, उसी के अनुसार–

सो जायत रणादित्यो रणारम्भा च सा भुवि ।
मर्त्यभावेऽपि या नैव जहौ जन्मान्तरस्मृतिम् ।। ३–४३१ ।।

पूर्वजन्म के संस्कार से ही राजा उच्चल गग को पुत्र के समान मानने लगा और उसका वह प्रेम उत्तरोत्तर बढता ही गया–

प्राग्जन्मप्रेमसंस्कारादन्तरङ्गतया च वा ।
तस्य पुत्र इव प्रेतिर्गंग एव व्यवर्धत ।। ८–४३ ।।

महाकवि कल्हण ने कर्मफल को बडा ऊँचा स्थान प्रदान किया है। कल्हण की यह सुदृढ मान्यता थी कि दुर्विचार व दुराचार से अथवा पुनीत तीर्थ, क्षेत्र, देवमदिर आदि धार्मिक स्थानों मे अत्याचार करने से अन्त अच्छा नहीं होता। राजा किन्नर के सुश्रवानाग की कन्या चन्द्रलेखा के प्रति कामान्ध होने के फलस्वरूप नरपुर का विनाश हो गया था–

अत्यल्पकालसदृष्टप्राग्राराद्यालमण्डनम् ।
तत्किंनरपुर लेभे गन्धर्वनगरोपमाम् ।। १–२७४ ।।

राजा हर्षदेव के शासनकाल मे देवस्थानो व देवप्रतिमाओं पर भीषण अत्याचार किये गये थे, इसीलिए राजा का बडा दु खद अन्त हुआ। परिहासकेशव की मूर्ति को जब राजा हर्ष उत्पाटित करा कर ले गया तो–

तस्मिन्विघटिते पासु कपोतच्छदधूसर ।
रोदसीच्छादन हर्षशीर्षच्छेदावधि व्यधात् ।। ७–१३४५ ।।

ब्राह्मणो पर अत्याचार करने का फल अच्छा नहीं होता यह कल्हण की धारणा थी क्योकि–

सेन्द्र स्वर्गं सशैला क्ष्मा सनागेन्द्र रसातलम् ।
निर्दग्धु हि क्षणेनैव विप्रा शक्ता प्रकोपिता ।। ४–६४२ ।।

राजा जयापीड ब्रह्मशाप से दण्डित होकर दण्डधर यमराज के पास पहुँच गया–

ब्रह्मदण्डकृत दण्ड भुक्त्वा दण्डधराधिप ।
सकाण्डदण्डस्पृष्टाऽत्र ययौ दण्डधरान्तिकम् ।। ४–६५६ ।।

ब्राह्मणो के अक्षुण्ण प्रभाव का वर्णन किया जा रहा है–

कालेऽस्मिन्धर्मदौर्बल्यकलुषेऽपि कृते किल ।
प्रभावो भूमिदेवाना द्योतते द्याम्यमगुर ।। ८–२२३८ ।।

ब्राह्मणैरपरिक्षीणपूर्णपुण्यो न कश्चन ।
धैर्यमारमते भ्रष्टदुष्टोत्पाटनपाटवैः ॥ ८-२२३९ ॥

शुभाशुभ कर्मों का फल सबको भोगना पड़ता है। प्रजा के शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप राजे सुजन अथवा दुर्जन हो जाते हैं—

न यन्त्रपुत्रस्येव शक्ति कापि हि भूभुजः ।
भवेत्साधुरसाधुर्वा स प्रजानां शुभाशुभैः ॥ ७-३४० ॥
उज्ज्वलानि यत्पयोवाहा जलानि तडितोऽथवा ।
वनस्पतीनां सदसत्कर्मपाकस्य तत्फलम् ॥ ७-३४१ ॥

महाकवि पुण्यफल एवं पूर्वसंचितपुण्य की महत्ता पर विश्वास रखते थे। अपने ग्रन्थ राजतरंगिणी में अनेक स्थलों पर पुण्योदय अथवा पुण्यबल का उल्लेख उन्होंने किया है।

कवि मातृगुप्त सोचते थे कि जन्म-जन्मान्तर के पुण्य से ही उन्हें राजा विक्रमादित्य जैसा राजा प्राप्त हुआ है।

पूर्वजन्म के संचित पुण्य क्षीण होने से तुंग की उज्ज्वल कीर्ति कलुषित हो गई और धीरे-धीरे उसकी बुद्धि भ्रष्ट होने लगी।

प्रजाजनों के पुण्योदय से राजा कलश की सद्बुद्धि प्रजापालन के कार्य में अपने पिता के समान उदार तथा निपुण हो चली।

एक भयानक रोग से प्रतीहार लक्ष्मक का देहान्त हो गया। यह पुण्य क्षीण होने का ही परिणाम था।

अत्रान्तरे प्रतीहारः प्रापान्तमपपीडया ।
न सम्परत्स्वल्पपुण्यानामनपायित्वमायुषः ॥ ८-१९९९ ॥

राजा जयसिंह की धार्मिकता से अन्य लोग पुण्यकर्मा बन गये—

भूभृद्धार्मिकतावाप्तसुकृतोत्सेकवासवैः ।
वृद्धैकवर्तिभिरपि प्रवृत्ते पुण्यकर्माणि ॥ ८-३३४५ ॥

राजा जयसिंह के शासनकाल की महत्ता प्रतिपादित करते हुये महाकवि लिखता है—

इयददृष्टमन्यत्र प्रजापुण्यैर्महीभुजः ।
परिपाकमनाशत्व स्वयमा कल्पान्तिका समाः ॥ ८-३४०५ ॥

शुभाशुभशकुनों स्वप्नों तथा उत्पातों के विषय में कल्हण की धारणा थी कि उनका फल अवश्यम्भावी होता है।

कवि मातृगुप्त का कश्मीर जाते हुये मार्ग में विभिन्न प्रकार के शुभसूचक शकुन दिखाई पड़े। उसने स्वप्न में जहाज पर बैठकर समुद्र पार करते देखा।

राजा जयापीड ने रात्रि में एक स्वप्न देखकर उसका अभिनन्दन किया—

स स्वप्न पश्चिमाशाया लक्षयन्नुदय रवे ।
देहे धर्मेनिराचार्ये प्रविष्ट साध्वमन्यत ।। ४-४९८ ।।

उच्चल व सुस्सल के कश्मीर की राजधानी से चले जाने पर—

तयोर्निर्गतयो राज्य न कश्चिच्छ्रद्दधीयत ।
निमित्ततेन गतैव दुर्निमित्तैस्त्वशङ्क्यात् ।। ७-१२५७ ।।

उच्चल के वराहमूल क्षेत्र में पहुँचने पर शकुन हुआ, जिससे अन्त मे उसे राज्य प्राप्ति हुई—

वराहमूल प्रविशन्नागना ह्रियता बलात् ।
अश्वा सुलक्षणोपेता राजलक्ष्मीमिवासदत् ।। ७-१३०९ ।।
महावराहमौलिस्रस्तस्य मूर्ध्नि पपात च ।
स्वदन्तस्थियया पृथ्व्या वरणार्थमिवार्पिता ।। ७-१३१० ।।

राजा रणादित्य के कठोर तप करने के पश्चात उसके शुभ स्वप्नों का उल्लेख करके महाकवि लिखता है कि—

स्वप्नैश्च सिद्धिलिंगैश्च जालामगुरनिश्चय ।
चन्द्रभागाजल भित्वा नमुचे प्राविशद्विवम ।। ३-४६८ ।।

विजय के मारे जाने पर राजा सुस्सल ने प्रबल पराजय का अनुभव किया। उसी समय अनेक अपशकुनो और उपद्रवो को देखकर राजा ने वहाँ स राजधानी लौट ही आना श्रेयस्कर समझा—

उट्टीकिनैगवा वृषमूर्धारोहेण भागिनाम् ।
पिपीलककुलस्याण्डोपसङ्क्रान्त्यैव वपणम् ।। ८-३१५ ।।
प्रत्यासन्न राजाय दुर्निमित्तैरुपद्रवम् ।
विचिन्त्यायातमुचित कर्तव्य प्रत्यपद्यत ।। ८-३१६ ।।

राजा तुजीन तथा रानी वाक्पुष्टा के समय का भीषण हिमपात भयकर भावी दुर्भिक्ष की सूचना देता था।[1]

राजा पार्थ के राज्यकाल मे वर्षा ऋतु की भयकर बाढ (जल-प्लावन) ने एक घोर दुर्भिक्ष को जन्म दिया, जिसके कारण समस्त कश्मीरमडल एक श्मशान के समान भयकर दृष्टिगोचर होने लगा।

परिहास केशव की मूर्ति का उत्पाटन करा कर राजा हर्ष ले गया। उस मूर्ति के उखडते ही धूसरवर्ण की धूल ने सारी दिशाओ को आच्छादित कर लिया और वह धूल तब तक उडती रही जब तक राजा हर्ष का सिर कट न गया।

इसी समय काष्ठास में डामरो ने आग लगा दी, जिसने सारे नगर का

१—राजतरंगिणी, २/१७—२६ ।

वन के समान सूना कर डाला ।

राजा जयसिंह के शासनकाल मे जब कश्मीर सर्वथा समृद्ध हो रहा था, सहसा हिमपात, अग्निकांड आदि उपद्रवों मे राज्य मे पहले जैसा सुभिक्ष न रहा । केतुदय आदि उपद्रवों से प्रजा तो नष्ट न हुई, परन्तु कोष्ठेश्वर के अनुज छुड्ड मे विप्लव तथा दरदराज्य की प्रजा पर आई हुई प्राकृतिक विपत्तियो से राजा चिन्तित हो उठा ।

उपर्युक्त विभिन्न उदाहरणो से स्पष्ट है कि महाकवि कल्हण उत्पातो की फलवता पर विश्वास रखते थे ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि कल्हण सस्कृत साहित्य के सर्वांगीण ज्ञान क पूर्ण पडित थे । उन्होने अपने ग्रन्थ राजतरंगिणी मे कश्मीर मडल का लगभग ३६०० वर्षों का राजनीतिक एव सास्कृतिक इतिहास बड़ी सतर्कतापूर्वक प्रस्तुत किया है । एक सच्चे इतिहासकार के कर्तव्य को निभाते हुए उन्होने इस दीर्घ समय के इतिहास की प्रमुख घटनाओ का चित्रण एक मजे हुए कलाकार की भाँति किया है । उन्होंने जीवन के प्रत्येक अग पर दृष्टि डाली है । उन्होंने घटनाओ का ऐसा चित्रण किया है कि उनके ऐतिहासिक महाकाव्य में उपन्यास-सी मनोरजकता आ गई है । इस प्रकार उन्होने यह भी सिद्ध कर दिया है कि विशाल सस्कृत साहित्य का कोई भी कोना अकिञ्चन नहीं है और उसमे ऐतिहासिक कृतियों का अभाव नहीं है ।

महाकवि ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य मे कालक्रमपूर्ण घटना-वर्णन प्रस्तुत किए हैं, जिनसे कश्मीर मडल के अविच्छिन्न इतिहास की अजस्र धारा प्रवाहित हुई है ।

राजतरंगिणी का काव्य-माधुर्य अप्रतिम है । शान्तरस से ओतप्रोत इस महाकाव्य मे मानवजीवन के स्वभाव, मनोवेगो तथा व्यवहारो का कमनीय दिग्दर्शन कराया गया है । इसमे कवि की निष्पक्षता प्रशसनीय है । उन्होने अपनी ऐतिहासिक कृति मे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक घटनो पर भी निष्पक्ष दृष्टि डाली है । उपदेशग्रहण की कला, सत्यदर्शन, चरित्र-चित्रण, प्रकृतिवर्णन आदि का समुचित समावेश करके महाकवि ने अपने ग्रन्थ को सर्वांगसुन्दर बना दिया है । भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद, कर्मफल एव पुण्योदय के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करके महाकवि ने अपनी आस्थाओ, धारणाओ तथा मान्यताओ को अभिव्यजित किया है ।

महाकवि कल्हण की धार्मिक दृष्टि विशाल थी । उन्होने शैवमत, बुद्धधर्म, जैनधर्म, शाक्त मत आदि का सुन्दर समन्वय अपने ग्रन्थ मे किया है । यद्यपि वह स्वय शैव थे, परन्तु सभी धर्मों के मतावलम्बियो के उचित गुणो अथवा दूषणो को

प्रकट करने में वह निरपेक्ष दृष्टि रखते थे । वह रामायण एवं महाभारत, विभिन्न पुराणादि की विविध कथाओं का आश्रय लेकर अपने ग्रन्थ की अनेकानेक घटनाओं की पुष्टि करते हैं । उनकी अमरकृति राजतरंगिणी में महाकाव्यों की कमनीयता, नाटकों की सम्वादशैली, गीतिकाव्य की अभिरामता एवं रसपेशलता, गद्यकाव्य की समासबहुल एवं ओजोगुणमयी प्रसन्न शैली, कथासाहित्य की वर्णनात्मक भावाभिव्यञ्जना, अलंकारशास्त्र की अलंकारिता, दर्शनशास्त्र के विभिन्न दर्शनों का प्रकटी-करण, पुरुषार्थसाहित्य के विभिन्न अंगों का हृदयग्राही निबन्धन आदि महाकवि के महाकाव्य की विशेषतायें हैं । महाकवि ने कश्मीर मंडल के विविध स्थानों, ग्रामों, नगरों, प्रान्तों, विद्यालयों, मठों, विहारों, मन्दिरों के हृदयावर्जक वर्णन प्रस्तुत किए हैं । विभिन्न व्यक्तियों, महापुरुषों, राजाओं के कार्य-कलापों, उत्थान-पतनों तथा गुण-दोषों की मनोरम गाथाओं का अपनी मनोरम कृति में सन्निवेश करके महाकवि कल्हण ने एक सर्वांग सुन्दर ऐतिहासिक महाकाव्य की अवतारणा की है ।